

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष



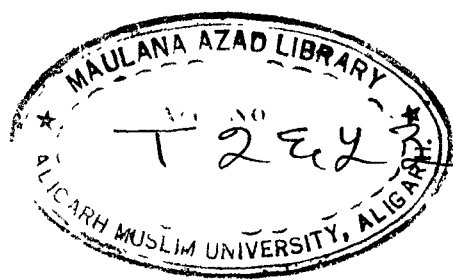
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की
पी-एच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध का सार

निर्देशक
डॉ० कुँवरपाल सिंह
रीडर
हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

प्रस्तुतकर्ता
रामवीरसिंह
एम० ए०, एम० फिल०

1983



भूमिका

नागार्जुन आधुनिक युग के हिन्दी लेखकों के बीच अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उन्होंने अपनी कृतियों से अध्ययन की नयी और अकूती विधाओं के द्वार खोले हैं। उनके उपन्यासों में स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद के ग्रामीण परिवेश को वाणी मिली है। उन्होंने ग्रामीणों को भारत की मुख्य धारा से जोड़ा है।

नागार्जुन अपने पात्रों के अकेले रचनाकार हैं जिन्होंने किसी मत अथवा परंपरा का अनुकरण नहीं किया है। उन्होंने सच्ची और वास्तविक स्थिति को परखकर एक सच्चे साहित्यकार के रूप में ग्रहण किया है। उनके ग्रामार्थक उनकी जीवन यात्रा के रास्ते में आस हूँ हैं। अतः उनका चित्रण उनकी समस्याएँ और उनके बीच उभरती आधुनिक चेतना उनकी अपनी देखी जाती है जिसको उन्होंने समाज के बहुलांश से परिचित कराया है।

प्रस्तुत शोध ग्रंथ में उनके उपन्यासों में चित्रित सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण का अध्ययन किया गया है। सामाजिक अध्ययन के अंतर्गत ग्रामीण जीवन में पनपने वाली विस्मृतियों, अर्थ-मान्यताओं, धनी वर्ग के शोषण की भूमिका और उसी से प्रसूत आधुनिक अधिकारबोध की चेतना को किया गया है।

राजनीतिक अध्ययन के अंतर्गत भारत की वर्तमान दशा और सततागत राजनीति को देखने का प्रयास है। ग्रामीण जीवन के आर्थिक और सामाजिक कार्यों पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को नागार्जुन ने निष्कर्षों के आधार पर देखा गया है।

विष्णु सूची

श्रुतिका

पृष्ठ सं०
I

प्रथम अध्याय-

1-15

नागार्जुन के उपन्यासों की पूर्व पीठिका

द्वितीय अध्याय-

16-25

नागार्जुन की जीवन यात्रा और वैचारिक
संकल्प

तृतीय अध्याय-

26-36

नागार्जुन के उपन्यासों में विवक्षित सामा-
जिक संघर्ष

चतुर्थ अध्याय-

37-48

नागार्जुन के उपन्यासों में विवक्षित राज-
नीतिक संघर्ष

प्रथम अध्याय-

49-53

उपसंहार

**

**

प्रथम - अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों की पूर्व पीठिका

**

**

नागार्जुन के उपन्यासों की पूर्व पीठिका

प्रायः यह देखने को मिलता है कि कोई भी लेखक अथवा रचनाकार यदि स्पष्ट वक्ता है या जर्जर व्यवस्था से सामंजस्य नहीं रखता है तो निश्चित ही उसकी उपेक्षा हर स्तर पर होती रहती है। उसके लेखन को उसके मौजूदा परिवेश में नहीं देखा जाता है। उल्टे उस पर दुराग्रही उग्रवादी, चिन्मोही, जैसे लालछ लगाए जाते रहते हैं। हिन्दी उपन्यास जगत भी इस वातावरण से अछूता नहीं है, वादा नागार्जुन इसके सटीक उदाहरण हैं। उनका नाम आलोचना जगत में कहीं मनमोणी, लेखक कहीं फक्कड़, कहीं उठापटक करने वाला और कहीं आर्थिक लेखक आदि के रूप में जाना जाता है। यह हिन्दी साहित्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि नागार्जुन तरीके स्थायित्व लेखक, सच्चे साहित्यकार की रचना धर्मिता से सदैव अलग हटकर आलोचकों ने उन्हें चित्रित किया है। और यह सच है कि जहाँ कहीं भी आलोचक अथवा विश्लेषक लेखक के धरातल से अलग होकर सोचता है तो निश्चय ही उसमें वे महत्वपूर्ण और सारसुक्त सङ्गर्ष सदैव ही अनजुस अनदेखे और अस्पष्ट रह जाते हैं जिन्हें व्याख्यायित करना अनिवार्य होता है।

नागार्जुन उपन्यास जगत में आर्थिक लेखक के नाम से जाने जाते हैं और क्षेत्र विशेष की भाषा बोली शब्द योजना आदि के साथ उनकी

कृतियाँ विन्यस्त की जाती रही हैं। परन्तु यह स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य में उपन्यास के क्षेत्र में अधिकतम लेखन का दौर 1955 से प्रारंभ होता है। जबकि नागार्जुन के दो ^{संश्लिष्ट} उपन्यास "रतिनाथ की चाची" और "बलवनमा" इस दौर से पहले ही लिखे जा चुके थे। इससे साफ़ जाहिर होता है कि नागार्जुन का ग्रामीण अंचल की ओर प्रयास उनका स्वयं का निर्णय है, स्वतंत्र चिंतन है। ये जनता के बहुत करीब हैं, आम आदमी उनके कथानकों का नायक है। ये उन लाखों लाख देहातियों का, मजदूरों का बाल गुलामों का गरीबी और कर्ज से दूटे हुए झूठे जंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो बहुसंख्यक होते हुए भी अल्प संख्यक हैं, जुबान-दार होते हुए भी बेजुबान हैं। अतः प्रेमचंद के बाद अकेले नागार्जुन ने उनकी परंपरा को आगे बढ़ाया है। किसानों, मजदूरों, गरीबों के शोषण और उनके ऊपर अमानवीय अत्याचारों को उन्होंने विवलेखित किया है। उन्होंने देहात में पैदा होने वाले मजदूर के जन्म से लेकर मृत्यु तक के पड़ावों को स्वयं जाकर देखा है। इसीलिए उनकी समस्त कृतियाँ देहाती जीवन का प्रामाणिक वस्तुतः बन गई हैं। इन्हीं संदर्भों की पिथकता के कारण उनका "लेखक-परिक्षेप" आलोचक संश्रुतों से अछूता रज जाने के कारण नागार्जुन के चिन्तन की हदबन्दी कर दी गई है। इस लेखक पर शासन की भी सदैव तीसरी दृष्टि रही है। अतः जेल, नजरबंदी, रचनाओं की जाज्जी का सिलसिला इनके साथ जुड़ा रहा है।

नागार्जुन और उन जैसे लेखकों की इसी नियति पर डॉ० कुंवर पात सिंह ने कहा है— "वास्तव में खलती हुई ग्राहीण व्यवस्था पर लिखे गए उपन्यासों को "आघातक" उपन्यास कह कर उनका महत्व कम किया जाता रहा है और उस वास्तविकता पर परका डालने का प्रयास किया गया जिसका अध्ययन बहुत आवश्यक है । इन उपन्यासों ने देश के तीन चौथाई भाग में हो रहे गंभीर परिवर्तनों की ओर उपन्यास के पाठकों और आलोचकों का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया था परन्तु उन्हें किसी अंशतः विशेष की परिस्थितियाँ और समस्याएँ कहकर नज़र दिया गया ।"

लेकिन अपनी कथनी और करनी के धनी नागार्जुन अपने व्यक्तित्व के अद्वितीय लेखक रहे हैं जिन पर कभी-भी अंकुश नहीं लग सका । "एक समर्पित लेखक" के नाते उनकी वैचारिकता किसी लाभ-लौभ और आर्तक के सामने नहीं झुकी है । उस्टे उनका भाव बोध तमाम यातनाओं को भोगने के बावजूद और अधिक निखरता गया है । और उन्होंने राजकीय और स्थानीय दोनों तरह के प्रशासन के अत्याचार के खिलाफ संघर्ष की मुद्रिमा छेदी है । शोषितों को शोषकों के सामने हंगठित कर उनके अधिकार और सम्मान को देने का बृहद संकल्प है ।

प्रस्तुत अध्याय में उनके उपन्यासों की इसी पुष्टवृत्ति को राजनीतिशास्त्र, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र इतिहास आदि के आलोक में देखने

का प्रयास किया गया है । उनकी रचनाओं के विविध आयामों को समझने के लिए इन छान-विधाओं का अध्ययन भी अनिवार्य है । अतः नागार्जुन की समस्त औपन्यासिक छूतियाँ राष्ट्रीय संदर्भ से जुड़ी हैं इसलिये उनके अध्ययन की विधायी भी विस्तृत हैं उन्हें निम्नलिखित शीर्षकों में समझने का प्रयास किया गया है ।

भारत की अर्थ-व्यवस्था

यूरोप के औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव समूची दुनिया पर व्यापक रूप से पड़ा है । इस क्रान्ति ने जहाँ मशीनी युग का प्रारंभ किया है, स्थान की दूरी यातायात के साधनों के माध्यम से कम हुई है, उत्पादन बढ़ा है, संसार माध्यमों से गूढ़ रहस्यों को ज्ञात करने के वैज्ञानिक साधन ईजाद हुए हैं और उन्नति की दिशा में विश्व की नई सभ्यता विकसित हुई है । परन्तु यह सब स्वतंत्र और स्वायत्त देशों में वरदान के रूप में साबित हुई परन्तु देशों का तो इस औद्योगिक व्यवस्था ने शोषण ही किया है । जिसका सबसे अच्छा उदाहरण भारत है । नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में इस औद्योगिक सभ्यता के संपर्क में आस भारत की अर्थ-व्यवस्था और उसके परिणामों को देखाती जीवन के संदर्भ में प्रस्तुत किया है । आत्म निर्भर और समुदायवादी परंपरा में हटीर उद्योग धन्यों पर जीवित रहने वाली भारत की देखाती अर्थ-व्यवस्था इस नयी

विकासित तकनीक से घबराचूर हो गई । क्योंकि अठारहवीं शताब्दी के मध्य से ही भारत आर्थिक और प्रशासनिक दृष्टि से ब्रिटेन का उप-निवेश बन गया था । यहाँ की दुर्लभ प्रशासनिक व्यवस्था ने उसके पनपने के लिए उपयुक्त वातावरण दिया । अतः अंग्रेजों ने यहाँ के व्यवसाय और उद्योग-व्यवस्था को नष्ट कर दिया । यहाँ के अपार कच्चे माल को अपने यहाँ ले जाते रहे । अपने यहाँ की चीजों को ऊँची दरों पर यहाँ बेपा इसलिए यहाँ का कारीगर, बेकार हो गया और वह अर्थाभाव में भूखों मरने लगा । मार्क्स ने भारत में रेलों के आगमन पर कहा था- मैं जानता हूँ कि अंग्रेज उद्योगपति केवल इसलिए भारत में रेलें बिछाना चाहते हैं कि वे रूई और अन्य कच्चा माल अपने कारखानों के लिए कम दर पर प्राप्त कर सकें ।”

अतः भारत की समूची उद्योग-व्यवस्था ब्रिटेन के संपर्क में आने से तबस नबस हो गई । देश हर चीज के लिए अंग्रेजों का गुलाम हो गया । नागार्जुन ने इसे छटीर उद्योग धन्यों के संदर्भ में प्रस्तुत किया है ।

सुधारवादी आन्दोलन

भारत में सामाजिक स्तर की बड़ी बेचीदी भूमिका है । यहाँ प्रतिभा और चेतना को प्रगतिशील दृष्टिकोण से कभी नहीं देखा गया है अपितु जाति और लिंग भेद के कारण इनका वध ही किया गया है ।

गुरु सदैव गुलामी का हकदार है और स्त्री सदैव पुत्र की मुहताब है यह धारणा प्रत्येक वर्ग और समुदाय में भारत के हर कोने में पाई जाती है । यद्यपि इस शिक्षा और धारणा को बदलने के लिए समय-समय पर समाज सुधारकों ने प्रयत्न भी किए हैं परन्तु यह द्वैतीय आन्दोलन ले रहे । परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी से इस शिक्षा में राष्ट्रीय आन्दोलन देश में हर प्रान्त में घेतना संपन्न बुद्धिजीवियों ने प्रारंभ किए जाते रहे हैं । तबाल में राजा राममोहन राय द्वारा ब्रह्म समाज 1828 में बलाया गया जिसमें जाति व्यवस्था को तोड़ने और नारी को शिक्षा देने की पेशवा की । और "सती प्रथा" "बाल विवाह" ऐसी सामाजिक कुप्रथाओं पर चोट की ।

बम्बई में गोपीचन्द रागाडे, केदारप्र सेन आदि के प्रयास से "प्रार्थना समाज" ने समाज सुधार का काम किया । ब्रह्मण भारत में अक्षरों और निम्न वर्गीय लोगों को बराबरी का हक देने उन्हें समान शिक्षा और समान दर्जा देने के लिए इस आन्दोलन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

उत्तरी भारत में क्यानंद सरस्वती के प्रयास से "आर्य समाज" का जन्म हुआ । यह आन्दोलन उत्तर भारत में समाज में व्याप्त अंध-विश्वास, मूर्ति पूजा आदि का विरोधी रहा है । विधवा के पुनर्विवाह

और उसके आर्थिक स्वावलम्बन के लिए यह समाज सबसे पहले सामने आया। इस आन्दोलन की भारतीय समाज विशेष रूप से नारी समाज के बारे में प्रगतिशील भूमिका रही है। नारी को आधुनिक शिक्षा के माध्यम से स्वावलम्बी बनाकर उसे पुरुष के समकक्ष माना है।

इसी तरह के अन्य सुधारवादी आन्दोलन, धियोस्फीकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन आदि थे जिन्होंने भारत के समाज की कुरीतियों पर कठाराघात किया है। अतः नागार्जुन अपनी भाषाओं के दौरान समूचे भारत को देख चुके हैं उन्होंने सामाजिक जीवन में इन आन्दोलनों को प्रभावित करते हुए पाया है। स्वयं भी आर्य समाज और ब्रह्म समाज से बहुत अधिक प्रभावित रहे हैं। अतः "रतिनाथ की चाची" "दुखप्रोचन" "कुंभीपाक" "उग्रतारा" आदि पर इन आन्दोलनों का प्रभाव दिखाई देता है।

दूसरे स्वतंत्रता के बाद नारी और अछूतों को शासकीय संरक्षण मिलने से इस प्रगतिशील चिंतक ने इस वर्ग की हानि को सुधारने में अपना लेखकीय दायित्व निभाया है। उन्होंने बाल विवाह, वृद्ध विवाह आदि असंगतियों पर कठाराघात करते हुए विधवा के पुनर्विवाह और अंतर्जातीय विवाह को मान्यता देकर जाति पद्धति समाज की संकल्पना की है।

जमींदारी व्यवस्था

नागार्जुन का लेख ग्रामीण जीवन पर आधारित है । अतः उनके लेख में स्वतंत्रता से पूर्व और पणचाय की स्थिति स्पष्ट दिखाई देती है । गाँव का मुख्य व्यवसाय खेती है अतः खेती से जुड़ने वाली सभी समस्याएँ किसानों और मजदूरों की समस्याएँ हैं।

आजादी से पहले अंग्रेजों ने ही भारत की अर्थ व्यवस्था को तोड़ने के लिए खेती पर ही वार किया था और उनके यहाँ प्रचलित "लेण्ड लॉर्ड्स" की परंपरा थी । अतः उन्होंने यहाँ भी 1794 में यह व्यवस्था लागू की । यह व्यवस्था भारतीय समुदाय वादी परंपरा के बिल्कुल विपरीत थी परन्तु अंग्रेजों ने इसकी बिल्कुल परवाह नहीं की । इस व्यवस्था से उन्हें बुरी लाभ प्राप्ति थी- एक तो यह उनके अपने प्रशासनिक दायि के अनुकूल थी, दूसरे उन्होंने किसानों से स्वयं जाकर लगान वसूल करने की तकलीफ न उठाकर प्रशासक की दृष्टि से उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए यहाँ के कुछ "मातबर" लोगों को इलाके-इलाके में "जमींदार" का खिताब देकर उन्हें अपने संरक्षक के रूप में पैदा कर लिया । इन जमींदारों ने अंग्रेजों के प्रति पूरी वफादारी दिखाई । भारतीय किसान और खेतिहर मजदूर की उन्होंने हर तरह से सूट की, अन्याय और शोषण को कुना तिलुना बढ़ा दिया ।

यह भूमि व्यवस्था भारत के अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग रूपों में थी, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और उड़ीसा में यह जमींदारी प्रथा के रूप में थी, वीक्ष्य में इस सेटिलमेंट का स्वल्प रैयतदारी प्रथा और पश्चिमी प्रान्तों में मराठवाड़ी, ब्रजरेवारी आदि के रूप में था । परन्तु सभी प्रथाएँ मूल रूप में चारित्रिक समानताएँ रखती थीं । किसान का शोषण करने वालों की लड़ी लम्बी कतार हर व्यवस्था में मौजूद रही । नागार्जुन ने इस जमींदारी व्यवस्था और उसके आर्थिक को "रत्नाथ की चाची" "बलवनमा" "बाबा बटेसरनाथ" में इसी संदर्भ में प्रस्तुत किया है । जमींदारों के, उत्तराधिकारियों के, कर्मचारियों और कारिन्दों के जातिमाना कृत्य किसान और मजदूर को किस तरह आतंकित करते थे यह बड़े विस्तार से हमें देखने को मिलता है । "बलवनमा" में जमींदार के कर्म की लपेट, और "बाबा बटेसरनाथ" में प्रभुमर्दन राय पर किया गया अत्याचार बिल बहलाने वाली छटनाई है जो कि उदाहरण के रूप में नागार्जुन ने प्रस्तुत की है ।

राष्ट्रीय आन्दोलन और उसका कार्यरिज

नागार्जुन के उपन्यास समसामयिक राजनीति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं । श्रेष्ठों के खिलाफ लड़े गए भारतीय स्वाधीनता संग्राम के सभी आन्दोलनों की नागार्जुन को गहरी पहचान रही है । और

स्वयं नागार्जुन स्वाधीनता आन्दोलन से संसृप्त रहे हैं इसलिए उन्होंने भारतीय राजनीति एवं राज नेताओं को निम्न से देखा है उसके वर्ग चरित्र की गहरी पहचान की है ।

स्वाधीनता आन्दोलन में कांग्रेस, सुस्तिमलीग, समाजवादी दल, किसान-सभा, मजदूर संगठन आदि के उद्देश्य और उनके कार्यक्रम तथा उनसे जुड़े लोगों की भूमिका स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास में अक्सी सुस्पष्ट स्पष्ट रूप से मिलती है । कांग्रेस-जैसे अग्रियों ने अपनी सुरक्षा के लिए भारतीयों को मध्य के रूप में दिया था वह आजादी तक वैसी ही बनी रही । कांग्रेस का प्रारंभ से लेकर अंत तक का इतिहास इस बात का साक्ष्य है । बड़े-बड़े वर्गीय दलों, राजघरानों और पूँजीपतियों के नेतृत्व में चलने और फैलने वाला यह राजनीतिक दल भारत में सबसे बड़ा राजनीतिक दल था परन्तु इसके कार्यक्रम और नीतियाँ समूचे भारत का हित साधन नहीं कर सकीं । उदारवादी और सुधारवादी दृष्टिकोण से इस दल ने आजादी मिलने के स्वरूप को बराबर प्रभावित किया । इन्हीं वैचारिक मत भेदों के कारण इस राजनीतिक दल का आजादी से पूर्व और आज तक कीर्तियों का प्रमाणन हो चुका है । यह आपसी स्वार्थों के टकराव के कारण स्पष्ट चरित्र बनाने में असफल रही । महात्मा गांधी और उनकी नीतियाँ^{और} उनके अनुयायियों के व्यवहार से पता चलता है कि मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के साथ इस दल ने स्वाधीनता आन्दोलन से लेकर अब तक कैसा व्यवहार किया है यह ठीकी हुई बात नहीं है ।

समाजवादी दल, किसान-सभा और मजदूर संगठनों को व्यापक जन समर्थन न मिलने के कारण वे कांग्रेस के प्रतिद्वन्द्वी और विकल्प के रूप में नहीं उभर सके। यद्यपि इन्हीं संगठनों की स्वाधीनता आन्दोलन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका थी। स्वाभिमान की आजादी में सशस्त्र संघर्ष का जिहाद इन्हीं संगठनों ने उड़ा था, जेल, फाँसी, कालापानी और अमानवीय यातनाएँ इन्हीं संगठनों के लोगों ने सबसे अधिक झेली थीं। परन्तु उनका लाभ कांग्रेस जैसी पार्टी लेती रही जिसने देश को स्वाभिमान और सम्मान की जगह समझौता परस्त सोदेवाजी करके भगत सिंह, चन्द्र शेखर जैसे युवाओं की कूर्वानियों पर राख डाली थी।

नागार्जुन ने इस पूरे राजनीतिक फलक को एवं क्षीय की चरित्र को अपने उपन्यासों में प्रदर्शित किया है। दल और दल नेताओं की भूमिका का स्वतन्त्र उन्होंने यथार्थ के आधार पर प्रस्तुत किया है। आज वर्तमान भारत की राजनीति और उसके प्रोग्राम भी उनके उपन्यासों में चित्रित हैं।

धर्मदारी उन्मूलन और उसका प्रभाव

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय नेताओं ने देश के विकास के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम निर्धारित किए। इन कार्यक्रमों में छुट्टी की दशा को सुधारने के कार्यक्रम को सर्वोच्च प्राथमता दी गई थी। इसलिये

किस्तानों और मण्डूरों को सामंतों और जमींदारों के शोषण से मुक्त करने के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत ही "जमींदारी उन्मूलन" इसी आशय के साथ लिया गया ।

सिद्धियों से चली आ रही इस परंपरा का अंत सेवान्तिक तौर पर बड़ी जल्दी हो तो गया परन्तु ध्यापहारिक दृष्टि से यह आण भी तनाव और संघर्ष का कारण बना हुआ है । अंग्रेजों द्वारा पैदा किया गया यह कर्ष उसके साथ रहकर शोषण, अन्याय, बेइमानी, जात-साणी की तमाम हरकतों से परिचित था उसके उत्तराधिकारियों को यह सब विरासत के रूप में हस्तान्तरित होती रही । और भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में इस कर्ष की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका मरण इसीलिए थी कि वह सामाजिक सम्मान के साथ-साथ राजनीतिक सम्मान भी अर्जित करे । इसीलिए इसने क्रांतिकारी या गरमजलीय अथवा किस्तानों और मण्डूरों के हंगुन का सदयोग नहीं दिया था । अतः आजादी के बाद भी वह अल्पशिक्षित होने पर भी शासन में बना हुआ है । यद्यपि "जमींदारी-उन्मूलन" उनके साथ से जाता हुआ स्वामित्व था फिर भी सत्ता में होने, शासक वर्ग का सदस्य होने के नाते कानून में तीन पंथ लगाकर, पल अघत संघर्ष के नाम पर, जाग-बगीचे, ताताप, घरागाह आदि की आद में हजारों खूब की जमीन अपने जाति-नाजाति के

नाम लिखाकर उसे तो छड़पा ही साथ में सरकार की ओर से सुआव्यों के रूप में "ग्रीवीयर्स" जैसी भारी राशि वार्षिक सेशन के तब में कानूनन अपने और अपने कर्ण के लोगों के लिए करा दी ।

अतः जमींदारी उन्मूलन किया गया तो धले के लिए था परन्तु वर्गीय स्वार्थों के कारण इसमें लड़ी विस्तंगतियाँ आई । जमींदारों ने फागिल जमीन को जिसमें चरागाह, तालाब, बाग आदि थे उन्हें छुपके छुपके बेचना प्रारंभ किया-दूसरे, वर्षों से खेती करते अथवा काम करते चले आ रहे खेतों, पोखरों आदि पर किसानों और मछुओं आदि को उसने बेदखल करना प्रारंभ कर दिया । अतः एक ओर किसान और मजदूर दूसरी ओर जमींदार और उसके कर्मचारी देहात में संघर्ष का वातावरण बना रहे हैं । किसान अपने एक ओर अधिकार के लिए लड़ रहा है । आजादी से पहले वह विदेशी सत्ता से लड़ रहा था तो दूसरे, आजादी के बाद वह अपनी अस्मिता के लिए इन खरिन्दों से लड़ाई लड़ रहा है ।

दूसरे गति में एक "नए भूस्वामी" वर्ग का जन्म भी आजादी के बाद हुआ है । इस वर्ग में जमींदार की शोषण की प्रवृत्ति और पूँजीपति जैसी चालाकी इसके धरित्र में देखने को मिलती है । यह पैसे के चल पर खेती का औद्योगीकरण कर गाँव में शिक्षा और सम्पन्नता के माध्यम से तमाम सरकारी सुविधाओं को दोनों हाथों से छीन रहा है । अतः गरीब किसान पुराने जमींदार और नए भू स्वामी के बीच में दिन-पर

दिन पिसता जा रहा है। वह अपने अस्तित्व के लिए कभी शहर आगता है तो कभी गाँव वापस आ जाता है। उसके लिए भाड़ में कहीं भी ठँक नहीं मिलती।

नागार्जुन ने इस बदलती हुई स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन कर गाँव की इस भीषण परिस्थिति का चित्रण किया है। "कृष्ण के बेटे" "बाबा बटेसरनाथ" "बलचनमा" इस बदलाव के प्रमाण हैं।

चकबन्दी और ग्रामीण विकास योजनाएँ

नागार्जुन ग्रामीण जीवन से संयुक्त हैं। उनकी रचनाओं में गाँव के किसान और मजदूर हैं। अतः खेती की उन्नति के लिए स्वतंत्र भारत के तमाम कार्यक्रम बनाए गए थे। चकबन्दी, धीरत, क्रान्ति, ब्लॉक, कॉपरेटिव सीड स्टोर, उन्नतिशील, खाद, बीज, यंत्र आदि किसान की खाँ सुधारने के लिए खेलात में पहुँचाए गए हैं। परन्तु किसान आप भी अशिक्षित और गैर जानकार होने के कारण इन तमाम सरकारी सुविधाओं का फायदा नहीं उठा पा रहा है। वह केवल इस प्रदर्शनी में ब्लॉक मात्र हैं। इन तमाम सुविधाओं का बड़ा ^{लाभ} भू-स्वामी और जमींदार ने उठाया है।

अतः नागार्जुन के उपन्यासों में जिन्हें मात्र अंधल-विशेष का छेड़कर ध्याव्यापित किया जाता है। परन्तु ऐसा नहीं है। इन

उपन्यासों के संदर्भ बड़े व्यापक हैं । ये राष्ट्र की मूल भाव धारा से जुड़े हुए हैं । देश की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं का पूरा विवरण इस लेखक के उपन्यासों में हमें मिलता है । इसी लिए पृष्ठभूमि के रूप में उनके उपन्यासों के संदर्भ देख लेना अनिवार्य हैं जिसे मूल्यांकन में एक दिशा मिल सके । प्रस्तुत अध्याय में इसी दिशा में इसकी ओर प्रयास किया गया है । नागार्जुन के उपन्यासों के रचना संदर्भों को उनकी पृष्ठभूमि में स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है।

॥

॥

द्वितीय - अध्याय

नागार्जुन की जीवन-यात्रा और वैपारिक संकल्प

॥

॥

नागार्जुन की जीवन यात्रा और वैचारिक संकल्प

नागार्जुन का समूचा लेखन उनके अनुभवों का पुंज है। उनकी जीवन-यात्रा के तमाम सौपान उनकी रचनाओं के अध्याय हैं। कविता और उपन्यास दोनों में ही यह बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। अतः उनके उपन्यासों के विश्लेषण से पूर्व उनकी जीवन यात्रा और उससे जुड़े संघर्ष भी जान लेना आवश्यक हो जाता है। देश-विदेश, सरकारी-नैर सरकारी व्यावसायिक-नैर व्यावसायिक, शिक्षित-अशिक्षित आदि परिवेश उनकी वैचारिक यात्रा के पड़ाव हैं। नागार्जुन ने अपने समूचे लेखन में चाहे वह कविता हो अथवा उपन्यास चाहे वह मैथिली रचना हो या संस्कृत या हिन्दी, आम आदमी के छुछ वर्ग, दैनिक-पीड़ा और क्लृप्त क्रन्दन से उभरते हुए आक्रोश को अभिव्यक्त किया है। उनका समूचा चिन्तन जगत उन लाखों लाख मूक धेरों से भरा हुआ है जो छुटान रखते हुए भी बेजुबान हैं शक्ति संपन्न होते हुए भी शक्तिहीन हैं, बहुसंख्यक होते हुए भी अल्प संख्यक हैं तथा दिन रात कराते हुए भी भूख और ली रहकर जिन्दगी पूरी कर रहे हैं। उनका इस सब पिसे का से तादात्म्य अमानक और अनायास नहीं है। स्वयं उच्चवर्ग में पैदा होने पर भी वे निम्नवर्ग से उसके परिवारों से जुड़ते गए। उनके जीवन के पड़ावों, मोड़ों घोरस्तों-धीराहों और धूल भरे गली गलियारों का यह स्फुर बहुत लम्बा है जिसे उन्होंने स्वयं पैदल चल कर ही तय किया है और उससे

प्रस्तुत अनुभवों को अपनी शब्द राशि के माध्यम से साहित्यकार के रूप में जनमानस के निरुद्ध रखा है । अतः प्रस्तुत अध्याय में नागार्जुन की जीवन-यात्रा और उसके अनुभवों को प्रस्तुत किया गया है जिससे उनकी विचारधारा और संकल्प दृढ़ होते गए हैं उन्होंने अपने मन का रास्ता चुना है ।

मृदु कद अनुभवों की जन्मना शुरुआत

नागार्जुन के जीवन की शुरुआत ही गरीबी और अभावों के बीच से होती है । चार वर्ष की अवस्था में माँ का देहान्त और लापरवाह पिता के कारण उनका उपेक्षित बचपन उन्हें इस रास्ते पर ले आया । पिता द्वारा दी गई माँ की प्रशंसा और उनकी अपनी पिछवा माँ की प्रति आसक्ति से बाल- नागार्जुन का मन कभी श्री पिता के प्रति श्रद्धा उत्पन्न नहीं कर सका । इस बात का आक्रोश उन्होंने 1947 में "रत्नाथ की चाची" में रत्नाथ बनकर अभिव्यक्त किया है--

"रत्नाथ को अपनी माँ याद नहीं है । थोड़ा-सा आभास मात्र है । वह गौर इयाम थी । उसे दूध का रोग था । बस यही रस्ती ले याव है । माँ का चेहरा कैसा था ? कपार छोटा, आँखें न छोटी न बड़ी । नाउ मुकीली नहीं थी । माँ का प्रसी छिड़ते ही एक ध्यानक क्षण उस लड़के की आँखों के आगे नाच जाता था । वह नहीं चाहता था कि इस तरह का

अप्रिय और भयानक हृदय उसे याद आया । किन्तु निर्णय अखि मूँद लेने से ही कोई बात मन में न आया, ऐसा तो नहीं हुआ नहीं ।

क्या थी वह बात ? यही कि रतिनाथ की बीमार मर्ी बिस्तरे पर उतान लेटी पड़ी है और जयनाथ स्फुरत्य धरकर बेचारी की छाती पर पेटा है । हाथ में कुल्हाड़ी है और वह अपनी स्त्री की गर्दन रेतता जा रहा है । वह धिधिया रही है, लेकिन कोई भी इस नरमेघ में हस्तक्षेप करने वाला नहीं मौजूद नहीं है ----- मर्ी धिधियाती है, साढ़े तीन साल के अबोध रत्ती ने यह हृदय देखकर दम साथ लिया है । घर के कोने में बेटा हुआ वह कनड़ी से रह रहकर अपनी मर्ी और बाप को देख लेता है -----

मर्ी की स्मृति के साथ वह भयानक चित्र रत्ती की आँखों के आगे आ जाता है । पिता के झुंझ स्वभाव के प्रति इस बालक के हृदय में प्रीतिहिंसा की आग कभी-कभी सुलग उठती है । तभी तनी धौहों और चढ़ी आँखों से वह बाप की ओर घूरता है । जिसको सदैव चाची से हल छलकर बातें करते पाया है, उसी का अपनी मर्ी के प्रति वह नृणाँस और स्ख व्यवहार रतिनाथ की समझ से परे की बात थी । वह चार साल का था, तभी मर्ी मरी थी । मर्ी के बाद चाची ने ही उसकी देखभाल की है । क्रोधी स्वभाव के इस पिता से चाची ही उसे बचाती आई है । ----- पिता के प्रति उसकी शक्ति का भाव या प्रह्ला बिल्कुल दिखायी नहीं । °

अपने माता और पिता के प्यार से जोसों दूर बालक नागार्जुन ने बचपन में ही नारी जीवन की उपेक्षा और विधव्य के साथ होने वाली छिलवाह से नफ़ट होते हुए भविष्य को देखा था। उसने जाना था कि उसके पिता तरीछे हजारों कामुक लालची और लंपट नारी के सतीत्व को सुरक्षित नहीं रहने देते। गौरी जैसी अनेकों विधवा घाघियाँ अधिरी उगेली अमावस, पूर्णिमा की रातों में इन निशाचरों की काम पिपासा का शिकार होकर अनैतिक गर्भ ढोती, गिराती जीवन भर जीवित लाश बनी रहती हैं। उनकी इसी बचपन की चेतना ने उन्हें आजीवन हक्खोरा। अतः वे इन समाज श्रवणों के ऋण से निरीह विधवाओं का इसीलिए पुनर्विवाह कराते हैं **॥उग्रतारा॥** अंतर्जातीय विवाह कराते हैं **॥बुध मोचन॥** सर्व पिता आदि के कठोर और दिक्यानुसी अनुशासन पर विधवा को स्वतंत्र निर्णय के लिए घर से बाहर मनचाहे पति के साथ विवाह करते हैं **॥अभिर्नदन॥** तथा नारी समाज को संगठित कर शोषित नारियों की नारी समाज द्वारा ही इसी-लिए सहायता करते हैं **॥कुंभीपाक॥** कि यह लंपट समुदाय फिर भी कभी इस तरह का व्यवहार न कर सके।

नागार्जुन जब बनारस में पढ़ते थे वह समय इनके जीवन का उषा काण था। उस समय के काशी प्रवास ने इनके चरित्र में रुढ़िभ्रमक के बीज डाले और अन्ततः वह अकेले अपने जीवन के रास्ते के मुसाफिर रहे। बनारस एक और तो पण्डों पुरोहितों का शहर था दूसरी ओर आर्य समाज के प्रवचन

भी वहाँ हुआ करते थे अतः नागार्जुन ने इन दोनों को भली भाँति ज्ञापि कर पंडितों की-पुरोहिताई-को दुत्कारा और आर्य समाज और बालपीठ जी के तानिध्य में आते गए । बनारस में ही रहकर उन्होंने एक लावारिशा लाश का वारिशा बनकर उसकी दाह क्रिया की । ब्राह्मण समाज में यह कार्य होने पर सहपाठियों में बावैला मचा परन्तु बिना परवाह किए सभी कार्य अपने छूट निश्चय के अनुसार संपादित करते गए ।

बनारस में ही रहकर अपनी इलाहाबाद की यात्रा के दौरान लेखक ने एक जूता गाँठने वाले मोची के यहाँ सब कुछ जानकर गुड़ खाया था उसके घर का पानी पीया था । अतः नागार्जुन ने निम्न वर्ग से अपना रिश्ता भावुकता के कारण नहीं अपितु छूट निश्चय के कारण जोड़ा था। दुर्गों-सुर्गों से शोषित समुदाय से उन्हें बचपन से ही लगाव हो गया था इसी लिए वे जानबूझ कर मोहल्ले के निम्न वर्गीय बच्चों के साथ खेलते थे ।

शिक्षा एवं संपर्क

शिक्षा के नाम पर नागार्जुन ने कभी भी उच्च शिक्षा अथवा विश्व-विद्यालय का द्वार तक नहीं देखा । पिता द्वारा की गई घनघोर उपेक्षा और बंजूसी के कारण वे सदैव संस्कृत की पाठ शालाओं में चकराते रहे । पिता गोकुलनाथ सदैव आलसी मंदबुद्धि और नागार्जुन के ही शब्दों में "मूर्ख" थे । अतः परासक्त पिता अपनी इस संतान को रास्ता दिखाने के बजाय धकेलते

ही रहे । नागार्जुन ने अपने बलबूते पर संस्कृत और व्याकरण जोउल्लस्य हो सजी सीखा । शिक्षा काल में पिता श्री के वाक्य स्मरणीय हैं—“सैंत मेंत में लड़का पढ़कर तैयार हो जायेगा, अपनी तो एक कौड़ी भी नहीं लगेगी । उल्टे पढ़ाई के दिनों में भी चाहेगा तो हमारी मदद करता रहेगा” । और वास्तव में हुआ भी यही । नागार्जुन संस्कृत विद्यालयों में पढ़ते रहे, बड़े श्रीमंतों के परान्न भोगी होकर “नौ कुर्गा” के दिनों खूब जमकर “चण्डी पाठ” लिखा और पिता को “छठारख आने” देते रहे । अपनी शिक्षा और पिता के अभिभावकीय व्यवहार पर उन्होंने “रतिनाथ की याची” में लिखा है । लोअर प्राइमरी से अपर प्राइमरी की शिक्षा का खर्च चार पाँच रूपय जुनकर उनके पिता की अमृतवाणी दर्शनीय है —

“नहीं, कभी नहीं । यह नहीं हो सकता । प्रातः स्मरणीय नीलप्राथव उपाध्याय का वेशधर म्लेच्छ थाका पड़ेगा । उसी दिन धरती उल्ट जायेगी- और आसमान से अंगारे बरसने लगेंगे । वकील वालस्टर बनकर प्याण लहसुन और अण्डा नहीं खाना है रत्ती को, उसे तो अपने पूर्वजों की कीर्ति रक्षा करनी है ----- बस एक पटा कटा अमरकोश कहीं से उठा लाए और टेडा के हाथ में थपाते हुए कटा- क्या करना है अणि पढ़कर, हिस्तान खाना है । तो यह अमरकोश, जिस दिन यह कण्ठस्थ हो जायेगा उस दिन तीनों लोक हुम्पारे लिस हस्तामलक हो जायेंगे ।

तो यह रहा इस लेखक का शैक्षिक जगत, जिसके ऊपर उनके विचारों का महल खम्बपा रहा है। नागार्जुन ने इस जिज्ञा में बड़ी गंभीरता से सोचा वे घर छोड़कर देश-देशान्तर में निकल गए।

संपर्क में नागार्जुन आग्यशाली रहे। उनका संपर्क घेतना संपन्न लोगों से होता गया। लंका में बौद्ध भिक्षु होकर राहुल सांकृत्यायन की परंपरा से जुड़े तो इधर बिहार में किसान आन्दोलन में स्वामी सहजानंद के संपर्क में आए। यहीं से उनके सच्चे कर्म क्षेत्र की शुरुआत होती है। जब उनकी पहली गिरफ्तारी 1938 में अमबारी [बिहार] के जमींदार के खिलाफ किसान संघर्ष में होती है। वे छजारीबाग जेल में दस महीने जेल में रहे। नागार्जुन का इधर संपर्क सूत्र कई महत्वपूर्ण लोगों से जुड़ा। समाजवादी चिंतक कार्यानंद और इयामनंदन मिश्र से भेंट हुई। उनका पत्र व्यवहार नेताजी सुभाष से भी हुआ। इसके परिणाम स्वरूप तृतीय महायुद्ध में भारत की भागीदारी के खिलाफ होने के कारण अंग्रेजी सरकार ने फिर जेल में डाल दिया और भागलपुर में आठ महीने की पुनः जेल काटी।

जेल यात्राएँ विद्रोही प्रवृत्ति और साहित्य रूजन

जैसे कि कहा जा चुका है कि नागार्जुन को बचपन में विरासत के तौर पर कोई ऐसी स्वस्थ और संतुष्टि न तो विचारधारा ही मिली न ही पारिवारिक संस्कार और न उच्च शिक्षा से प्रसूत बौद्धिकता। अपने परिधेय के बिल्कुल विपरीत ही नागार्जुन ने रास्ता बनाया। "यात्री" नाम

उनके इस संघर्षशील और अनुभवी परिवार को बनाने और पहचान कराने में बहुत सक्षम है ।

नागार्जुन जिस समय युवावस्था में थे । भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन स्वतंत्रता संग्राम को लड़ रहे थे । कांग्रेस उस समय भी सबसे बड़ी और लोक-प्रिय पार्टी थी । परन्तु इसमें बड़े घरों, रईसों और नवाबों की ओलाव की मरमार होने के कारण और दूसरे कांग्रेस की सम्प्रदाय परस्त नीति के कारण वे इससे अलग रहे । और सुभाष चन्द्रबानसर्जी जैसे प्रगतिशील व्यक्तियों के संपर्क में चले गए । और अपना स्थाई रास्ता चुना । उनके "रतिनाथ की पापी" और "कलचनमा" में यही 1935 से 1948 तक की कड़क बदलती हुई राजनीति और राज नेताओं के परिवार जीकत हैं । नागार्जुन समाज संघर्ष और स्वाभिमान स्वतंत्रता के पक्षमाती थे । अतः वे कांग्रेसी अनुमान, सत्याग्रह और अहिंसा पेशी नीतियों में विश्वास नहीं रखते थे । इसीलिए उनके लेखन में कांग्रेस और उसके राजनेताओं की बड़ी खिन्ना उधेड़ी है । परन्तु वे गांधी जी का सम्मान करते थे । उन्होंने "बाबा बटेसरनाथ" में लिखा है — "आजादी के लिए जो सड़कवारी पहले थोड़े से पढ़े लिखे लोगों तक सीमित थी, उसे गांधी जी आम पाँखल तक ले आए । यही उनकी सबसे बड़ी खुशी में मानता हूँ ।" और यहाँ तक कि उन्होंने उनकी हत्या पर "तर्ज" कविता भी लिखी थी ।

जेल जाने का तिल-तिला और पिरोटी प्रयुक्त बाबा नागार्जुन की अभी तक कनी हुई है। आपात-काल के दौरान बटती हुई तानाशाही के खिलाफ उन्होंने बिप्रा गांधी की घोर भर्त्सना की थी और वे० पी० के साथ "संपूर्ण-क्रान्ति" के नाम पर आजाद भारत में भी जन जीवन की आपापी के लिए जेल काटी थी। अतः नागार्जुन की संपूर्ण जीवन यात्रा बड़ी संघर्ष-शील रही है। इस यात्रा का उनके जीवन और साहित्य में बड़ा योगदान है। उनकी समस्त रचनाएँ चाहे वह गद्य में हों अथवा पद्य में रास्ते के अनुभवों से प्रसूत हैं। अन्य लेखकों और रचनाकारों की तरह उनका साहित्य काफी हाउस अथवा डिस्टिन्क्शन की नकली जमीन से पैदा नहीं हुआ। उनकी इसी यथार्थरक ज्ञान से उनका पिरोट कहीं आक्रोश और कहीं व्यंग्य में व्यवस्था और उससे जुड़े लोगों पर बरसता रहता है।

अतः नागार्जुन ने "रतिनाथ की पापी" में विधवा समस्या, "बतपनमा" में किसान और जमींदार संघर्ष, "नई पौध" में अनमेल विवाह बाबा ब्रह्मनाथ में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और जमींदारी उन्मूलन में जमींदार और भूस्वामी की मिली भगत से किसानों को होने वाले शोषण, "दुष्प्रभोजन" में विधवा का अन्तर्जातीय विवाह, "फरुज के बेटे" में निम्न वर्गीय मछेरों का जमींदार के खिलाफ संगठन और संघर्ष, निम्नवर्गीय नारी की जन आन्दोलन में सक्रिय भूमिका, "कुंभीपाक" में अस्वास्थ्य महिलाओं

के नारदीय ऋषि की वास्तव, "अमन्या का बाबा" में अपने [पुनारिण] के दौरे, उग्रतारा में गर्भवती विष्णु का विषाद, "पारो" में अमृत घर की छानी तथा "शिशु" में राजेश्वरी की अतिरिक्त घालें का सुपाता उल्लेख किया गया है ।

अतः नागार्जुन ने अपने ऋषि में कपीर की तरह समाज की हृष्टि फिटाव से सीखा । सामाजिक स्थितियों पर उनके मन में विद्रोह और आक्रोश उत्पन्न है, वसित और शोषित वर्ग के प्रति उनके हृदय में स्नेह और त्याग का भाव बाधित हुआ है । इसी के लिए आज भी उनके हृष्टि पर एक अवशेष बना रहता है बीमार होते हुए भी वे अपने इन निम्न वर्गों शोषित और पीड़ित समाज के सदस्यों से मिलने के लिए यात्रा करते हैं । यह रहे हैं ।

तृतीय - अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में विहित सामाजिक संस्था

नागार्जुन के उपन्यासों में विविध सामाजिक संघर्ष

नागार्जुन के उपन्यास ग्रामीण समाज का दर्शन हैं। सुदाने और नर का अन्तर, शच्छे और गुरे की परिचित तथा पिछली क्ला और शाय तथा शाये के स्त्रिय का स्तिता उनकी औपन्यासिक कृत्तियाँ बराबर है रही हैं। आधुनिक शिक्षा प्रजाती से उत्पन्न मानसिकता, नर विविधित साधनों द्वारा अर्जित एन के द्वारा ग्रामीण समाज का उपरता नया स्त्रुहाय तथा लिताय और मणनुर की पुनः वेवली राप्तेताओं द्वारा क्जाया गया ग्राम यत्त, सामाजिक परंपराओं और मान्यताओं में हुतता हुआ मध्यम वर्ग उनके उपन्यासों के विविष्ट कथानक हैं। इस तरह के ग्रामीण में आधुनिक पैत्ता का विकास भी हो रहा है। नागार्जुन ने उसे ही अपने उपन्यासों में ल्य क्जाकर जन पैत्ता के माध्यम से वर्णर समाज की परंपराओं को तोड़ने का प्रयत्न किया है।

मॉस में उपरसे पातिवाच, नारी की उपेक्षा, पात विवाह, लूव विवाह, पिथ्वा स्प्रत्या पैती ध्यानक और विह्व मान्यताएँ आय पैत्ताकिक ल्य में कीचित हैं उन्हीं आधुनिक शिक्षा और पैत्ताकिक चिन्तन से तोड़ा है। शायक के टिकाइते एर सामाजिक अस्तुल्ल में ग्रामीण समाज के अंतर्गत जन-पैत्ता एही पैती है पक्क रही है। अपने एक और अधिकार के लिए पैत्ता

के मासूम और विज्ञान में, परिवार में वीर्यापूरी प्रियाई और कीकी मान्यताओं के विनाश विपरीत में प्रीति से प्रसन्न परिवार में प्रतीति मर्यादा के विनाश गरीब में अपना तिर उठा दिया है । अतः एक पक्षसे इस ग्रामीण जीवन के संघर्ष के स्वरूप को मानवार्थ में अपने उपन्यासों में मर्यादित स्थान दिया है । उनकी प्रत्येक ग्राम्यात्मिक कृति अनेकों सावा-धित और सामाजिक संघर्षों की अभिव्यक्ति है ।

आधुनिक जीवन वार्थ और नैतिकता के बदलते मानक

स्वतंत्रता के बाद भारत के गाँव के जीवन स्तर का स्वरूप अपने परंपरागत समुदायवादी दृष्टिकोण से अलग होता जा रहा है । गाँव के गाँव का प्रत्येक व्यक्ति तत्काल रूप में जी रहा है । वेदांत में उपरती हुई व्यक्तिवादी भावना ने व्यक्ति को उसके ही अस्तित्व के लिये में अलग-अलग कर दिया है । सखीय और सजायता, गरिब और अमीर की बात गाँव अलग-अलग और "धर्म और धर्म धर्म" के रूप में लिपटी लिपटी जा रही है । गाँव की लिपटा में जीव की जा है — "उसके सामने प्रतिष्ठित सत्य एवं स्वीकृत नैतिक मानक एक पक्ष पर हैं और न केवल समाज के प्रति बल्कि अपने प्रति प्रियोप ज्ञान के लिए आकाश है, प्रयत्नशील है । उसके लिए पर सर्व अर्थीन हो गए हैं और सारी नैतिक मान्यताएँ, धर्म धर्म-की-सारी आधार कीपताएँ छोटी एवं धर्म पर गई हैं ।" एकी अत्यर्थता को सर्व

जाने के लिए वह दिन रात उसने से पड़ा है । "उग्रतारा" में नागार्जुन
सब अस्मिता को उगार रखे है जिस कामेधर की लक्ष्मी उठाकर
छोटी है— "देहात में रहना है तो गुण्डा को कामेधर । गुण्डों से
होसती लो, उन्हें लिखाओं पिताओं । तुम उनका काम करो पे की छुपारा
काम करो ।"

हुठ, बेईमानी, बेलिखाणी गरिब में दूध पनप रही है । कल कल एक
की इज्जत समूचे गरिब की इज्जत थी आज उसी पर गरिब के बाधितों एक दूसरे
की बहिष्करी पर लुहुरिष्ट रहते हैं और पैसे के कल पर उसे सामान्य बात
में परिवर्तित कर देते हैं बलवन्मा में ठीक ही कहा है — मरीती घर के
प्यारा घर/घाबल के चार खाने छोटकर बड़े लया जैसे पिछियों को छेताता
है उसी तरह से दोस्त वाले गरमईव औरतों को फेंका मारते हैं । उनके धन
की छेता है और अछि की छोटी है । अपमान है उनकी छेता । ऐसे
दानदान का आचारा से आचारा आसमी पण्डितों और पुरोहितों से
जलनसाहठ का फतवा पा जाता है ।" अतः वस्तुतः इस मागधियों के अनेक
सिद्ध नागार्जुन के उपन्यासों में उन्हें देखने को मिलते हैं ।

सामाजिक मूल्य संघर्ष और उनकी नवीन स्थिति

नागार्जुन समाज की स्थितियों से अपने प्रारंभिक जीवन से ही
विद्रोही रहे हैं । वे अनाचार्य आदर्शवाद, नैतिकता और मर्यादा के ध्वंसी

घिरोधी हैं। उन्होंने समाज की छोर परंपराओं पर पीट कर नया और
 नया विधीय समाज की रचना की है। नारी जिसे भैतिकता की छिरीरों
 में लपेट कर घर के पीतरी लोने में डाला जाता है वे इसके उल्टाती चर्चों।
 वे नारी को समता-समानता और आर्थिक स्वायत्तमन्त्र देकर उसे मुख्य
 की बुलायी हैं मुक्ति देते हैं। बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, लैप्य पैती
 परंपरा और उससे उत्पन्न विधुर और विधवा समस्याओं का वे इस पुन-
 विवाह में करते हैं। विधवा जिसे लक्ष्म-लक्ष्म पर उपेक्षा, और मनुष्य की
 लामुक्ता का शिकार बनना पड़ता है नागार्जुन इसका परिश्रम "रतिनाथ
 की पापी" में अपने वैयक्तिक जीवन में देख सकते हैं केबाव उसके पुनर्विवाह
 है उसके सम्मान और सज्जत की रक्षा करते हैं।

नागार्जुन ने धार्मिकता को अन्तर्जातीय विवाह के माध्यम से तोड़ने
 का प्रयास किया है। वे प्रेमरस से आये का रास्ता दिखाते हैं। उन्होंने
 निम्न वर्गों समाज और नारी समाज की मूलभूत समस्याओं का एक प्रति-
 लोचनी दृष्टि से प्रस्तुत किया है। पति पक्ष को रक्षा का सुधार एताने वाले
 समाज पर नागार्जुन ने "रुद्र के डेरे" में प्रहार करते हुए प्रष्ट पति के टिकाय
 सिर उठाने वाली "मधुरी" को नारी धैर्य के लिए आगे धिया है ताकि
 नारी अपने अस्तित्व और अपनी अस्मिता को पसचाहें— "अप सब लक्ष्मी उस
 नखाओर उदरे की तात्काल वरुणित करने नहीं पायेगी— फिर से शादी
 कर लेगी किसी चितोर-भैरवजन और मेहनत का जीवन से— और दोर मर्द
 है लोच औरत लक्ष्मी किसी नहीं सुधार सकती है क्या।

अतः यह आत्मनिर्भरता और आत्म सम्मान नागार्जुन अपने नारी पात्रों में देते हैं। उन्होंने निम्न वर्ग के पात्रों को भी उनके अधिकार के लिए आगे किया है। बलपनमा, मोहन मांझी, दुभी, मधुरी आदि पात्र अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हैं उन्हें अधिकार और सम्मान मिलता है।

मधुन वाम्पत्य जीवन और आधुनिक नारी

नागार्जुन ने भारतीय वाम्पत्य जीवन को आधुनिक स्तरों में प्रस्तुत किया है। सफल वाम्पत्य जीवन के लिए वे नैतिकता और आर्थाभाव को महत्व नहीं देते हैं अपितु स्त्री और पुरुष के समान भेल पर जोर देते हैं। आधुनिक शिक्षा के माध्यम से वे नारी को समाज का खिलौना न मानकर अपितु पैतना सम्पन्न पीढ़ी की आधारशिला मानते हैं। अन्मेल घर, पुष पर और उसके परिणामों से वस्तु नागार्जुन ने पैतना सम्पन्न मीठलाओं को आगे कर नए समाज की स्तंभना की है। ईर्ष्या, डाह, बलन पैसी कम्प्लीकसी उनकी नारीयों में नहीं है। वे दूसरों का घर नहीं उजाड़ती हैं। वे अपना रास्ता पित डंग से तय करती हैं वह नया और आजकल के युग के अनुकूल है। उन्होंने रूढ़िवादी समाज पर अपने श्रेष्ठ से प्रहार करते हुए उसकी मान्यताओं पर प्रहार करते हुए ध्वस्त किया है। वे अन्मेल घर के साथ होने वाले स्त्री-पुरुष के संबंध को बलात्कार करते हैं। इसीलिए वे आधुनिक परिधि में उसे देखकर उसकी प्रस्तुति सुगानुकूल और स्त्री-पुरुष की समता समानता के आधार पर करते हैं। उनके पुरुष पात्र भी इस दिशा

में प्रगतिशील हैं वे समाज की कार्यरता को अपने नए विचारों से तोड़ते हैं—
 “कामेश्वर तुम्हें लेने आया है, ~~उस~~ उसके साथ चली आओ। वह तुम्हें
 भी स्वीकार करेगा और तुम्हारे पिछे को भी स्वीकार करेगा। कामेश्वर
 नए भारत का नया युवक है, पुराने ढंग का छिछोर नौजवान नहीं है वह”

इस तरह नागार्जुन ने वर्तमान पीढ़ी को अपनी कृतियों से संकित
 देकर नयी सामाजिक संरचना का संकल्प लिया है। उन्होंने आजाद
 भारत का स्वना नए भारत के नए समाज में देखा है।

नई और पुरानी पीढ़ी का वैचारिक संघर्ष

नागार्जुन का चिंतन उनके अनुभवों पर आधारित है। आधुनिक
 शिक्षा और पश्चिमी सभ्यता के स्पर्श के कारण उन्होंने वर्तमान समाज के बदलते
 हुए परिपेक्ष को पहचाना है। आधुनिक शिक्षा ने युवा वर्ग के चिन्तन
 को नयी दिशा देकर पुरातनता के मूल्यों पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है।
 आज यही सबसे बड़ा कारण है कि नई और पुरानी पीढ़ी का वैचारिक
 मतभेद उत्पन्न हो सामने आ रहा है। इस बदलाव को नागार्जुन ने अपने
 उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के दृष्टि में नई और पुरानी पीढ़ी का
 वैचारिक संघर्ष माना है। वे इस वैचारिक बदलाव को मात्र पीढ़ी का अंतर
 नहीं मानते अपितु स्वस्थ विचारों की गुंजात मानते हैं। “नई पीढ़ी” के
 अन्तर्गत उन्होंने बाल विवाह स्त्रेज और दूध विवाह जैसी कार्यर, मैथिल

ब्राह्मणों में तीर्थों से मान्यता प्राप्त "बिकौआवर" पेशी प्रथा का उन्होंने युवा वर्ग से विरोध करवाया है। पूरा का पूरा छूट समाज छूट विवाह के समर्पण में होते हुए भी समपाटी उसकी पाल नहीं चलने देती और मनमिसे पर से बितेसरी का विवाह गंध का विरोध होने पर भी करा देती है। यही बात "दुखमोचन" में देखने को मिलती है। नित्यातंद और देवी माधव को रातों-रातों दुखमोचन की गीतीविधियों के कारण नींद नहीं आती।

अतः इन नए मूल्यों के अनुपालन में युवा वर्ग सामाजिक समस्याओं को भी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखता है। उनके हल को भी वह नए विचारों से प्रस्तुत करता है। परन्तु समाज की व्यवस्था पर तो छूट समाज का गीध साम्राज्य है। वे अपने इस अधिकार क्षेत्र में किसी के हस्तक्षेप को तो क्या झुठिपात को भी ठूरा मानते हैं। हर बात की प्रतिष्ठा उनकी मूर्खों के बालों से संयुक्त है। इन्हीं जटिलताओं में युवा और छूट मानसिकता का संघर्ष होता है। क्योंकि आज का हल आज के व्यक्ति के ही हाथ में है। इसीलिए आधुनिक परिप्रेक्ष्य की शिक्षा और समस्याएँ इस समाज की पुरानी परंपरा को तोड़ रही हैं।

नागार्जुन ने समाज संबंधी चिंतन को इसी अध्याय में वर्ग संघर्ष को अध्ययन की सुविधा के लिए लिखा गया है। उन्होंने गरीबों, मजदूरों, किसानों को धर्मोपार और पूर्णपण के खिलाफ उनके अमानवीय व्यवहार और बहिष्कार के कारण प्रेरित किया है। नागार्जुन ने वर्ग शत्रु और वर्ग मित्र

की पड़ी गहराई से पड़चान की है । उन्होंने स्पष्ट किया है कि आधुनिक
 ध्वनीवादी व्यवस्था में धातु सत्ता का सत्ता के रूप में क्या पड़र क्या
 धेधत हर पद धेधती जा रही है । गरीब चाहे सज्जन हो या अर्क उतना
 अपना सब का है "सर्वद्वारा का" । और दूसरी ओर निम्न धातु का
 व्यवस्था यदि आधुनिक दृष्टि से समझें तो वह उच्च का में गिना जाता
 है । इस तरह से नागार्जुन के व्यवस्था में उच्च का, मध्यम का, और
 निम्न का है फिर और एक है वह में वगैरे की आपसी टकराव मिलती है ।
 यह टकराव सब नव निर्माण के लिए अनिवार्य होकर आया है । अतः समाज
 में संघर्ष के सुसूत्रों की सुलभता कई सुसूत्रों पर दृष्टिगोचर होती है । नागार्जुन
 ने पड़ी धातुवादी से उन्हें बचाया है । उन्हें सब धिक्का ही है । अपने इसी
 संतान सब पर नागार्जुन प्रेमपूर्ण की परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं ।

इसी अध्याय में नागार्जुन के उस दृष्टि को जो धैर्य गतिविधियों
 को उनके व्यवस्था और दृष्टि के साथ नव रूप में उन्होंने के रूप को उन्होंने
 पड़चाना है और उसे अपनी दृष्टि धर्मिता पर परखा है पड़ा है ।

वास्तव में यह नागार्जुन की वह धैर्य दृष्टि है जो उन्हें प्रेमपूर्ण
 से आगे से जाती है । नागार्जुन ने अपने समाजपर पित्त में नृत्तता का
 आभास दिया है । उन्होंने समाज की व्याख्या आगे के संघर्ष में सटीक
 प्रस्तुत की है । वे मध्य "सुधार" में विश्वास नहीं करते हैं वे सामाजिक
 पित्रताओं को नष्ट करने का स्वार्थ पक्षोपलब्ध करते हैं ।

प्रस्तुत अध्याय में नागार्जुन के इसी समाधपरक चिंतन का विश्लेषण किया गया है। जर्मन समाज और उसकी स्थितियों पर जोट करने वाला लेख आज भी विना निर्देश कर रहा है।

इसी अध्याय के अन्तर्गत नागार्जुन ने धर्म की आधुनिक समाज के परिदृश्य में व्याख्या प्रस्तुत की है। क्या न होगा कि नागार्जुन की धर्म मर्त्य का व्यावहारिक ह्रास है। उन्होंने संघर्षों, और मर्त्य में होने वाली उन क्षमताओं को देखा है जिनके द्वारा हमें तैयार शिक्षित और अशिक्षित समाज को धोखा देते रहते हैं। धर्म के बारे में नागार्जुन ने एक और बड़ी गम्भीर बात प्रस्तुत की है। वह है धर्म के एक शक्ति के रूप में विकास की। आपका धर्म से जर्मन द्वार इसीलिए थपका है कि हजारों बीछे की जोत मर्त्य से लगी हुई होने के कारण उसकी आमदनी का एक संस्था-संस्था सिलसिला है। दूसरे पुंजीपति उसे एक ट्रस्ट के रूप में मानकर अपने कामों को धियाता है। सरकार से धर्म के नाम पर धर्म बिल जाने वाले धर्म पर सब भारी आयकर और बिलीयर में हट लेकर जाला बाधारी को और अधिक ले करता है। जाल धृ-स्वामी और जर्मन द्वार धर्म धिया से मध्य इसीलिए थपके हैं कि उनका एक तो सुधर्म और अनाधारी धर्म धिया की जोट में जाल जाता है दूसरे धर्म धियाकारी उन्मुक्त के बाध लोये हुए सामाजिक सम्मान को मर्त्य मन्धिर आदि की स्थापना से धनः अर्पित कर लेते हैं। और

छात धर्म के तारे में नागार्जुन ने कड़ी है यह है राजनीति की संयुक्तता की ।
 घर-घर-राजनेता नर-देहा होने वाले-आचार्यों, ईश्वरों, परमेश्वरों,
 के शास्त्री-धर्म लेकर कुत्राव मेहान में उतरने से लेकर मंत्री बनने तक है तथ्य
 और उसके पास की धर्म-तथाकीर्तित पुण्य-आत्माओं के चरणों में अपनी स्वार्थ-
 पूर्ति है जिस दिन-रात तिर तुलना रहता है । नागार्जुन द्वारा रचित
 "जमनिया का बाबा" उपन्यास में उनके इसी व्यावहारिक चिंतन की अभि-
 व्यक्ति है । अतः दृष्टव्य अध्याय १) समाप्त के उन पहलुओं पर प्रकाश डालता
 है जिन्हें नागार्जुन ने ग्रामाचार्यों में जाकर देखा है ।

**

**

चतुर्थ - अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में विवक्षित राजनीतिक संघर्ष

**

**

नागार्जुन के उपन्यासों में पित्रित राजनीतिक संघर्ष

इस अध्याय के अंतर्गत नागार्जुन के राजनीतिक चिन्तन को लिया गया है। राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रतीय परिवर्तन का व्यक्तिगत प्रभावों को नागार्जुन ने अपनी यथार्थवादी दृष्टि से देखा है।

नागार्जुन के उपन्यासों के रचना संघर्ष आजादी से पहले और आजादी के बाद के हैं। अतः उनके उपन्यासों में स्वतंत्रता पूर्व की राजनीति, स्वतंत्रता आन्दोलन और स्वातंत्र्योत्तर भारत की वर्तमान परिस्थिति की अभिव्यक्ति की है। स्वतंत्रता से पूर्व में अधिपतियों के दमनक और धर्मधारियों के शोषण, स्वतंत्रता आन्दोलन में अवसरवादी राजनीति तथा स्वतंत्रता के बाद स्वार्थ और धर्मितावादी, परिवारवादी सीकीर्षता के दृष्टि को तीन पौधार्य जनता के अंदर पहले हुए इसके संभार परिवर्तनों को नागार्जुन ने स्पष्ट किया है।

स्वतंत्रता से पहले, अधिपति राज में भारत की सत्ता अधिपतियों के हाथ थी। उन्होंने यहाँ की जनता को कभी स्वच्छ प्रशासन नहीं दिया। उन्होंने दमन और अत्याचारों के माध्यम से भारत में आतंक और भय का वातावरण पैदा कर दिया था। अधिपतियों के प्रशासन में यहाँ की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को तोड़ कर रख दिया था। भारत के विषय विख्यात कुटीर उद्योग धन्ये जिनमें कपड़ा और शिल्प उद्योग प्रमुख थे उन्होंने बुरी तरह उखाड़े थे।

दूसरे उन्होंने भारत में उन्होंने कृषि-सुधार के नाम पर भारत में जमीन का अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग बन्दोबस्त किया गया था और उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए भारत में से ही इलाकों के भीतर एक जमींदारों का बहुत बड़ा कर्ष पैदा किया था। यह कर्ष तिर से पैर तक शीश्यों के अहसानों में डूबकर उनकी सुरक्षा और हित साधनों के लिए अपने ही देश की जनता को दबाने शोषण करने में कोई कसर नहीं छोड़ रहा था। इस कर्ष ने आन्तरिक प्रकाशन में इतना आतंक पैदा किया था जिससे किसान और मजदूर और अन्य सामान्य जनता छटपटा रही थी।

अतः नागार्जुन ने किसानों के नानाविध शोषण, मजदूरों की बर्हालती और गरीबों पर कर्ष की मार को स्वतंत्रता से पूर्व "रतिनाथ की पापी" और "बलधनमा" में बड़ी गहराई से दिखाया है। यद्यपि यह राजनीतिक परिदृश्य प्रेमचंद के उपन्यासों में आजादी से पहले भी चित्रित हुआ है। प्रेमचंद ने राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक लक्ष्यों की बड़ी विश्वास व्याख्या प्रस्तुत की है। किसान पर जमींदार तथा उससे लगे लिपटे लोगों की शोषण की भूमिका को प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। सरकारी संरक्षण में पलने वाला जमींदार अपने गाँव और इलाके में किसानों को अपने निजी कर्मचारियों, पटवारियों, कारिन्दों आदि के माध्यम से घुस-घुस कर बेजान करता था वह अपनी ज़मानदारी में इन्हें बेवम बनाए जा रहा था। दूसरे यही कर्ष राष्ट्रीय क्षितिज पर भी सूर्य की तरह

फस रहा था। लेकिन नागार्जुन के किसान और मजदूर प्रेमचंद के किसानों और मजदूरों से दो कदम आगे रहे हैं। प्रेमचंद के युग में जमींदारी अमल कायम था उसकी हानियाँ बड़ी पुछता थी। और किसानों और मजदूरों का कोई व्यवस्थित संगठन न होने के कारण उनकी फरियाद अथवा भावनाएँ सदैव उनके धूलों से कूयती जाती थी। परन्तु नागार्जुन के यहाँ स्थिति में अन्तर है। उनके जमींदारों की जड़ें छिल रही हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन पूरे चढ़ाव पर है। समाजवादी चेतना का प्रसार सामान्य जनता में हो रहा है। किसान और मजदूरों के संगठन उसे सह आगे बढ़ रहे हैं। उन्होंने राजनीतिक चेतना और किसान-सभा तथा मजदूर संगठनों से जमींदार की नाक में कौड़ी बंधवा दी है। इसमें प्रेमचंद और नागार्जुन के समय और चिन्तन का अन्तर रहा है।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन

गाँव का वह व्यक्ति को निर्धारित अपराध या सामान्य स्तर का पढ़ा लिखा था उसने भी भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। पेल जाने और फाँसी पर लटके पेली उसकी बलिदानी भूमिकाएँ बड़ी ही महत्वपूर्ण रही हैं। पेलता कि हानसिद्ध गुप्त के कथन से स्पष्ट है— स्वतंत्रता के पूर्ववर्ती काल में ही यदि हम अपने राष्ट्रीय वातावरण को देखें तो असहयोग आन्दोलन, सामाजिक बहिष्कार आन्दोलन, विभिन्न

सत्याग्रह, भारत छोड़ो आन्दोलन आदि ऐसे अनेक राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के कार्यक्रम थे जिन्होंने ग्रामीणों ने अपनी यथा उचित सहायता देकर अधिक भागीदार बना लिया।" इस प्रकार संघर्ष की पसली छींटा में एडा होने वाला, बलिष्ठानी धूमिल निजामे वाला वह देहाती प्रधान ही था। लेकिन कर्माग्रही की बात यह रही है कि उसका नेतृत्व सदैव सुविधा होगी उच्च वर्ग के लोगों ने किया। जिन्होंने आन्दोलन और संघर्ष की दिशा को सदैव अपनी स्वार्थ-पूर्ति के कारण विदेशी शासन के समर्थकों के अन्तर्गत अपने वर्ग के मुनाफे के लिए मोड़ते रहे। क्योंकि उस समय देश में राष्ट्रीय स्तर पर कश्चित् ही सबसे बड़ी पार्टी की परन्तु उसका नेतृत्व उच्च वर्ग के लोगों के हाथ में था जो कि जनघोर सुविधा होगी थी। वे देश के मुवा वर्ग की धेतना को सदैव संशोध्यों और सत्याग्रहों में बना बना कर ठण्डा करते रहे। इस संघर्ष में अयोध्या सिंह ने बड़ी स्वागत टिप्पणी की है— "यह सारी सुनिया में फ़ान्ति की तरह ऐसी हुई थी और पराधीन देशों की जनता उनके एकर साम्राज्यी छुटेरों पर आगे बढ़कर पार कर रही थी, भारतीय जनता की राष्ट्रीय मुक्ति की फ़ान्ति का रास्ता अपना रही थी। उसे एक फ़ान्ति-कारी नेतृत्व की आवश्यकता थी, उसे लेकिन जैसे एक नेता की जरूरत थी। यही सदैव कश्चित् के नेता ऐसा नेतृत्व देने में पूरी तरह असमर्थ रहे। अपने व्यस्तार से उन्होंने बिना देखा कि वे फ़ान्तिकारी नहीं मध्य सुधारवादी हैं।"

अतः नागार्जुन ने इस पूरे स्वतंत्रता आन्दोलन को, सक्रिय धूमिल निजामे वाले देहातियों को, और उदरपूर्ति के लिए शामिल होने वाले

अक्षरवाहियों को लड़ी निष्ठता से देखा है । उन्होंने इस पूरे नाटक और नाटकाचार्यों को अपने उपन्यासों में वही बारीकी से प्रस्तुत किया है ।

आम जनता और आजादी के लिए लड़ा जाने वाला आन्दोलन सामान्य जनता के लिए था इस श्रम को ध्यान रखते हुए उन्होंने "वतपनमा" में सामान्य समाजवादी रखे। वाले नायक वतपनमा के मुँह से ही स्पष्ट कराया है—

"अंग्रेज के बारे में सोचने लगा कि स्वराज्य मिलने पर पापु भइया लोग आपस में ही लड़ी मछली खाट ली । जो लोग आप मालिक बने बैठे हैं आगे भी तरमात लड़ी उठाएंगे । हम लोगों के हितों में सीठी ही सीठी पड़ेगी ।" वास्तव में यह मालिक लोगों के तरमात उठाने और गरीबों के हितों में सीठी-सीठी आने की बात नागार्जुन ने पूरे राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्य-कारिण को देखते हुए गंभीरता से कही है । वतपनमा और उसके भाई पान्दुरों का तो भाग नहीं कमर सका । सही मायने में भाग खड़ा है सुखपापु और महेन पापु जैसे पापु भइयों का जिन्होंने लड़ी में दूसरों से पाथ उलवाकर बाहर से साथ पट्टने की तरकीब लगाकर कामयाबी हासिल की थी । पापा पटेतरनाथ में नागार्जुन सखीवता का रूप स्पष्ट करते हुए बोलते हैं — आजादी जि । आजादी मिली है हमारे उग्रमोहन पापु को, सुशांतव पास को अंग्रेज की टिप्प पर जो भी धुने गए हैं उन्हें मिली है आजादी । मिलिट्टरों को तो ली ली ली आजादी मिली है । सैक्रिटारियेट के लड़े साइलों को भी आजादी से काइवा पहुँचा है ।"

स्वतंत्रता और उसके पाछ का भारतीय परिवेश

नागार्जुन ने आजादी मिलने और उसके पाछ की स्थिति को अपने उपन्यासों में स्पष्ट किया है । तद्विषय राजनीतिक दृष्टि से होने के नाते उन्होंने स्वतंत्रता के स्वल्प के निष्कर्षों को एक पैराग्राफ़ से स्पष्ट किया है । ऐसा ही कर्मचारियों के विषय को उन्होंने एक निष्कर्ष से देखा है । उन्होंने अपनी कविता में भी भारतीय स्वतंत्रता और उसके एक लोगो पर व्यापक ध्यान छोड़कर उनकी स्थिति को स्पष्ट किया था । उपन्यासों में तो यह वातावरण छुड़ा ही आसानी है । वास्तविक भारत के कर्मचारियों पर उन्होंने लिखा है "----- धानेदार और जिता के अधिकारियों की छुट्टी पर यदि परते रहे तो भारत माता की इज्जत आखर छुट जायेगी— जिस उल्लेख से व्यापक नागपुर गया था गुप्ता सत्याग्रह में शामिल होने । बिना उत्साह से उसने नमक कानून तोड़ा उछलता हुआ देश फिर देख कर घट्ट होनों वार देश के अंदर पहुँचा था ।। ज्वारों और लालों आखर उसी की तरफ़ धेत गए । कैदों फंसी पर लूते जगहों के परिवार हूँ-----तब पाछ एक आजादी हासिल हुई-----"

परन्तु भारत के राजनीतिक क्षितिज पर लक्षित योगी ह्य का नेतृत्व है । वह अपने और अपने परिवार के भले के लिये सत्ता और शासन का पूरा उपयोग कर रहा है । पूरा का पूरा कर्मचारी ह्य उसके झण्डे पर उसके परिवार की स्थिति को लुका कर रहे हैं । शासन वि के स्वल्प की इस सत्त्वार्थ को नागार्जुन ने ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है ।

जमींदारी उन्मुक्त और किसान और जमींदार संघर्ष

प्रस्तुत अध्याय में आजादी के बाद होने वाले जमींदारी उन्मुक्त और उसके परिणामों की भी विस्तृत व्याख्या की गई है। नागरिक ने इस प्रथा की समाप्ति और तत्पश्चात् समाज को सही ढंग से स्थापित किया है। जमींदारी उन्मुक्त के बाद गाँव के अंदर लड़ी ली विस्थापित स्थिति में जन्य स्थिति है। गाँव वैपारिक स्तर पर ली स्थितियों में टूटता गया है। एक ओर गाँव का जमींदार और उसके कर्मचारी और उनका अन्याय है तो दूसरी ओर किसान, ऊँतहर मजदूर और नीचे वर्ग के लोग जो छेती पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अपनी जीविता चला रहे थे। जमींदारों ने सदियों से छेती करते आए किसानों को अपनी एमीन से छेदछत करके उन्हें तीसरे आदमी को नीलाम कर अपनी अन्तिम नीयत का परिणय किया था। परन्तु आजाद भारत के किसान इस अन्याय के विरुद्ध सिर उठा लेते हैं। वे जमींदार की इस ओली नीयत का सामूहिक रूप से विरोध करते हैं। अपने एक ओर अधिकार के लिए उन्होंने संघर्ष की शुरुआत की है।

गाँव में स्वतंत्रता के बाद एक ओर नए वर्ग का उदय हुआ है वह नया धन-स्वामी वर्ग। यह वर्ग है जिसमें जमींदारों के शोषण और श्रृंखलित की घाताली पैसी विकासता है। अपनी माली पालत और पीकरी पैसी से छरीकी गई जमीन से उसने गाँव में अपनी अछुत सत्ता

कायम की है। किसानों को कर्ज देकर उसने उनकी जमीन पट्टे पर ले लेकर उन्हें गाँव से निर्वासित कर देने की स्थिति इसी कर्ज ने पैदा की है। इसीलिए गाँव का मजदूर और किसान अपने भरण-पोषण के लिए शहर में आकर पेट डेपता फिर रहा है। दूसरे इस कर्ज ने शासन से मिलने वाली तमाम सुविधाओं का उपयोग किया है। उसने वैज्ञानिक उपकरणों, उन्नततरीन बीजों आदि के माध्यम से खेती को एक उपयोग के रूप में प्रयोग कर गाँव में सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक सत्ता को अपने कब्जे में किया है।

अतः इस कर्ज से भी किसान और मजदूर प्रस्त हैं नागार्जुन ने इस कर्ज की ओछी नीयत से भी अपने पाठकों को परिचित कराया है।

राजनेता और उनकी अवसरवायिता

नागार्जुन को राजनीतिका गहरा अनुभव है। उन्होंने, नरसिंह के स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई थी उन्होंने विभिन्न फलों, नेताओं और झगड़ों को बड़े करीब से देखा है। अतः स्वतंत्रता से पूर्व और पश्चात् की राजनीति और उसके राजनेताओं की भूमिका उनकी अपनी आँखों की देखी हुई है। सत्ता से पिछे लोगों को उन्होंने बड़े निष्ठा से देखा है। देश सेवा के नाम पर अवसरवादी नेताओं ने सदैव परिवार सेवा ही की है। स्वतंत्रता से अब तक जिन लोगों ने सच्चे अर्थों

में देश की सेवा की थी वे आज कोसों दूर हैं उनकी निरंतर उपेक्षा होती रही है और जो लोग असामायिक कार्यों में संलग्न हैं, काले कारनामों करते हैं वे इपेत स्वान आज सत्ता और सम्मान के भागीदार हैं । आजकल की राजनीति ऐसे लोगों के लिए ऐसा तीर्थराज प्रयाग है जिसमें प्रवेश करते ही उनके समस्त पाप धुल जाते हैं ।

नागार्जुन ने आजादी से पूर्व की राजनीतिक स्थिति में "बलपनमा" और "रतिनाथ की चापी" में दलगत परिवर्तन और उनके कार्यक्रमों को प्रदर्शित कर आजाद भारत के स्वल्प और शासकों की भूमिका से अवगत करा दिया है । और स्वतंत्रता के बाद "बाबा बटेसरनाथ", "हुंभीपाक" और "अभिर्भवन" में प्रदर्शित किया है ।

सरकारी कर्मचारी और उनकी भूमिका

इसी अध्याय में नागार्जुन द्वारा विवक्षित सरकारी अमले के परिवर्तन को लिखा गया है । नागार्जुन ने स्वच्छ कार्यपालिका का होना अनिवार्य माना है । परन्तु वहाँ विभाग का अध्यक्ष, मंत्री स्वयं भ्रष्ट हो, अनेक कार्यों में संलग्न हो वहाँ न्याय और पुस्त प्रशासन की कल्पना नहीं की जा सकती । भारत की कार्यपालिका के स्वल्प को नागार्जुन ने इसी संदर्भ में प्रस्तुत किया है । उन्होंने यह भी संकेत दिया है कि जो कर्मचारी अथवा अधिकारी ईमानदार, निष्ठावान और अपने कार्य के प्रति उत्तरदायी

होता है उसे झूठ साबित नहीं हो सके काम नहीं करने देते उसे स्थानान्तरण, पदावनति आदि से मानसिक यातनाओं देकर उसके कामों में व्यस्त करते रहते हैं ।

नागार्जुन ने झूठ पुस्तक के पारित्र को "वक्तव्यमा," जमनिया का बाबा, 'बाबा बटेसरनाथ और 'कल्प के डेटे, में रेखांकित किया है । इन लोगों की रिवयती भूमिका पर नागार्जुन ने "वक्तव्यमा" की छ पट ते हए प्रस्तुत किया है --- "दरोगा तो नहीं मानेगा । या तो घुस लेगा या फिर बात को आगे बढ़ा देगा । इससे मेरा निस्तार नहीं होगा ।"

"जमनिया का बाबा" का पुस्तक इन्स्पेक्टर खान खडापुर सादुरला यों तो अपनी काम पिपासा शान्त करने में इतना रत है कि वह अवोध बच्चे के काल की उमर को रसूदी की टोकरी में डाल देता है "कल्प के डेटे" के अंतर्गत रिवयत और घोटाले में संलग्न सरकारी कर्मचारियों, ठेकेदारों प्रम के सामाजिक संगठनों पर उन्होंने बड़ी ही तटीक टिप्पणी की है ---

"हे भावान केसा जमाना आया है । पच्चीस करोड़ पचास करोड़ स्वयंसा लगाकर दस स्रष्ट साल में कोसी बांध तैयार होंगे, हजारों का माहवारी पारा पाने वाले पणसों आफीसर बहाल हुए हैं । लाखों के ठेके मिले हैं ठेकेदारों को । करोड़ों का सामान वीरपुर में लाकर अटा दिया गया है । रात दिन हवाई बहाल कोसी इसाके में मंडराते रहते हैं । पानी की तरफ बहाई जा रही है ----- सेसा अनर्थ तो न कभीसुना, न देखा,

हे भगवान् सृष्टि के इन्हीं तौर तरीकों में तुम्हें अपने विधातापन का स्वाय मितता ? हिन्दू हिंसाकारी समाज नहीं पैट हिंसाकारी समाज छी, छी, छी, छी"-----

इस तरह नागार्जुन के इस सृष्टिकोष ने नवीन परिष्कार का पर्दा-फाश किया है । उन्होंने अष्ट राजनीति द्वारा प्रेरित अष्ट कार्यपालिका के कारनामों की पखिरक प्रस्तुत की है ।

000

प्रथम - अध्याय

उपलब्ध

000

उपसंहार

नागार्जुन के उपन्यासों को ऐतिहासिक दृष्टि से पढ़ने पर ज्ञात होता है कि वे मात्र हिन्दी साहित्य में किसी विशेष परंपरा के अनुसरण में नहीं हैं और न उनमें किसी दृष्टि विशेष का पिछलग्गण है। उनके तमाम उपन्यासों के स्रोत ज्ञान के अन्य विषयों से मिल जाते हैं। राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र और मनोविज्ञान जैसे अध्ययन के विषय उनके उपन्यासों की परिधि के अन्तर्गत आते हैं। उनकी आधिक्यता किसी सीमा में बंधी हुई नहीं है। उन्होंने अंधता को मात्र अध्ययन और उसके संघर्ष की दृष्टि से लिया है। उनका आधिक्य जीवन बहुत ही व्यापक एवं विस्तारपरक है।

नागार्जुन का साहित्य यथार्थ की धमीन से जुड़ा हुआ साहित्य है। कबीर और निराशा के बाद वे हिन्दी साहित्य के अकेले रचनाकार हैं जिन्होंने बेसौत हंय से लाभ-सोभ से परे रह समाज की अनियमितताओं, अतमानताओं और विस्मयितियों पर प्रहार किया है उन्हें क्रोध क्रोध का दूटा है। गाँव के गली गलियारों से लेकर शहर की गंगधुंधी हमारतों और उनके पीछे पलने वाली, गंदे नालों पर बसी झोपड़ी और झुग्गी वाली जिन्की को नागार्जुन ने प्यार पलकर स्पर्श देखा है। इसी "देखने" के आधार पर ही उनके "अंधाये क्यों" में इतना तीखापन है इतनी गहराई है जो कि अन्यत्र दुर्लभ है। बचपन से ही यथार्थ की तलाश में घर का

परित्याग, सत्य की खोज में देश-विवेक की यात्राओं की, वास्तविकता के लिए अपने और पराए की जाँच नागार्जुन ने बड़ी संभरता से की है।

नागार्जुन को सदैव बचपन से ही निम्न वर्ग के साथ सहानुभूति रही है। उन्होंने समाज के सीधियों के उपेक्षित तिरस्कृत और वंचित वर्ग के साथ उनके स्वाभिमान और सम्मान के लिए पिछाड़ छोड़ा है। अपने विद्यार्थी जीवन से लेकर अब तक के वैयक्तिक और साहित्यिक जीवन में उन्होंने इस वर्ग को आदर के साथ देखा है। उनकी कविता और उपन्यासों के कथानायक ये ही लोग हैं जिन्हें नागार्जुन अपना ही नहीं पाठक के परिवार का भी साथ बना देते हैं। स्वयं ब्राह्मण वर्ग के सदस्य होते हुए भी कहीं भी इनकी रचना में वर्ण व्यवस्था की पुष्टि नहीं मिलती। उल्टे उन्होंने ब्राह्मणों के ढोंग और आडम्बर पर अपनी कथा कृतियों में खूब फसती कसी है। हाँ गरीब चाहे वह तवर्ण हो अथवा निम्न वर्ग का उनकी भद्रता का पान रहा है और यही चाहे वह निम्न वर्ग का ही क्यों न हो उसके शोषण की प्रवृत्ति से उन्हें बेहय नफरत रही है। उन्होंने उसके विज्ञाप संगठन जोड़कर उसकी जातिमाना हरकतों को समाप्त किया है। ये सच्चे अर्थों में निम्न और वंचित वर्ग के मसीहा के रूप में अपने नायकों के साथ हैं।

नागार्जुन की नारी चेतना अपने समाकालीन अन्य लेखकों से निरंतर भिन्न है। ये "रत्नाय की चापी" में गुप्त और शोषित विधवा को

ब्रह्मचर्य में ही रतिनाथ के रूप में देखकर तिलमिलता जाते हैं। और उसे सम्मान और स्वाभिमान की जिन्दगी जीने के लिए उसके पुनर्विवाह की दृष्टि करते हैं। यही नहीं उन्होंने नारी को योग्यतर के लिए वे अन्तर्जातीय विवाह की भी सलाह करते हैं। उन्होंने नारी को घर और उसकी पार दीवारी में बन्द कराकर नैतिकता आर्क्षावाद और मर्यादा की कड़ीयों से नहीं बंधा है अपितु उसके लिए उच्च शिक्षा के दरवाजे खोलकर उसमें नवीन अधिकार बोध की भावना को पैदा किया है। उनकी नारियाँ पुस्तक कर्ष के समक्ष रिरियाती, गिड़गिड़ाती नहीं हैं अपितु "मधुरी" जैसी नारियाँ हैं जो अशिक्षित होते हुए भी अपनी स्थिति को समझती हैं और अन्याय तथा इफसुर क़त्ल की धोधी मान्यता को बिल्कुल स्वीकार नहीं करती हैं। नागार्जुन की नारियाँ हैं आपस की ईर्ष्या, द्वेष, डाढ़ और जलन जैसी स्त्री संबंधी कमजोरी नहीं है, वे संगठन की पहचानती हैं और एक से एक की सहायता कर वे नारी जीवन को स्वस्थ स्वल्प और सम्मान देती हैं। उनके यहाँ नारी संगठन वास्तव में आधुनिक यैतना का वह स्वरूप है जो होना ही चाहिए।

नागार्जुन का युवा कर्ष भी पुराने विचारों का समर्थक और अनुयायी नहीं है। वह आधुनिक शिक्षा के माध्यम से समाज और समय की बात पहचानता है। अन्याय, शोषण और अनावश्यक जर्जरमान्यता उसे बिल्कुल भी स्वीकार नहीं है। नागार्जुन अपनी इसी पीढ़ी से समाज को

नई दिशा देते हैं एक नवीन सामाजिक संरचना का देश के भविष्य की दृष्टिगत हासिल होते हैं ।

प्रस्तुत अध्याय नागार्जुन के उपन्यासों में वर्णित उनकी विचारधारा के निष्कर्ष के रूप में है । अतः नागार्जुन के चिन्तन क्षमता को इस अध्याय में रखा गया है ।

परन्तु और भी अच्छा होता कि नागार्जुन अपने उपन्यासों में कृषि के औद्योगीकरण पर प्रकाश डालते, एक अनुभवी और चेतना से रचनाकार होने के नाते वे साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने में दिशा निर्देश करते । क्योंकि साहित्यकार ही सच्चे अर्थों में समाज दृष्टा और समाज दृष्टा होता है । वह अतीत के माध्यम से वर्तमान को तो देखता ही है साथ ही भविष्य की आधार दिशा भी अपने हाथों से रखता है ।

इस तरह हम देखते हैं कि नागार्जुन का रचना संसार अध्याय और शोध के निष्कर्ष से भरा पूरा है । उन्होंने नवीन सामाजिक संरचना के लिए युवा वर्ग— जिसमें पुरुष और स्त्री दोनों की अनिवार्य भूमिका है दिशा निर्देश दिए हैं । कला का पारखी यह लेखक आज भी इसी दिशा में प्रयत्नशील है, सोच रहा है, लिख रहा है।

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की
पी-एच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० कुँवरपाल सिंह

रीडर

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

प्रस्तुतकर्ता

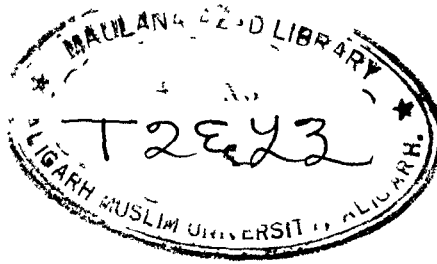
रामवीरसिंह

एम० ए०, एम० फिल०

1983



T2653



भूमिका

नागार्जुन को ग्रामीण जीवन के महत्वपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक आयामों की गहरी पहचान है। उन्होंने अपने उपन्यासों "रत्नाथ की चाची" और "बलधनमा" में आजादी से पहले के ग्राम समाज के परिवेश को चित्रित किया है और शेष उपन्यासों में ~~अधुनिक~~ ~~विभिन्न~~ ~~विभिन्न~~ ~~विभिन्न~~ आजादी के बाद की परिस्थितियों की व्याख्या प्रस्तुत की है। आधुनिक ग्रामांचलों में फूटने वाली जन घेतना उनके उपन्यासों का मुख्य कथ्य है।

स्वतंत्रता के बाद भारत के ग्रामीण ~~अर्थों~~ में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। स्वतंत्रता, जमींदारी उन्मूलन, ग्रामीण विकास योजनाएँ, छेती का आधुनिकीकरण आदि ने गाँव के लोगों के रहने सहने और सोचने-समझने के दृष्टिकोण को बदला है। पुरानी और जर्जर मान्यताओं से अब दृष्टांत छुलकर संघर्ष कर रही है। आम आदमी अपने अधिकार और अस्तित्व को पहचान कर आगे बढ़ रहा है। समूचा गाँव अब एक छण्ड न होकर राष्ट्रीय विकास के रूप में महत्व रखता है। उसके निर्णय अब शासन में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। नागार्जुन ने इसी बदलाव को धूप-धूपकर देखा-देखाते में देखा है। तन्मयित अस्तित्व के आधारपर ही उनकी कृतियों में व्यक्ति और समाज चित्रित है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उनकी इसी दृष्टान

को प्रस्तुत किया गया है। साथ ही यह भी प्रयत्न बराबर बना रहा है कि नागार्जुन का मूल्योन्मूलन तटस्थ रूप से हो- वे राष्ट्रीय लेखक हैं।

प्रस्तुत गोप्य प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में बाबा नागार्जुन के उपन्यासों की पूर्व पीठिका का ऐतिहासिक अध्ययन है। कर्त्तव्य आलोचना के क्षेत्र में इन ग्रामीण जीवन संबंधी उपन्यासों को द्वैतवाद और अंधलक्ष्य की परिधि से सीमित कर उनके मूल्योन्मूलन की परिष्कृति बराबर चली आ रही है। परन्तु वस्तु स्थिति इससे नितान्त भिन्न है। इस अध्याय में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि ये उपन्यास न तो किसी क्षेत्र से घिरे हैं और न किसी अंधलक्ष्य से बलि उनका राष्ट्रीय परिष्कार है। नागार्जुन का अधिलक्ष्य हृष्टिकर्षण राष्ट्र की धारा से संयुक्त है। भारत में होने वाले औद्योगिक परिवर्तन से- राष्ट्रीय आन्दोलनों से सुधारवादी जन नायकों के प्रयत्नों से शहर ही नहीं गाँव भी छे पैमाने पर प्रभावित हुए हैं। औद्योगिक क्रान्ति से भारत के गाँवों में सामाजिक और आर्थिक बदलाव नए स्तरों में आया है तो राष्ट्रीय आन्दोलनों में देश के व्यक्ति ने वही तादात में भाग लेकर अधिकार बोध सीखा है। सुधारवादी आन्दोलनों ने ज़रूर समाज व्यवस्था पर घोट कर नयी पीढ़ी को वैज्ञानिक युग की समझ देकर सामाजिक कुरीतियों से जूझने, उन्हें समूह नष्ट करने की सीढ़ी दी है।

भारत की कृषि व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन और विकास कार्यक्रम ग्रामीण विज्ञान को राष्ट्रीय धारा से जोड़े हुए हैं। अतः देशाती जीवन में आने वाली इस नवीन धेतना से नागार्जुन के उपन्यासों के कथानक को जोड़ने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय में नागार्जुन को साहित्यकार खाने वाले परिवेश का अध्ययन है। बचपन से ही अभाव और गरीबी में पले नागार्जुन ^{का} जीवन संघर्षों से भरा हुआ रहा है। परन्तु लेखक अपने विद्यार्थी जीवन से ही व्यवस्था विरोधी रहा, वह अत्याचार गुल्म और सामाजिक अध विश्वासों को नकारता रहा है। उनके जीवन की अनेक घटनाएँ इस बात का प्रमाण हैं। स्वयं उत्प्रेरणीय ब्राह्मण होते हुए उन्होंने कभी भी न तो पण्डित होने का वाचा किया है और न वे ब्राह्मणवाद के पोषक रहे हैं। उल्टे उन्होंने इस वर्ग की दोगलीलाओं का उपहास ही किया है। उन्हें निम्नवर्ग के लोगों, गरीबों, विज्ञानों, मजदूरों और शोषित महिलाओं से खेद स्नेह रहा है। उन्होंने अपने सामाजिक सम्मान केरु वर्गविहीन समाज की स्थापना अपने उपन्यासों में की है। स्वभाव से अति सरल और संघर्षों की आग में तपे हुए व्यक्तित्व के धनी इस लेखक के विचारों में इनके निजी अनुभवों का महत्वपूर्ण योग है। बचपन से ही देश-देशात का प्रभु, देश विदेश की यात्राएँ, विभिन्न भाषाओं के ज्ञान आदि के माध्यम से उन्होंने आम आदमी को ऐसे निवृत्त

देखा है और वे उसी के साथ जुड़ते गए हैं। स्वाभिमान और आत्म-सम्मान का नागार्जुन कभी भी लाभ लोभ या आश्रय के लिए नहीं लुके अपितु उसे ठुकराया है। इस अध्याय में उनके जीवन के इन्हीं विधायक तत्वों के आलोक में उनकी विचारधारा को समझने का प्रयास है।

शोध ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक संघर्ष को प्रस्तुत किया है। आज के भौतिकवादी युग में मृत्यों का विखराव, जिस तेजी के साथ हो रहा है, पारिवारिक जीवन में व्यक्तिवादी भावना दिन पर दिन बढ़ती जा रही है नई और पुरानी पीढ़ी में बढ़ते हुए अन्तर और तनाव देहान्तों में अब छलकर देखने को मिल रहे हैं। धनाभाव में व्यक्ति का परिच्छेद से कटना, सिमटना उसके व्यक्ति-त्व को बौना बना रहा है। इस तरह के वातावरण में देहाती जीवन के अन्तर्गत नागार्जुन ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में नवीन शिक्षा दी है। सामाजिक विसंगतियों और विद्वेषताओं से संघर्ष करते हुए नागार्जुन एक निश्चित स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ उनके अपने समाज का समना साकार होता है। जातिवाद, वर्णवाद, बाल विवाह, विधवा समस्या, अनैक-विवाह जैसे समाज के संकीर्ण दृष्टिकोणों को नागार्जुन के उपन्यासों में प्रगतिवादी आधार पर देखा गया है। विधवा समस्या को कि नारी समाज की सबसे अधिक ध्यानक विसंगति है नागार्जुन ने विधवा के अन्तर्गत तीसरे विवाह के माध्यम से नारी समाज इस समस्या को हल किया है।

अनमेल विवाह और बाल विवाह जैसी विस्मृतियों पर लेख ने नई पीढ़ी को सजग करते हुए इन कुरीतियों को स्मूल नष्ट करने की चेष्टा की है । इस तरह प्रस्तुत अध्याय में समाज के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है ।

चतुर्थ अध्याय उनके उपन्यासों में चित्रित राजनीतिक संघर्षों से संबंधित है । देहाती जीवन में स्वतंत्रता के बाद पुनाबी राजनीति, जमींदार की घेंतरेबाजी, उभरता हुआ भुस्वामी वर्ग और अवसरवादी नेताओं के झूठे में पिसता हुआ गरीब किसान और मजदूर अब अपने अधिकार के लिए संगठित हो रहा है । भारतीय स्वतंत्रता की जो कि इन्हीं छंद लोगों की चौपालों पर देखने को मिलती है नागार्जुन उसे हर घर का अधिकार मानते हैं । इस अध्याय में उनके इसी अधिकार शोध का अध्ययन है ।

पंचम अध्याय में नागार्जुन के उपन्यासों के अध्ययन के निष्कर्ष के रूप में उपसंहार प्रस्तुत है । इस अध्याय में नागार्जुन के सामाजिक और राजनीतिक चिंतन को ध्यान में रखकर अध्ययन किया गया है ।

इस शोध प्रबंध में यह देखने का बराबर प्रयास किया गया है कि नागार्जुन की औपन्यासिक कृतियाँ राष्ट्रीय संदर्भों से जुड़ी हैं । परन्तु यह शोध का विषय ही है कि अभी तक इस लेखक के बारे में भुराग्रहवादी

दृष्टिकोण से सोचा जाता रहा है। नागार्जुन गरीब और शोषित उस बहुसंख्यक समुदाय के प्रतिनिधि लेखक हैं उनके अधिकारों के हिमायती हैं। अपनी कृतियों में उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक छान्ति के माध्यम से स्वस्थ समाज की बुनियाद डाली है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इस दिशा में बराबर सोचा गया है और प्रयत्न किया गया है कि इस अध्ययन से नागार्जुन को उनकी कृतियों को समझने में एक दिशा मिल सकेगी।

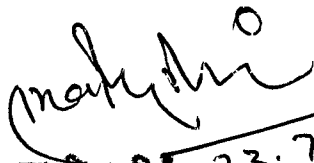
इस शोध कार्य को ज्ञान देने का पूरा प्रेय मेरे गुरु और शोध निर्देशक डा० कुंवर पाल सिंह, रीडर-हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ को है। वे मेरे शोध निर्देशक ही नहीं अभिभावक भी रहे हैं। शोध कार्य के समय में उन्होंने मेरी हर प्रकार की सहायता की है। उनके प्रति मैं -----

आदरणीया डा० नमिता सिंह चर्चित जनवादी छद्मानी ऐतिहासिक द्वारा शोध काल में दिए गए रचनाकार और चिंतक के रूप में निर्देशों से शोध-प्रबन्ध में नवीनता आई है। मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

मेरे मित्र, डा० ब्रज मोहन शर्मा, डा० गोपाल शर्मा, श्री हरिहर प्रसाद दीक्षित एवं राजा राज कियोर उपाध्याय को धन्यवाद देना औपचारिक ही है। इन लोगों ने शोध काल में अपने सुझावों से मुझे बराबर प्रोत्साहित किया है।

शोध कार्य को गति देने में मेरी पत्नी सविता ने मुझे बहुत सहयोग दिया है। उन्हें साधुवाद।

आज मैं इस कदलीज तक आ सका हूँ यह मेरी माँ के अनवरत संघर्षों का परिणाम है। मैं उनके प्रति श्रद्धावान्त हूँ।


— रामवीर सिंह 23.7.83

विषय - सूची

पृष्ठ संख्या

I - VII

भूमिका

प्रथम अध्याय-

1-70

नागार्जन के उपन्यासों की पूर्व परिचिता

भारत की अर्थ-व्यवस्था

सुधारवादी आन्दोलन

ब्रह्म समाज

प्रार्थना समाज

आर्य समाज

रायचूण्य मिशन

थियोसोफीकल सोसाइटी

भारतीय कृषि और समर्थिकारी व्यवस्था

समर्थिकारी प्रथा

रैयतवाड़ी प्रथा

राष्ट्रीय आन्दोलन और उसका वर्ग परिवर्तन

समर्थिकारी उन्मुख और उसका ग्रामीण जीवन पर प्रभाव

चलचन्द्री और ग्रामीण विकास योजनाएँ

आधुनिक जीवन से लोसुखीय संयुक्तता

नागार्जुन की जीवन यात्रा और वैचारिक संघर्ष

जन्म

मुहुर्मुहु अनुभवों की जन्मना हुआ

शिक्षा एवं संघर्ष

गृहस्थ, संन्यास और पुनः गृहस्थ

जेल यात्राएँ, विद्रोही प्रवृत्ति और साहित्य रूपा

नागार्जुन की वैचारिकता

यथार्थ का आग्रह

नारी, समाज उत्थान का अनिवार्य घटक

शोषित वर्ग के प्रति संवेदन

प्रगतिवादी चिंतन

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक संघर्ष

आधुनिक जीवन यथार्थ और नैतिकता के बदलते मानक

सामाजिक मूल्य संघर्ष एवं उनकी नवीन स्थिति

नवीन धार्मिक जीवन और आधुनिक नारी

नई और पुरानी पीढ़ी का वैचारिक संघर्ष

वर्गीय संघर्ष और उसकी सामाजिक स्थिति
धर्म का आधुनिक स्वरूप और उसकी विद्रुमताएँ

चतुर्थ अध्याय-

249 - 288

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित राजनीतिक संघर्ष

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन

सामाजिक राजनीतिक घटनाएँ

जमींदारी उन्मूलन-किसान और जमींदार संघर्ष

पूँजीपति और मजदूर संघर्ष

राजनेता और उनकी अवसरवादिता

सरकारी कर्मचारी और उनकी तार्कनिक भूमिका

पंचम अध्याय-

289 - 303

उपसंहार

संदर्भ ग्रन्थ सूची ।

304 - 313

प्रथम अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों की पूर्व पीठिका

नागार्जुन के उपन्यासों की पूर्व पीठिका

प्रायः यह देखने को मिलता है कि कोई भी लेखक अथवा रचनाकार यदि स्पष्ट ब्रह्मा है या व्यवस्था से सामंजस्य नहीं रखता है तो वह निश्चित ही उपेक्षा का भागीदार बनता रहता है । उसे उसके मौजूदा परिधान में कभी भी मूल्यांकित नहीं किया जाता । उन्हें उस पर कुराग्रही उग्रवादी, विद्रोही और अराजक जैसे द्योष्य जोड़कर देखने की प्रवृत्ति मिलती रही है । हिन्दी उपन्यास जगत भी इस वातावरण से अप्रभुता नहीं है । बाबा नागार्जुन इसके सटीक उदाहरण हैं । उनका नाम आलोचना जगत में कहीं मनमोजी, कहीं फक्कड़, कहीं उठापटक करने वाला और कहीं आंचलिक लेखक आदि के रूप में जाना जाता रहा है । यह हिन्दी जगत का दुर्भाग्य ही है कि नागार्जुन जैसे स्वतंत्र और सच्चे साहित्यकार की लेखकीय स्थान से सदैव कतराकर ही आलोचकों ने उन्हें व्याख्यायित करने की कोशिश की । इसीलिए उनके मूल्यांकन में मनगढ़ंत बातों को अधिक शिष्ट किया गया है । इस संबंध में सबसे अधिक पीड़ादायक बात तो यह होती है कि अधिकांश सामान्यतः दूसरों के आलोचनात्मक ग्रन्थ पढ़कर ही उसी के आलोक में उसे देखता है । मूल ग्रन्थ को न पढ़ने अथवा पढ़कर न समझने की यह व्याधीनता समूचे चिन्तन जगत को प्रभावित कर देती है और विचारों का सही संदर्भ सदैव अक्षिप्त ही रह जाता है ।

नागार्जुन उपन्यास जगत में अर्वाचीन लेखक के नाम से जाने जाते हैं और क्षेत्र विशेष की भाषा, बोली शब्द योजना, गीतात्मकता आदि के साथ उनकी कृतियाँ विन्यस्त की जाती रही हैं। लेकिन हिन्दी में अर्वाचीनता का दौर 1955 के बाद शुरू होता है जबकि नागार्जुन के दो सशक्त उपन्यास "रतिनाथ की चाची" और "बलचनमा" इस दौर से पहले ही लिखे जा चुके थे। अतः नागार्जुन की कृतियाँ और वे स्वयं किसी मतवाद या आग्रह के पिछ लम्ब नहीं रहे। उनका अपना स्वतंत्र चिन्तन है। वे जनता के लेखक हैं आम आदमी उनके कथानकों का नायक है। वे उन लाखों-लाख देहातियों का, मजदूरों का, बाल गुलामों का, गरीबी और कर्ष से छूटे हुए भूखे लोगों का, प्रतिनिधित्व करते हैं जो बहुसंख्यक होते हुए भी अल्प संख्यक हैं, जुबानदार होते हुए भी बे-जुबान हैं, शक्तिशाली होते हुए भी शक्तिहीन हैं और श्रमशील होते हुए भी भूखे रह रहे हैं।

प्रेमचंद के बाद नागार्जुन हिन्दी साहित्य में अकेले लेखक हैं जिन्होंने शोषक और शोषित दानी और दलित भूस्वामी और भूमिहीन, शिक्षित और अशिक्षित शहर और देहात में पैदा होने वाले मजदूर के जन्म से लेकर मृत्यु तक के पहलवों को स्वयं पास जाकर देखा है। इसीलिए उनकी समस्त कृतियाँ देहाती जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज बन गई हैं। इसीलिए संकल्प की विविधता के कारण आलोचक बन्धु उनके लेखकीय परिवेष्टा से अपरिचित रहे हैं और उन्होंने उन्हें आपने अनुमानित चिन्तन के आधार पर सीमित

किया है। यही नहीं शासन की ओर से अपने तीखे यथार्थवादी और उसकी अभिव्यक्ति के कारण इस लेखक को शासकीय व्यवस्था का कोप धारण भी बनना पड़ जाता है उनकी भेत, नजरबन्दी, रचनाओं की जाबूती आदि सभी लुठ होते रहे हैं। डा० लुवरपाल सिंह ने इस तरह के प्रतिबद्ध लेखकों की स्थिति को स्पष्ट करते हुए मुराग्रहवाक्यों पर सीधे चोट की है —

“वास्तव में बदलती हुई ग्रामीण व्यवस्था पर लिखे गए उपन्यासों को “आंचलिक” उपन्यास कहकर उनका महत्व कम किया जाता रहा और उस वास्तविकता पर परवा डालने का प्रयास किया गया जिसका अध्ययन बहुत आवश्यक है। इन उपन्यासों ने देश के तीन-चौथाई भाग में हो रहे गंभीर परिवर्तनों की ओर उपन्यास के पाठकों और आलोचकों का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया था परन्तु इन्हें किसी अंचल विशेष की परिस्थितियों और समस्याएँ कब कर नकार दिया गया ————— ग्राम्य व्यवस्था पर गंभीर और महत्त्वपूर्ण रचनाएँ देने वाले लेखकों को “आंचलिक लेखक” कहकर उन्हें द्वितीय श्रेणी के लेखकों की पंक्ति में धकेल दिया।”¹

परन्तु नागार्जुन अपने व्यक्तित्व के अछेरे लेखक हैं जिन्होंने कभी न शासन की परवाह की न साहित्यिक आलोचकों की। यह “समर्पित लेखक” के नाते उनकी बेकारिबता पर कोई असर नहीं पड़ा है। वे किसी लाभ-लोभ या आर्तक के सामने हटते नहीं। उनका भावबोध तमाम यातनाएँ

1 - डा० लुवरपाल सिंह: छिन्दी उपन्यास-सामाजिक धेतन, 1976
पृ० सं०- 156

भोग्य के बाध्य और अधिक निरंतरता गया और अपने क्षेत्र में उन्होंने शासकीय अन्याय, अत्याचार और सामाजिक विषमता के विज्ञाप क्रान्ति-कारी पात्रों को स्थान दिया उन्हें दिशा दी ।

अतः आवश्यक है कि इस अनुपवी क्षेत्र के उपन्यासों के रचना संक्षर्कों को उनकी पुष्कभूमि को राष्ट्रीय परिधि में समाज शास्त्र, राज-नीति शास्त्र एवं इतिहास जैसी अन्य ज्ञान विधाओं के माध्यम से देखना अनिवार्य है जिससे उनकी कृतियों के निष्कर्ष वैज्ञानिक छोटोटी पर उतारे जा सकें —

भारत की अर्थ-व्यवस्था

अठारहवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति की छटना ने समूचे विश्व के सोचने-समझने के दृष्टि कोण को बदल दिया था । मानव सभ्यता के इतिहास में इस तरह का यह पहला सोपान था जिसमें मनुष्य के सहयोगी होने के साथ-साथ उसे छुप जाने की नीयत भी बराबर प्रयत्नशील थी । नए-नए आविष्कारों से उसके सोचने समझने के तीर तरीकों में बहुत ऐसे प्रश्न पचन रहे हो गए और मनुष्य की अपनी अस्मिता गुम होने का भय पैदा हो गया ।

इस क्षेत्र में आगे आने वाला पहला देश ईंग्लैंड था जिसने मशीनी दुनिया को जन्म दिया । सूत के कातने, लुने तथा यातायात के साधनों

के आविष्कारों से इस देश ने अपनी बौद्धिक क्षमता का परिचय पहली बार दुनिया को दिया। इसने पहली बार हाथ के काम को मशीन में बदल कर नई धूमिलवादी व्यवस्था को जन्म दिया। मशीनों के आविष्कारों ने जहाँ उसकी उत्पादन क्षमता को आगे बढ़ाया वहीं उसकी व्यावसायिक वृत्ति भी उठ खड़ी हुई। कम समय में बड़े पैमाने पर होने वाले उत्पादन की द्रव्य, उत्पादन के लिए कच्चा माल, उद्योगों में लगी हुई भारी पूँजी की सुरक्षा के लिए मुनाफा आदि ने इसे धीरे-धीरे विश्व में बिखेर दिया। और यह प्रतिस्पर्धा के रूप में व्यावसायिक कंपनियों के माध्यम से देश के कोने-कोने में पहुँचने लगी। भारत में विप्लव व्यवसाय की दृष्टि से आने वाली पहली और सशक्त कंपनी ईस्ट इंडिया कंपनी थी।

अपने प्रारंभिक चरण में ब्रिटेन के इस औद्योगीकरण की भूमिका व्यावसायिक रही जिसके अन्तर्गत उसे शुरू शुरू में श्रुतिप्रयोगितात्मक कठिनाई का सामना करना पड़ा। अतः इसे जमाने के लिए उन्होंने सांस्तकीय दृष्टिकोण भी प्रयोग में लाए। इस छहरी घात में इस देश की धूमिलवादी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति काम कर रही थी। भारत के ब्रह्म उद्योग के बारे में इस बात का पक्का प्रमाण मिलता है। भारत का ब्रह्म विश्व के बाजारों में सर्वोत्तम माना जाता था। सुन्दर टिकाऊ और आकर्षक भारतीय ब्रह्म की विश्व में अतुलनीय विभोक्ता थी। यह बात नव विकसित तकनीक वाले अग्रिम ब्रह्म व्यापारियों को ना पसंद थी। अतः उन्होंने अपने प्रभुत्व से ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालकर उसकी दरिद्री करौलत पर पाबंदी लगा दी ---

पहले व्यापार छूट लगाकर और फिर कानून बनाकर उन्होंने भारतीय कपड़े को ब्रिटेन के बाजार से निकाला फिर योरोप और अन्य देशों के बाजार से ।^१

इस तरह इंग्लैंड ने विश्व को एक नई महाजनी सभ्यता भी दी जिसने अपने वर्गीय स्वार्थों की पूर्ति के लिए हर आवश्यक कदम तेजी और सखती के कारण उठाया ।

इस औद्योगिक क्रान्ति का आगे चलकर बड़ा ध्यानक परिणाम निकला । क्योंकि भारत विश्व में अमार खनिज सम्पदा हीन और उपजाऊ भूमि के कारण "सोने की घिड़िया" कहलाता था, अपने सामुदायिक और स्वावलम्बी सामाजिक स्तर के कारण उसकी तमाम जरूरतें अपने में संपूरित थी और यहाँ कच्चा माल लोहा, कपास, पटसन, रेशम, जस्ता चमड़ा आदि विश्व के अन्य देशों के मुकाबले में कई गुना आगे था । इसीलिए अपने घाटरी, मणिपत्री आदि के माध्यम से ब्रिटिश प्रार्थिव्याभेट को सख्त घाग दिखाने लुई यह व्यापसायिक कंपनी भारत के उद्योगों पर छाने लगी ।

इधर भारत का प्रशासन केन्द्रीय सत्ता के अभाव में ढीला-ढाला चल रहा था । देशी नरेशों और नवाबों की आपसी टकरावट ने यहाँ

की आन्तरिक राजनीति को छिन्न-भिन्न कर रखा था। इस भारत की राजनीतिक परिस्थिति का कंपनी ने भरपूर फायदा उठाया। वह यहाँ की फूट और ब्रिटेन की पार्लियामेंट की रणार्मही के बीच यह अपना बहु-मुखी विकास करने में लगी रही। यद्यपि भारत में योरोप के अन्य देशों की व्यापसायिक कंपनियाँ भी थी परन्तु वे इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी के मुकाबले में अशक्त थीं। अतः ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों की दिन रात की दौड़ थी भारत की आन्तरिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने लगी और उसने अपनी कूटनीति के कारण उसने भारतीय शासन को पहली पछाड़ सन् 1757 में बंगाल में प्लासी के मैदान में की ओर सत्ता परिवर्तन करके भारतीय प्रशासन में पहली बार हस्तक्षेप किया।

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में साम्राज्यवादी नीति और सृष्टीवादी प्रवृत्ति की मिली जुली धूमिका में काम करना प्रारंभ कर दिया। राजनीतिक सत्ता धारित करने और अपना व्यापार बढ़ाने में उसके बहुउद्देशीय आयाम जुड़ते चले गए। शक्ति और सत्ता अर्जित करने के लिए उसने देशी राजा और नवाबों को एक-एक करके धीरे-धीरे गिराना शुरू किया तो दूसरी ओर अपनी व्यापारिक उन्नति के लिए उन्होंने भारत के विषय में सर्वोत्तम हथीर उद्योग धंधों को नष्ट करना प्रारंभ कर दिया। भारत की इस विनाशशीलता में ब्रिटेन की औद्योगिक क्षमता दिन-दिन बढ़ने लगी। भारत की "सूट" से उन्हें कई गुना फायदा होने लगा—

“इसी लूट के जरिए ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति के लिए आवश्यक पूंजी का “आध संचय” हो सका।”¹

यही नहीं फ्रुक्स सडम्स ने अपनी पुस्तक “दि लॉ ऑफ सिवलाइज-
लेशन एण्ड ठिके” में ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति में भारतीय पूंजी की
महत्वपूर्ण भूमिका बताई है--

“प्लासी की लड़ाई 1757 में हुई और इसके बाद अश्वत्थूष सेना से
बहुत सारे परिवर्तन हुए। 1760 में सेना चलने वाली दरकी-धरनी का
आविष्कार हुआ और लोहा पिघलाने के जलावन के रूप में लकड़ी के बदले
कोयले का इस्तेमाल हुआ। 1764 में हारग्रीव्स ने सूत कातने वाली मशीन
का आविष्कार किया 1776 में क्राम्पटन ने एक ही साथ कई सूत कातने
और उन्हें हटाने वाली मशीन का 1785 में कार्टराइट ने मशीन से चलने वाले
करघे का पेटेंट कराया, और इन सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि 1768 में
जेम्सवाट ने वायु से चलने वाले इन्जिन को पूरा कर लिया-----

भारतीय धन के अन्तरागम के पूर्व और तत्पश्चात् वाणिज्यिक शांति और
विश्वास के बिना [ब्रिटेन के औद्योगिकरण के लिए आवश्यक] शक्ति नहीं
उपलब्ध नहीं थी। अगर बात पचास साल पहले हुआ होता तो निश्चय
ही यह और उसका आविष्कार नष्ट हो गए होते। संभवतः सृष्टि के
प्रारंभ से आज तक कहीं भी पूंजी लगाने पर इतना फाइदा नहीं हुआ है
जितना भारत की लूट से ब्रिटेन को हुआ है।”²

1- ए0आर0 प्रेसार्थ: भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पुष्ठभूमि-1977

पृ0सं0- 64

2- वही: पृ0सं0 64-65 पर उद्धृत

इस तरह ब्रिटेन का औद्योगिक विकास और भारत का हस्तशिल्प हास दोनों बड़ी तेजी से साथ-साथ चलने लगे । अँग्रेजों ने भारतीय उद्योग को नष्ट करने में कोई छसर नहीं छोड़ी । यहाँ के मास पर प्रतिबन्ध, अन्धा-धुन्ध, टेक्स और बुगियाँ लगाकर विश्व की अद्वितीय भारतीय हस्तकला का विकास अँग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए सतता की आड़ लेकर कर दिया । भारतीय उद्योग के विकास पर हॉरेस विल्सन ने कुछ प्रष्ट करते हुए लिखा है---

“भारत के साथ सूती मास के व्यापार का इतिहास एक दुःख प्रसंग है । इससे पता चलता है कि जिस देश पर भारत आश्रित हो चुका था उसने भारत के साथ कैसा अन्याय किया----- यदि प्रतिरोधक कर और कानून नहीं होते तो ये जाली और मेनधेस्टर की मिर्छें एक में ही बंद हो जातीं, और भाप की ताकत से भी उन्हें फिर घसा पाना क्षम्य नहीं होता । भारतीय निर्माण उद्योग की बात फटाकर ही ब्रिटिश उद्योगों की हुरिड की गई ----- ब्रिटिश उद्योगपतियों ने राजनीतिक प्रभुता और अनीति की मक्द से अपने भारतीय प्रतियोगियों को घपाए रखा और अन्ततोगत्वा उन्हें पूरी तरह समाप्त कर दिया यद्यपि बराबर की लड़ाई में थे ॥ ब्रिटिश उद्योग ॥ टिक नहीं पाते ।”

अतः ब्रिटेन की औद्योगिक नीति ने भारत के औद्योगिक दृष्टि को तबर्ध कर दिया । इसके परिणाम स्वस्थ बेकारी और कुल्परी का

सिलसिला प्रारंभ हुआ । भारतीय मजदूर बेकार होने लगा । कारीगर अंग्रेजों के यहाँ कम मजदूरी में अधिक देर तक अधिक काम करने को मजबूर होते गए । उनकी आर्थिक स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती चली गई । और वे पूरी तरह अंग्रेजी सरकार और उसके कर्मचारियों पर आश्रित हो गए । भारतीय मजदूर की इस मजदूरी का अंग्रेजों ने खूब फायदा उठाया । उन्होंने भारतीय मजदूर का शोषण करने में हर तरह के शासकीय हथकण्डे, यात्नार्थ परीक्षा का अस्तित्व सामाजिक रूप से खतरे में गिरता गया । कुर्बानवहार आदि से उसे घेरे दिया गया । यह पूरा का पूरा आर्थिक बदलाव भारत के सामाजिक स्तर को तहस नहस करता चला गया । क्योंकि कुटीर उद्योग थोड़े अधिकतर देशों में थे । गाँव के लोग अपनी तमाम जरूरतों इसी व्यवसाय से पूरी करते थे । परन्तु मशीनी व्यवधान ने इस "सामुदायिक" व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर डाला--

"ब्रिटेन और अन्य देशों की मशीनों से बनी सस्ती वस्तुओं की भारत में जो बाढ़ आई, वह ग्रामीण शिल्प के ह्रास का मूल कारण थी । रेशम और एलें की मदद से हर सामान आसानी से गाँवों में पहुँचने लगा ।"

रेश और बस्ती से गाँव को यातायात की सुविधाओं से जोड़ा जाने लगा । यह रेश भारतीयों को सुविधा देने के लिए नहीं अपितु

अंग्रेजों को अपना दुहरा डल निकालने के लिए भारत में लाई गई थी ।

एक तो भारत के अन्दर से कच्चा माल स्मृष्ट के किनारे वाले बन्दरगाहों तक पहुँचना आवश्यक था दूसरे इसका सामरिक दृष्टि से बहुत महत्व था । भारतीय विद्रोहियों को दूर-दूर कोनों में रेल मार्ग से शीघ्रता से दबाने में अंग्रेजों को अन्य यातायात के साधनों की अपेक्षा रेल अधिक सुविधा जनक थी । रेलवे के निर्माण की आवश्यकता पर तत्कालीन भारत के गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी १८४०-४६ में लिखा था—

“उनके बनने से भारत को जो व्यावसायिक और सामाजिक लाभ होंगे, उनका अनुमान अभी नहीं लगाया जा सकता ----- इंग्लैंड कर्ई को पुरजोर आह्वान कर रहा है जिसे भारत कुछ हद तक पैदा कर रहा है और काफी बढ़िया तथा प्रचुर मात्रा में कर्ई पैदा करेगा, अगर दूर के स्थानों के बन्दरगाहों तक जहाँ से जहाजों पर लाद कर वह भेजी जा सके सिर्फ उसे पहुँचा देने के साधनों की उचित व्यवस्था कर दी जाए । हम लोगों ने देखा है, यूरोप में बने माल की मार्ग में वृद्धि भारत के सबसे दूर के बाजार में हुई है ----- श्रृणुल के इस तरह के विस्से में नए बाजार हमारे लिए ऐसी ढालातों में दृढ़ रहे हैं कि उद्विमान से उद्विमान आदमी की दूर वर्धिता थी उसके भविष्य की सीमा की गणना नहीं कर सकती ।”

1- अधोध्या विषय: भारत का युक्ति स्थान-1977 पृ०सं०- 10-11

कार्ल मार्क्स ने भारत में रेलों के आगमन पर लिखा था—

मैं जानता हूँ कि अंग्रेज उद्योगपति केवल इसलिए भारत में रेलें बिछाना चाहते हैं कि वे र्व और अन्य ऊँचा माल अपने कारखानों के लिए कम खर्च पर प्राप्त कर सकें।----- इस तरह पश्चिमी औद्योगिक प्रान्ति ने भारत के आर्थिक ढाँचे को तोड़कर उसे अपने स्वार्थ के लिए दस्तमाल किया। पूरा भारत इंग्लैंड की सड़कों के इस औद्योगिक शिक्के में घिसकर अपनी अस्मिता को खो बैठा। भारत के परंपरागत सभी उद्योग धन्ये नष्ट हो गए। मजदूर करीगर और कुटीर उद्योगों पर आश्रित अन्य शिल्पकार बड़ी तादात में बेराजगारी की समस्या से जूझने लगे। मजदूरन उन्हें बिछुआ मजदूरी का आश्रय लेना पड़ा जिसके परिणामस्वरूप उनकी संपूर्ण भाषी पीढ़ी अपनी लोगों के यहाँ सदैव-सदैव के लिए गुलाम बनती गई। और वे जानवरों की तरह धर से उधर भेजे जाने लगे।

स्थारवादी आन्दोलन

भारत में सामाजिक स्तर की छड़ी पेचीकी धूमिल रही उसे। काम के आधार पर बाँटा गया मानव समुदाय धीरे-धीरे जाति में परिवर्तित होकर समाज में रुढ़ि ग्रस्त होता गया और उसने एक नयी व्यवस्था का पोषण किया। इस नयी व्यवस्था के अन्तर्गत सुत-असुत, अवर्ध-सवर्ध

1- कार्ल मार्क्स: न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून के 8 अगस्त 1853 के अंक में प्रकाशित "भारत में ब्रिटिश राज के भावी परिणाम- तीर्थल लेख, कार्ल मार्क्स-साहित्यिक सँजाल-सँजालित रचनाएँ भा०-1

स्वामी-सैबल जैसे अनुभाग सामाजिक संरचना के अंग बनते चले गए । इस व्यवस्था का समाज के अन्दर बहुत गहरा असर पड़ा । सभी बातों में सर्व-और अर्थ का धेड़ इतना गहराता गया कि निम्न वर्गों की अस्मिता केवल सर्वों के इशारे पर जीवित रहने लगी । निम्न वर्ग के लोगों को समाज की उन तमाम सुख सुविधाओं से वंचित किया गया जिन्हें उच्च वर्ग के लोग अपने दैनिक जीवन में प्रयोग में लाते थे । यहाँ तक कि उनके रहने तक के लिए सम्य समाज से दूर गाँव के किसी एक कोने पर या बस्ती से दूर उन्हें बसाया जाने लगा था । यद्यपि इन निम्न वर्गों की क्वा सुधारने में समय-समय पर कुछ समाज सुधारकों, सीतों और लोक नायकों ने प्रयत्न किए परन्तु, वे सब सतही तौर पर थे । कोई ठोस कार्यक्रम न होने के कारण यह सब क्षेत्रीय और व्यक्तिगत स्तर तक ही सीमित रह गया । डॉ० अलिउल ने उच्चवर्ग और निम्न वर्ग के वैयक्तिक स्पर्श करते हुए कहा था—

“हिन्दुस्तान देश माने केवल विच्छिन्नता का आश्रय स्थान है । हिन्दू समाज उसकी एक मीनार है और सकेल जाति उसकी सकेल मंजिल है । ऐक्य ध्यान में रखी की बात यह है कि इस मीनार में सीढ़ी नहीं लगी है । एक मंजिल से दूसरी मंजिल तक जाने के लिए उसमें मार्ग नहीं रखा गया है । इस मंजिल में जाँ नन्हे, उसी मंजिल में बह मरे । नीचे की मंजिल में जन्मा व्यक्ति पाए वह कितना भी नायक क्यों न हो, उसे

ऊपर वाली मंजिल में प्रवेश नहीं और ऊपर की मंजिल में जन्मा व्यक्ति चाहे कितना भी नालायक क्यों न हो, उसे नीचे की मंजिल पर टूटने का साहस भी किसी में नहीं ।¹

परन्तु आधुनिक युग में विशेष रूप से 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ से छूत-अछूत नारी-शिक्षा, मूर्ति पूजा, विधवा, दहेज, अनमेल विवाह, जड़पत्नी प्रथा, सती प्रथा आदि के बारे में बड़े व्यापक रूप में छद्मजीवियों और श्रितकों का इस ओर ध्यान गया । मध्य युगीन कुरीतियों पर आधुनिक काल में संगठनात्मक रूप में चोट की गई- और सुधारवादी आन्दोलन समाज को एक नई दिशा देने के लिए बड़ी तेजी से चलने लगे--

"भारत में मध्य युगीन धर्म के विरोध में धर्म सुधार आन्दोलन का जन्म हुआ, क्योंकि मध्य युगीन धर्म जाति जैसी संस्थाओं का पोषण करते थे, जो देश में नए अर्थ तंत्र के विकास और भारतीय जनता की राष्ट्रीय शक्ति के रास्ते में जबर्दस्त रुकावटें पैदा करती थीं । एतद्विषय बाव, आत्मा का धनन करने वाले निरर्थक धार्मिक कर्मकाण्ड, धार्मिक रुढ़ियों आदि के विरुद्ध भी संघर्ष हुए क्योंकि ये जनता की आलोचनात्मक छद्मिक शक्ति को कमजोर करते थे । ये धर्म सुधार आन्दोलन तथ्यतः राष्ट्रीय थे, लेकिन स्वतः धार्मिक ।"²

1- धनंजय कीर: विधवाश्रम डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर 1980 पृ०-21

2- ए०आर०वेसाई: भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि-पृ०-229

इस तरह पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर इन समस्याओं का सुधार संगठन के रूप में किस जाने का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ । अज्ञात जो सवियों से अस्पृश्य माना जाता रहा उसे बराबरी का हक और उठना बैठना देने के लिए जगह-जगह से बुद्धिजीवियों और समाज सुधारकों ने सामूहिक प्रयास किए और स्वयं को समर्पित कर समाज में परोपकार की भावना की नींव डाली । नारी जिसे मात्र घर की चारदीवारी में कैद करके उसके सामाजिक जीवन का शोषण जो युगों युगों से चलता आ रहा था आधुनिक काल में अब उसके ऊपर प्रश्न चिह्न लगाने लगा । आधुनिक शिक्षा के माध्यम से उसे स्वाभिमान और आत्म निर्भरता मिली । विधवा जो कि समाज में जीवित लाश की तरह अपना अस्तित्व रखती थी नारी जीवन की सबसे अधिक और सबसे बड़ी विस्मृति थी । नारी की इच्छा और सलाह की परवाह किए बिना आदर्श और नैतिकता के नाम पर पुरुष वर्ग ने उसके शरीर से छिलछाह करने के लिए अनमेल घर से विवाह की योजना के अनुसार उसका खूब शोषण किया । परन्तु आज स्थिति बदली है । आधुनिक शिक्षा और जीविता के साधनों ने उसे सामाजिक सम्मान देकर पुरुष के बराबर ला उठा किया है । सुधारवादी आन्दोलनों से उसे अपने संगठन का एक आधार मिला है । इन समाज सुधार आन्दोलनों में "ब्रह्म समाज" "आर्य समाज" "प्रार्थना समाज" "रामकृष्ण मिशन" अलीगढ़ आन्दोलन आदि प्रमुख हैं ।

ब्रह्म समाज

आधुनिक भारतीय समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने वाला ।
 पहला सुधारवादी आन्दोलन ब्रह्म समाज था जिसे आधुनिक राष्ट्रवाद
 के जनक राजा राम मोहन राय ने 1828 में प्रारंभ किया । यद्यपि
 राजा राम मोहन राय का दृष्टिकोण बहुत उदार था । वे इस्लाम के
 सिद्धान्तों, सुफियों के रहस्यवाद ईसाई धर्म की नैतिक शिक्षा आदि में
 बहुत विश्वास करते थे । वे धर्म के मामले में तर्क की प्रधानता देते थे ।
 उन्होंने छद्मवादी दृष्टिकोण से धर्म की व्याख्या प्रस्तुत की । वे सदैव
 अनावश्यक व्यक्ति अथवा वस्तु को सामान्य से विशेष बनाने के पक्ष में
 नहीं थे । उनका सदैव यह विचार बना रहा कि व्यक्ति को स्वयं जिना
 किसी दिखावे और पुरोहित के माध्यम के बिना स्वयं धर्मशास्त्रों का
 पाठ करना चाहिए और किसी सिद्धान्त को अन्धानुकरण न कर उसकी
 तर्क लंगत दृष्टि अनिवार्य है । जो तर्क के माध्यम से छिपित हो अथवा
 उसमें किसी भी प्रकार का सार न हो उसे निःसंकोच छोड़ देना चाहिए ।

क्योंकि सदैव से हिन्दू समाज पर हिन्दू धर्म की स्तिवादी और
 अंध विश्वासी परंपराओं का नियंत्रण था अतः उन्होंने धर्म सुधार के
 साथ-साथ समाज सुधार को भी अपने सुधारवादी उद्देश्यों में शामिल
 कर लिया ।

ब्रह्म समाज ने सबसे पहली घोट भारत के दकियानूसी समाज की जाति व्यवस्था पर की । उन्होंने जाति व्यवस्था का घोर विरोध किया और उसे राष्ट्र विरोधी अमानुषिक घोषित करते हुए एक सशक्त आन्दोलन की शुरुआत की । ब्रह्म समाज ने "सती प्रथा" और बाल विवाह के विरुद्ध संघर्ष किया और विधवाओं के पुनर्विवाह और स्त्री-पुरुष के समान अधिकारों का समर्थन किया ।

यह सुधारवादी आन्दोलन आधुनिक शिक्षा का, पाश्चात्य शिक्षा का प्रबल समर्थक था । इसने पहली बार नारी स्वतंत्रता की आवाज उठाई और उसे स्वावलंबी बनाने के लिए आधुनिक शिक्षा को अनिवार्य किया ।

ब्रह्म समाज केवल धर्म की वीथियों में ही नहीं घुमड़ता रहा उसकी राष्ट्रीय कर्माँ पर भी गहरी नज़र थी---

"ब्रह्म समाज राष्ट्रवादी आन्दोलन का अग्रणी था, राष्ट्रीय आन्दोलन जो धर्म सुधार आन्दोलन के तौर पर शुरू हुआ और जिसका उद्देश्य था सत्तावादी धर्म के विनाश बोझ से व्यक्ति को मुक्त करना, सत्तावादी धर्म जो व्यक्ति की पहल-शक्ति का गला घोट देता था और व्यक्ति एवं जन मानस को जड़वत बना देता था । ब्रह्म समाज ने व्यक्ति स्वातंत्र्य, राष्ट्रीय ऐक्य और सहकर्मण, सर्व सामाजिक संस्थाओं और सम्बन्धों के प्रजातंत्रीकरण के सिद्धान्तों को घोषित कर भारतीय जनता

के लिए नए युग का हुजूम किया। भारतीय जनता के राष्ट्रीय जागरण की पहली संगठित अभिव्यक्ति थी।¹

यह आन्दोलन बंगाल, बिहार और उड़ीसा में बड़ी जोरों से चला और समाज में बड़े क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रकाश में आये।

प्रार्थना समाज

1857 में ब्रह्मचर्य सैद सेन, गोविन्द रानाडे, रामकृष्ण भट्टाचार्य आदि ने बम्बई [महाराष्ट्र] में प्रार्थना समाज की स्थापना की। दक्षिण भारत में इस सामाजिक आन्दोलन ने काफी उल्लेखनीय कार्य किया। यद्यपि इस समाज के जाति पणित तोड़ने, अछूतों की कक्षा सुधारने, स्त्रियों को सम्मान और समता का हार्न देने, विधवा विवाह कराने, अनाथालय खोलने, विधवाग्राम चलाने आदि प्रमुख कार्यक्रम ब्रह्म समाज से काफी मिलते जुलते थे फिर भी जस्टिस स्मॉ जी० रानाडे आदि ने अपने वैयक्तिक प्रयासों से समाज में एक घेतना लाने का क्रान्तिकारी कार्य किया। प्रार्थना समाज ने समाजोत्थान के लिए दक्षिण भारत में विशेष भूमिका निभाई।

आर्य समाज

1875 में ब्यालैव सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की। इन्होंने हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज की कुरीतियों और अधिव्यवस्थाओं

का बहुत ही प्रभावशाली ढंग से विरोध किया। यह आन्दोलन प्रथम समाज एवं प्रथना समाज से दूसरे ही तरह का था। इस आन्दोलन ने अतीत की सांस्कृतिक विरासत के माध्यम से वर्तमान की व्याख्या प्रस्तुत की। आधुनिक पतन का कारण उन्होंने "धेद" के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की अवहेलना माना है।

यह समाज जाति व्यवस्था को जन्म से मानने का घोर विरोधी रहा है। वह "धेदों" द्वारा सुझाईकरण के सिद्धान्त पर बल देता रहा है। आर्य समाज सामाजिक और शैक्षिक मामलों में स्त्री पुरुष के समान अधिकारों का समर्थक रहा है। उन्होंने स्त्री को देवी और सहधर्मिणी के स्वत्व में मानकर उसकी शोषित प्रकृति से मुक्ति का निहाद छेड़ा।

आर्य समाज के विदेशी शासन का जमकर विरोध किया। उससे तर्जुम करने के लिए उन्होंने जनता में आन्दोलनात्मक रस अपनाया—

"सबसे लोगों में शिक्षा का प्रसार किया, शांति, धर्म, श्रद्धा, लिंग आदि के विषयों के बावजूद मानव-मात्र की एकता के सिद्धान्त का उद्घोष किया। गुलाब रंग की प्रजा होने के नाते उनमें अनिवार्यतः जो चीन वाचना घर कर गई थी, उसे समाप्त करने की भी आर्य समाज ने काफी कोशिश की थी। ----- एक जमाने में तो आर्य समाज सरकार की समन नीति का मुख्य लक्ष्य था। इसमें शायद ही कोई आश्चर्य

की बात है कि जब 1907 के बाद की उथल पुथल की जर्च करने "लन्दन टाइम्स" की ओर से सर थॉमस बार्नर भारत आया तो उसने आर्य समाज को इंग्लैंड और राज्य सत्ता के ^{लिए} बहुत ही खतरनाक बतलाया।¹

आर्य समाज के मुख्य ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" का प्रामाणिक संस्करण 1883 में प्रकाशित हुआ। आर्य समाज की राष्ट्रवादी भूमिका प्रारंभ से रही है। वह आर्य संस्कृति के सिवाय दूसरी संस्कृति को स्वीकार करने के लिए किसी भी कीमत पर तैयार नहीं था। क्याचंद सरस्वती ने कहा था—

"कोई किताब ही कहे, परन्तु स्वदेशीय राज्य सर्वोपरि होता है ----- विदेशी राज्य चाहे जितना अच्छा हो लेकिन वह सुखदायक नहीं हो सकता।"²

आर्य समाज की विचारधारा पर बहुत से गुरुकुल एवं स्कूल और कालिणों की स्थापना हुई। स्त्री शिक्षा के लिए कन्या गुरुकुल आदि हुए। इस आन्दोलन का उत्तरी भारत में प्रचार बड़े जोरों से किया गया और यह बहुत ही लोक प्रिय हुआ। आज भी ज्ञान, कीर्तन, और प्रवचनों के माध्यम से लोग आहम्बर आदि का इस धर्म के अनुयायी जमकर छण्डन कर रहे हैं।

1- एओआरओसार्थ: भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि-पृ0-233

2- इन्द्र विद्यावाचस्पति: भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास-1960
पृ0सं0- 23

रामकृष्ण मिशन

स्वामी विवेकानंद ने अपने गुरु रामकृष्ण के नाम पर उनके आदर्शों और शिक्षाओं को समाज में प्रसारित करने के लिए "रामकृष्ण मिशन" की स्थापना 1896 में की। इन्होंने आत्म चिन्तन और आत्म विश्लेषण के माध्यम से समाज को अच्छे और बुरे मार्गों की पहचान करने का आग्रह किया। यह मिशन "मानव" को केन्द्र में रखकर चलता था। इस धर्म का दृष्टिकोण बहुत ही उदारवादी था। विभिन्न धर्मों और विभिन्न संस्कृतियों के लोगों को भी इसमें प्रवेश पाने की छुली छूट थी। आज भी इस समाज की ओर से पाठ-शालाएँ, चिकित्सालय, पुस्तकालय, वाचनालय आदि उपयोगी संस्थाएँ निर्धन और असहाय लोगों के लिए चलाई जाती हैं। अधिकांश का धूर करना इस मिशन का परम लक्ष्य था।

थियोसफीकल सोसाइटी

ऐसी सामाजिक संस्थाओं के साथ-साथ भारत में कुछ विशेषी समाज-सुधारकों ने सामाजिक सुरीतियों को दूर करने के लिए आन्दोलन चलाए। इन आन्दोलनों में "थियोसफीकल सोसाइटी" का नाम विशेष रूप से लिया जाता है।

थियोसफीकल सोसाइटी की स्थापना 1875 में अमेरिका में न्यूयार्क में हुई। इसकी स्थापना करने वाले कर्नल स्टील आल्काट और

मैसम ब्लावट्स्की थीं । ये दोनों 1879 में भारत में आये और उन्होंने मद्रास के निकट अद्वयार को अपनी सोसाइटी का केन्द्र बनाया । 1893 में श्रीमती स्नी जेसेन्ट ने इस सोसाइटी में सम्मिलित होकर भारत के उत्थान के लिए अपना बहुमूल्य योग दिया ।

इस आन्दोलन का भारतीय सँदर्भ में यहाँ की जनता के लिए इसीलिए महत्व है कि यह गैर भारतीयों द्वारा भारतीयों को ब्रह्मा सुधारने में पहला रचनात्मक कदम था । इस धर्म ने हिन्दू धर्म के आध्यात्मिक दर्शन और उनके पुनर्जन्मवाद को स्वीकार किया । इसने जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण, प्रजाति और यौन भेद आदि से ऊपर उठकर विश्व बन्धुत्व का संकेत दिया । इस समाज की सबसे बड़ी लोकप्रियता का कारण सभी धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करना था- किसी धर्म विशेष के प्रति आग्रह अथवा दुराग्रह रखना इस सोसाइटी में नहीं था । समाज के नैतिक उत्थान के लिए उसकी असंगतियों को दूर करना इस मिशन का मुख्य उद्देश्य था ।

इनके साथ-साथ कुछ अन्य राजनेता भी समाज की कुरीतियों का खण्डन कर समाज को एक नए रास्ते पर ला रहे थे । विपिन चंद्र पाल, अरविंद घोष तिलक और गांधी जैसे नेता सामाजिक असमानता के बारे में निरंतर सोचते थे । समाज के इस वैषम्य को उन्होंने राष्ट्रध्यापी

मानकर उसे राजनीतिक आन्दोलनों की रूपरेखा में शामिल किया।
 डा० अम्बेडकर ने हरिजनों के उत्थान के लिए बड़ा संघर्ष किया और
 उन्होंने उनकी सुरक्षा के लिए राजनीतिक प्रणय जो लिया। असूतों को
 सामाजिक और राजनीतिक सम्मान के लिए उनके लिए आरक्षण का प्रावि-
 धान उन्हीं के प्रयासों का सुपरिणाम है।

इस तरह इन तमाम समाज सुधारों का असर भारतीय जनता पर
 पड़ रहा था। धर्म प्रचारक जनता के निकट पहुँच कर उन्हें उनकी स्थिति
 से परिचित कराते थे। अतः लोक जीवन में इन सुधारवादी आन्दोलनों
 का व्यापक प्रभाव पड़ा। लोग इनके क्राान्तिकारी विचारों को स्वीकार
 कर उन्हें अमल में लाने लगे।

भारतीय कृषि और जमींदारी व्यवस्था

भारत गाँवों का देश है। यहाँ का मुख्य व्यवसाय खेती रहा है।
 किसान परंपरागत रूप में सामुदायिक भावना से कृषि कार्य करते आते हैं।
 अग्रजों से पूर्व पूरा देश ग्राम स्तर पर खेती करता था। उसकी तमाम
 जरूरत की चीजें गाँव में ही कुटीर उपयोग-धन्यों में बनती थी। गाँव
 के शिक्षकार और दूसरे लोग समुदाय के रूप में खेती से जुड़े हुए थे। भारत
 की खेती यहाँ का मुख्य व्यवसाय होने के कारण अपने आप में आत्मनिर्भर
 थी। कार्ल मार्क्स ने इस सामुदायिक व्यवस्था पर कहा था---

“हिन्दुस्तान के ये छोटे-छोटे तथा अत्यंत प्राचीन ग्राम समुदाय
 [समाज] जिनमें से कुछ आज तक कायम हैं, जमीन पर सामूहिक स्वामित्व,
 ऐसी तथा हस्तकारी के मिताप और एक ऐसे ग्राम विभाजन पर आधारित
 हैं जो कभी नहीं बदलता, और जो जब कभी एक नया ग्राम समुदाय
 आरंभ किया जाता है तो पहले से खनी-खनई और तैयार योजना के रूप
 में काम में आता है। तो से लेकर कई हजार एकड़ तक के रकबे में फैले
 हुए इन ग्राम समुदायों [समाजों] में से प्रत्येक एक गठी हुई इकाई होता
 है जो अपनी जरूरत की सभी चीजें पैदा कर लेती है। पैदावार का मुख्य
 भाग सीधे तौर पर समुदाय के ही उपयोग में आता है, और वह माल
 का रूप धारण नहीं करता ----- हिन्दुस्तान के अलग-अलग हिस्सों
 में इन समुदायों [समाजों] का विधान [गठन] अलग-अलग ढंग का है।
 जिनका सबसे सरल विधान जोते हैं और पैदावार सदस्यों के बीच बाँट
 ली जाती है। इसके साथ-साथ हर कुटुंब में सहायक धन्यों के तौर पर
 कताई और कुनाई होती है। ----- इन आत्म निर्भर ग्राम
 समुदायों [समाजों] में, जो लगातार एक ही रूप के समुदायों [समाजों]
 में पुनः प्रकट होते रहते हैं और जब अक्सर बरबाद हो जाते हैं तो
 उसी स्थान पर और नाम से फिर उठे हो जाते हैं, उत्पादन का संगठन
 बहुत ही सरल ढंग का होता है और उसकी यह सरलता ही एशियाई
 समाजों की अपरिवर्तनशीलता की कुंजी है, उस अपरिवर्तनशीलता की

जिसके बिल्कुल विपरीत एषियाई राज्य सदा बिगड़ते और जनते रहते हैं और राजद्वारों में होने वाले परिवर्तन तो मानो कभी रुकते ही नहीं । राजनीति के आकाश में जो तूफानी बादल उठते हैं वे समाज के आर्थिक तत्त्वों के दबि को नहीं छू पाते ।^{०१}

भारत के आत्म निर्भर गाँवों की यह विशिष्टता जग जाहिर थी । वह अपनी तमाम आवश्यकताओं की पूर्ति अपने-अपने सामुदायिक कार्य विभाजन द्वारा करते थे । शासन ने भी इनके कार्य में कभी हस्तक्षेप नहीं किया । इनकी अपनी अर्थ व्यवस्था पारंपरिक थी जोकि समाज के साथ लगी यली आ रही थी । २० आर० वेताई ने इस व्यवस्था के बारे में लिखा है ---

“राजा किसी प्रकार हो, दयालु या, क्रूर, परोपकारी या निर्दय, हिन्दू या बौद्ध या मुस्लिम- कभी यह कौशिक नहीं हुई कि ग्राम समुदाय को जमीन से छींचत किया जाय या जमींदारों का कोई वर्ग स्थापित किया जाय यह इस बात का प्रमाण है कि जमीन को कभी राजा की सम्पत्ति नहीं समझा गया । ग्राम समुदाय ही गाँव की भू-सम्पत्ति का वास्तविक अधिकारी था । महेशाह या राज्य का सालाना फसल के अंश मात्र पर ही अधिकार था । दूसरी तरफ, किसी खास जितान

१- कार्ल मार्क्स- रूसी, खण्ड-१, प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ०- ४०४

का भी जमीन पर कोई निजी हक नहीं था। प्राक् ब्रिटिश भारत में भूमि पर किसी भी प्रकार का व्यक्तिगत स्वत्व नहीं था।¹

इस प्रकार भारत की कृषि व्यवस्था का स्वरूप सामूहिक था जिसमें संयुक्त परिवार और समुदायवादी दृष्टिकोण के आधार पर सहयोग की भावना बलवती थी। पूरा कृषक समुदाय गाँव की समूची खेती का मालिक था। व्यक्तिगत स्वामित्व के लिए अब तक कोई जगह नहीं थी।

परन्तु ईस्ट इंडिया कंपनी की भारत विजय के बाद सबसे पहली दृष्टि भारत की इस सामुदायिक कृषि व्यवस्था पर ही पड़ी। उसने सर्वप्रथम इसके सामुदायिक रूप को तोड़कर उसे इकाईयों के रूप में बाँट दिया। सन् 1793 में लार्ड कार्नवालिस ने जो कि उस समय भारत का गवर्नर जनरल था कंपनी के आर्थिक और प्रशासनिक स्वत्व को मजबूत करने के लिए यह अपने **[[इंग्लैंड]]** यहाँ जैसी व्यवस्था कायम की। उसने किसान और सरकार के बीच स्थाई बन्दोबस्त के अनुसार **“जमींदारों”** के नए वर्ग का सृजन किया। ये जमींदार अपनी-अपनी जमींदारी के स्वतंत्र मालिक बना दिए गए और उनसे **“कर”** के रूप में मालगुजारी की एक मुश्त वार्षिक राशि नियत कर दी गई। ये जमींदार अब सरकार की ^{जगह} स्थान स्थान किसानों से लगान वसूल करने के अधिकारी बन गए। इस तरह कंपनी सरकार की मालगुजारी की आय सखा के लिए निश्चित हो गई और जमींदार लोग

1 - ए0आर0देसाई: भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि-पृ0-30

जमीन छिने और अधिकार छी होने के डर से कंपनी के वफादार अधिकारी के रूप में अंग्रेजों से अधिक गुस्तेकी दिखाने लगे ।

इस प्रबन्ध से किसानों को कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि जमींदार निरंकुश होकर उनसे मनमाना लगान वसूलते थे उनकी फसली हालत को उन्होंने कभी नहीं देखा । फसल चाहे अच्छी हुई हो अथवा खराब अकाल पड़ा हो अथवा सूखा-बाढ़ से फसल नष्ट हो गई हो जमींदार को इन बातों से कोई सरोकार नहीं था । वह लगान वसूलन और कंपनी के वफादार होने में किसानों के साथ बेवकूफ सलती से पेशा आता था ।

जमींदारी व्यवस्था लागू होने के कारणों पर ए० आर० हेतार्ड ने लिखा है ---

“भारत की पुरानी भूमि व्यवस्था पर अंग्रेजों ने ही पहली गहरी चोट की । उन्हें खास कर तीन बातों से जमींदारी प्रथा लागू करने के लिए बाध्य होना पड़ा । एक, ईस्ट इंडिया कंपनी जमीन के उन्दीबस्त की न्यायिक एवं आर्थिक धारणाएँ ही अपना सकती थी । इंग्लैंड का आर्थिक अतीत भारत से मूलतः भिन्न था । अंग्रेजी जमींदारी प्रथा जमीन के व्यक्तिगत स्वामित्व की परंपरा और भाषना में जन्मी और पली-पूली थी, जिसके लिए भारत के आर्थिक इतिहास में कोई मिशाल नहीं थी । दो, प्रजासत्ताकीय दृष्टि से ब्रिटिश शासन के एक के नीकों में, लाखों

छोटे किसानों की अपेक्षा कुछ हजार जमींदारों के लगान की वसूली आसान और आर्थिक दृष्टि से लाभजनक थी । तीन नवजात अंग्रेजी राज को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए, राजनीतिक एवं सामरिक दृष्टि से, देश में सामाजिक समर्थन की आवश्यकता थी । ऐसी आशा स्वाभाविक थी कि यह जमींदारों का नया वर्ग जो ब्रिटिश शासन के चलते ही जन्मा बना अवश्य ही इस शासन की मदद करेगा ।^१

यह जमींदारी प्रथा भारतीय अर्थ व्यवस्था के बिल्कुल विपरीत थी । किसान और सरकार के बीच यह जमींदारों का नया मध्यस्थ वर्ग भारतीय अर्थ व्यवस्था के लिए एकदम नया और अनूठा था । अंग्रेज इन्हें 'लेण्ड लॉर्ड्स' के नाम से जानते थे । ये जमींदार किसान की ज़ोत में आने वाली जमीन की बिना पेमाइश कि, प्राकृतिक प्रजोपों को अनदेखे उनसे बर्बरता से लगान वसूलते थे । अतः इस व्यवस्था का बड़ा भयंकर परिणाम निकला क्योंकि जमींदार कभी भी किसान की सुखदुःख फसल के लिए प्रयत्न नहीं करता था । फसल अच्छी हो या गुरी उसे इससे कोई सरोकार नहीं था । उपर्युक्त सिंघाई आदि के साधन न होने से किसान अथिष्ठ पैसावार लेने में अक्षम रहा । परन्तु सरकार को वह बंधी-बधार्ई रुकम देने को बाध्य था । अतः किसान प्रतिवर्ष अच्छी फसल के लालच में जी तोड़ मेहनत करने पर भी कभी धन से नहीं रह सका वह

1 - एड्वारड हेसाई: भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि-पृ०-३१

गरीबी कर्ज और कमजोरी की लपेट में इन्हीं जमींदारों के यहाँ गुलामी करने के लिए बाध्य होता चला गया। दूसरे जमींदारों ने भी अपनी शान और शौकत बनाए रखने के लिए और किसानों को आतंकित करने के लिए पटवारी, कारिन्दे और जिल्लेदार नियुक्त कर रखे थे। ये कारिन्दे और जिल्लेदार किसानों को लगान वसूल करते समय बहुत तंग करते थे, उनका सार्वजनिक अपमान, पिटाई और बहिष्कृत बेटी की दण्डित से टूटे आम ठिलवाह करने की इनकी आदत बन गई थी। साइमन रिपोर्ट में इनके बारे में कहा गया है ---

“कुछ जिलों में उप सार्वतीकरण इस आश्चर्यजनक सीमा तक पहुँच गया है कि सबसे उपर जमींदार और सबसे नीचे काश्तकार के बीच पचास से भी अधिक मध्यस्थ स्वार्थ विद्यमान हैं।”¹

ए० आर० हेसाई ने इसी शीर्षक को एक कथा का रूप देकर प्रस्तुत किया है-

“फल स्वल्प लेती करने वाले किसान एक अनुक्रमिक प्रेमी हुंखला की अंतिम निम्नतक बड़ी है और उन्हें लगान वसूल करने वाले गैर काश्तकार लोगों की बहुत बड़ी शीश का भार संभालना पड़ा है। अतएव लैसा में नाविक सिन्दबाद की पीठ पर जो समुद्री बूढ़ा सवार हुआ था, वैसे बहुत सारे छूटे, भारतीय किसान की पीठ पर सवार थे। किसान को इन सारे लोगों को दिख जाने वाले लगान का दुर्बल असह्य भार टोना था।”²

1- साइमन कमीशन रिपोर्ट- पृष्ठ-1 पृष्ठ- 340

2- ए० आर० हेसाई: वही - पृष्ठ- 54

इन जमींदारों ने कभी भी किसानों की बेहतर हालत के लिए प्रयत्न नहीं किया उल्टे उन्हें घूस-घूस कर मनमाना लगान वसूल कर उन्हें मंगु कर दिया। किसानों से अधिकाधिक लगान वसूल करना ही उनका उद्देश्य बना रहा।

भारतीय जमींदार अंग्रेजों द्वारा खरीदे हुए जिलों में वे जिन्हें वे अपनी मर्जी के मुताबिक अपने इशारों पर नचाते रहते थे। भारतीय जमींदारों ने अंग्रेजों को ह्वा रखने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी थी। उनके सम्मान में वे सिर झुकाए ही रहते थे। जो जमींदार अंग्रेजों का विरोध करता था जैसा कि 1857 में भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में हुआ उसे अंग्रेजों ने समूल उखाड़ दिया और उनकी जगह नए जमींदार इस तरह के लिखित आदेश के साथ बहाल किए गए कि वे अंग्रेजों के वेष भक्त बने रहेंगे —

"ताबुदखारों को यह जमींदारी इनाम स्वरूप मिली थी, इसलिए उन्हें जो प्रमाण पत्र दिए गए थे उनमें यह भी लिखा गया कि यह वर्णित धु-भाग इन्हें और इनके उत्तराधिकारियों को सदैव के लिए दे दिए गए उनके साथ यही शर्त थी कि वे राजभक्त बने रहेंगे और भूमि के आय का आधा सरकार को मालगुजारी देते रहेंगे।"।

इस तरह इस शोषण की लम्बी शृंखला में किसान शोषित के रूप में दीखता गया उसके कर्ज और गरीबी उसकी संतान को विरासत में मिलती गई तो दूसरी ओर जमींदारों की सन्तान को अधिकार और संपत्ति उत्तराधिकार के रूप में । हर्ष देव मालवीय ने इस शोषणपरक लगान बंदी के बारे में लिखा है —

“देहा में लगान की दर उत्पादन की 34 से 75 प्रतिशत तक थी ।”¹ इस आर्थिक तंत्र में किसान, जमींदार और अन्य प्रशासनिक वर्ग की अनियमितताओं के साथ-साथ सेठ साहूकार महाजन आदि के कर्ज में भी झुबता चला गया । अपना और अपनी संतान का पेट भरने के लिए उसने अनचाहे न जाने कब्रियों पर कितने ही सम्झौते किए जिससे उसकी रीढ़ कभी भी सीधी नहीं हुई ।

यह लगान बन्दोबस्ती भारत में एक जैसी नहीं थी । क्षेत्र विशेष और वर्गों की आवश्यकता को देखकर ही अंग्रेजों ने इस तरह की व्यवस्था स्थापन देव के कारण की थी । रथार्थ बन्दोबस्त ब्रिटिश भारत के कानून, बिहार और उड़ीसा प्रान्तों में था ।

रेयतवासी प्रथा

भूमि सुधार के नाम पर अंग्रेजों ने देहा की कृषि व्यवस्था को कई रूपों में ढंटा था । रथार्थ बन्दोबस्त जिसमें जमींदार कायम किए गए

1- हर्ष देव मालवीय: लेण्ड रिफार्मेशन इंडिया-1755 पृ0सं0-450

ये यह व्यवस्था पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और बंगाल में लागू की गयी। लेकिन कुछ भागों में उन्होंने किसानों की निजी मिल्कियत के आधार पर उन्हें सीधा सीधा जमीन का मालिक बनाया। किसान अपनी जेत का स्वयं अधिकारी था। वह एक बंधी बंधाई निश्चित रकम सरकार के खाने में जमा करता था। इस प्रथा को रयतवाड़ी प्रथा के नाम से जाना गया।

रयतवाड़ी प्रथा में किसान और सरकार के बीच कोई मध्यस्थ नहीं था। किसान अपनी जमीन को बेचने, खरीदने, गिरवी रखने और उसे बैंक में देने का पूरा अधिकार था। इस प्रथा को लागू करने के पीछे जमींदारी प्रथा की कुछ भूलें थी अतः सर टामस मनरो ने जो उस समय मद्रास का गवर्नर था यह रयतवाड़ी सिस्टम प्रारंभ किया —

“सर टामस मनरो ने जमींदारी प्रथा को भारतीय परंपरा के प्रतिष्ठा माना और उसकी जगह रयत वाड़ी प्रथा का अमुमोदन किया। उसके अनुसार यह प्रथा परंपरागत संगत थी इसलिए जब वह मद्रास का गवर्नर था, उसने 1820 में उस प्रान्त में इस व्यवस्था की एजाजत की और उसके बहुत बड़े भाग में इसे लागू किया गया। बाद में रयतवाड़ी प्रथा दूसरे प्रान्तों में भी लागू हुई। यह प्रथा बंबई, सिंध, बरार, मद्रास, आसाम और कुछ और इलाकों में भी। कुल मिलाकर ब्रिटिश भारतीय भू-भाग के 51.8 भाग में प्रचलित थी।”¹

परन्तु यह अग्रिणों का दृष्टिद्वारेण नितान्त भ्रमक था कि रैयत वाड़ी प्रथा भारतीय परंपरा के अनुकूल है । सत्य इसके ठीक विपरीत था ---

रैयतवाड़ी प्रथा भारतीय परिपाटियों के अधिक नजदीक समझी गई और इसलिये उसका समर्थन किया गया । लेकिन वस्तुतः इसके अनुसार भी जमीन का निजी स्वत्व किया गया और भूमिकर फसल के बबूले जमीन को आधार बनाकर तय किया गया । इस प्रथा ने भी भारतीय संस्थाओं का वैसे ही हनन किया जैसे जमींदारी प्रथा ने ।¹

अतः इस नई व्यवस्था में खड़ी जमीन को आधार मान कर लगान की वसूली सरकार द्वारा की जाती थी फसल कैसी और कितनी तथा कितने भूभाग पर हुई है इससे सरकार को ई तरीकार नहीं था । इस तरह की अनदेखी व्यवस्था का बड़ा घातक परिणाम निकला । एक तो किसान सामुदायिक उत्तरदायित्व से बड़ा दूरे वह मुसीबत और परेशानी में अकेला भागीदार हुआ । यद्यपि उसके और सरकार के बीच कोई मध्यस्थ नहीं था फिर भी इस तरह की मुकीम्यत लगान बन्दी उसके माफिक नहीं थी । क्योंकि प्राकृतिक प्रकोपों, अकाल, अनावृष्टि अति-वृष्टि आदि के कारण उसकी नष्ट हुई फसल पर कोई लगान की छूट नहीं थी अतः वह कर्ष ऐकर ही अपनी जान हूडा पाता था । इस व्यवस्था

ने सुखोदर महाजन, साहूकार और व्यापक होने वाले लोगों को भी पैदा किया और किसान सरकार और सुखोदरों के बीच अकेला कराह-कराह कर पिसता रहा ---

“किसानों से पैसा घूसने के लिए ये साहूकार कानूनी तरीकों के अलावा जाल साजी से भी काम लेते थे, जैसे मूल से अधिक का शर्तनामा लिखवाना, गलत हिसाब रखना इत्यादि । ये किसान की गरीबी और उसके अज्ञान का भी फायदा उठाते थे । अपनी अनभिज्ञता के कारण किसान को जाल साजी का पता नहीं लगपाता था, और इस तरह वह कानूनी कार्रवाई नहीं कर पाता था ।”

किसान और महाजन की स्थिति पर रायल कमीशन ने भी अपनी यही रिपोर्ट प्रस्तुत की है ---

“भारतीय किसान प्रायः लाभ और प्रतिफल के लिए नहीं, बरन जीवन निर्वाह के लिए ऋता था । भूमि की अति संकुलता और जीवन निर्वाह के वैकल्पिक साधनों एवं अपनी दुर्दशा से बचने के लिए उपायों की कमी - इन सबके कारण कहीं भी, किसी भी शर्त पर ऋत उगाने को किसान लाचार था । काय्य सायग्री के लिए उसे जमीन की जरूरत है और जमीन के लिए उसे महाजन की मिन्नत से घिरौरी करनी पड़ती है

उसकी चल-अचल सम्पत्ति है उससे अधिक

यद्यपि जितनी उस पर महाजन का शण है, वहाँ उसकी जमीन महाजन के हाथ में चली गई है, वहाँ किसी भी कायदे-कानून से उसकी ज़रूरत पूरी नहीं हो सकती, कायदेकार का कोई भी कानून उसकी रक्षा नहीं कर सकता ।^१

इस तरह भारतीय किसान किसी भी तरह सुखी नहीं था । उसे कानूनन सरकार के सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करने का हक तो था लेकिन वहाँ तक उसके पहुँचने की सामर्थ्य अब उसमें नहीं रह गई थी । क्योंकि सरकारी कर्मचारियों ने कभी भी उसकी दयनीय स्थिति की परवाह नहीं की, नहीं उसकी स्थिति से सरकार को परिचित कराया उल्टे, सख्ती और ज़बती से लगान वसूल कर सरकार को किसानों से परासुख बना दिया । इस तिहरे शोचन में किसान टूटता चला गया ।

क्योंकि औद्योगिक क्रान्ति से उसके तमाम कुटीर उद्योग धन्धे बर्बाद हो गए थे । वह अपने हाथ की दस्तकारी छिज जाने के कारण खेती पर मजबूरन आश्रित हुआ लेकिन खेती की इस जमींदारी और रेत-वारी प्रथा ने उसका कई त्यों में रक्त घूसा और उसे बेजान कर दिया उसकी सामाजिक शक्ति के साथ-साथ शारीरिक शक्ति का भी हास होता चला गया और वह गुलामों जैसी जिन्दगी जीने के लिए मजबूर

हो गया। उसके लिए इस जलते भाड़ में कहीं भी छण्डक नहीं मिली। और धीरे-धीरे वह कृषि दास छेतिहर मजदूर और सर्वहारा के कर्माँ में छिँता गया। और उसकी पीठ पर जमींदार, सेठ, महाजन, सूखोरे, सरकारी अमल ऐला और बड़े-बड़े धू-स्वामी बैठते गए जिसके परिणाम स्वरूप वह कभी भी उठ न पाया।

राष्ट्रीय आन्दोलन और उसका काँ चरित्र

सन: 1757 की क्लाइव की प्लासी के मैदान की ~~दस्त~~ फ़तह ने अंग्रियों के मनसूबे को ख़ुल दिया। अंग्रिज इंग्लैंड से मात्र व्यापारी के रूप में भारत में आए थे परन्तु यहाँ की परिस्थितियों ने उन्हें शासक बना दिया। यहाँ की रुग्ण और कमजोर शासन व्यवस्था ने उनके आगे बढ़ने के तमाम द्वार खोल दिए। अंग्रियों ने अपनी कूटनीति से यहाँ के नरेशों और नवाबों को आपस में भिड़ा-भिड़ा कर शक्ति हीन कर दिया और 1765 में बंगाल बिहार और उड़ीसा प्रान्तों में कर वसूलने का पुरता शासकीय अधिकार प्राप्त किया। धीरे-धीरे यहाँ के नवाबों की अमलदारी में सीधा झल्ल देते हुए उन्हें पराजित कर वे दक्षिण और पूर्वी भारत में एक नई राज शक्ति के रूप में उभरे। राजनीतिक स्तर पर उन्होंने यहाँ के राजा और नवाबों को अपने मातहत कर लिया। और धीरे-धीरे यहाँ के आन्तरिक प्रशासन, अर्थ-व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने लगे।

व्यक्ति उन्होंने जमींदारी प्रथा, रयतवारी प्रथा आदि आर्थिक कार्यक्रम लागू करके भारतीय किसान और अपने बीच सेकड़ों मध्यस्थ पैदा किए थे। ऐसा उन्होंने प्रशासन को गति देने के लिए नहीं किया अपितु अपने को जनता से सीधे टकराव से बचाकर भारतीयों द्वारा भारतीयों का ही शोषण कराया और स्वयं बिना किसी परेशानी के नबाखों और जमींदारों को अपनी कछुतली बनाकर नचाते रहे। इस छुट्टे तिट्टे शोषण से भारतीय किसान लंग आ गया था। उसकी कर्मा और गुलामी से कमर टूट गई थी। उसके कुटीर उपयोग धन्यों के विनाश से उसकी परंपरा का अंत तो हुआ ही दूसरे उसे इस नयी आर्थिक लान बन्दी की व्यवस्था ने गुस्ता प्रारंभ कर दिया।

इधर कंपनी शासन के साथ-साथ उनकी ईसाई मिशनरियाँ भारत के सामाजिक स्वरूप को विघटित करने लगीं। धर्म परिवर्तन और उससे मिलने वाले आसकीय लाभ-लौभ ने उनके सामाजिक जीवन को भी खतरे में डाल दिया। 11 अप्रैल 1850 का लेक्स लोकी कानून सार्थक डलहौजी ने भारी विरोध के बावजूद लागू किया था। इस पर उदारवादी अंग्रेजों ने ही विरोध प्रकट किया था और भारतीय जन जीवन के उसे विपरीत बताकर उसके धर्मपर परिणामों की भी भविष्यवाणी इस कानून के स्वरूप को देखकर ही की गई थी। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले पत्र "इंग्लिश मैन" ने 15 अप्रैल 1850 वाले अंक में इस कानून की सीढ़

भर्त्सना करते हुए लिखा गया था—

“यह नोट रखा बेहतर होगा कि ११ अप्रैल १८५० का दिन भारत से अंग्रेजों को निकाल बाहर करने का पहला वैधानिक कदम होगा।”

इधर अंग्रेजों की वृहत् नीति ने भारतीयों को उनके “गोद लेने” की प्रथा समाप्त कर उनके राज्य को अपने राज्य में मिला देने से उन्हें असंतुष्ट कर दिया। अंग्रेजों की इस साम्राज्यवादी नीति का बड़ा घातक परिणाम निकला। सतारा, नागपुर, झांसी, संभलपुर, जैतपुर आदि अनेक रियासतें अपने इस पुत्रेयी हक से वंचित किए जाने पर वे इस शासन से रुष्ट हो गईं। इस तरह —————

अंग्रेजों के खिलाफ पहला वातावरण संघर्ष का वातावरण १८५७ में बना जिसका मूल उद्देश्य भारत से अंग्रेजी शासन का अंत था—

“भारत पर ब्रिटेन के निरंकुश शासन के कारण औद्योगिक बुरुवाजी को भारत का अनियंत्रित औद्योगिक विकास करने में दिक्कत हो रही थी। राज्य व्यवस्था के प्रमुख पक्षों पर अंग्रेजों के एकाधिकार के कारण, शिक्षित वर्ग के लोगों को नौकरियाँ प्राप्त करने की अपनी न्याय संहिता आकांक्षा की पूर्ति में दिक्कत हो रही थी। धरती के छोटे किसान यह देखते थे कि अंग्रेजों द्वारा लाई गई नई भू-राजस्व व्यवस्था उनकी बढ़ती हुई गरीबी

का कारण थी। सर्वद्वारा मजदूर वर्ग के लोग देखते थे कि यह विदेशी अग्रजातीयिक शासन व्यवस्था उन्हें अपनी हालत सुधारने और जिस मजदूरी तंत्र में उनका शोषण हो रहा था उसे बदलने के लिए आवश्यक वर्ग संघर्ष को विकसित करने से रोक रही थी।¹

अतः इन सबका परिणाम 1857 का महा विद्रोह हुआ। जिसमें राज घरानों से लेकर समान्य जनता ने अंग्रेजी शासन को उखाड़ने का संकल्प लिया था। परन्तु अपनी आन्तरिक कमजोरियों से यह सफल नहीं हुआ यह दूसरी बात थी। इस विद्रोह को साम्प्रदायिक और सिपाही विद्रोह कहकर असह्यत को छुपाने की अंग्रेजी सरकार की नीयत थी परन्तु ऐसा नहीं था। यह सशस्त्र स्वाधीनता संग्राम भारतवासियों की मूल धृति से जुड़ा हुआ था। प्रसिद्ध जवाहर लाल नेहरू ने सत्य सत्ताधन की क्रान्ति को आकस्मिक घटना न मानते हुए सैकड़ों वर्षों के क्षोभ और असंतोष को इसका मूल कारण बताया ---

“हजारों वर्षों में अंग्रेजों के खिलाफ बड़ा असंतोष और दुस्सा था।”²

लेकिन इसमें सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात यह थी कि यह पुराने सामंतों रजवाड़ों और जनता का विद्रोह था। इस विद्रोह में नए जमींदारों, तालुकेदारों और नवाबों ने साथ नहीं दिया उल्टे ब्रिटिश

1- ए0आर0केसार्ड: भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि-पृ0-246

2- जवाहरलाल नेहरू: विश्व इतिहास की झलक 1962 पृ0-576

शासन की हर तरफ से इस विद्रोह को दबाने में मदद की थी। यही कर्ण आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन में अपने वित्त स्वार्थों की सुरक्षा के लिए आगे आया और नेतृत्व में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

1857 के बाद देश ब्रिटिश पार्लियामेंट के अधिकार में चला गया। अब तक स्थानी के अधिकार का भारत अब ब्रिटेन की महारानी के अधीन हो गया। परन्तु यह परिवर्तन मात्र भारतीयों को हाँसा था। इस परिवर्तन से अंग्रेजों की शोषण नीति में कोई अन्तर नहीं आया था उल्टे भारत की जनता पर अविश्वास, कमन और बर्बरता का व्यवहार किया गया।

क्योंकि कुछ देशी नरेशों ने अंग्रेजों का साथ दिया था तथा कछुके की रियासतों को अंग्रेजी सरकार ने अपने राज्य में नहीं मिलाया था इसलिये वे अंग्रेजों के और अधिक बकादार हुए और जनता पर जुल्म का दौर और अधिक तेज हो गया। परन्तु जनता अब उठ खड़ी हुई थी उसने सशस्त्र संग्राम से 1857 में अंग्रेजों की जड़ें हिला दी गयीं थीं। अतः वे अब पूर्ण स्वतंत्रता के लिए जन-संघर्ष के माध्यम से आन्दोलित हुए---

देश में इस नयी नीति का महत्वपूर्ण परिणाम निकला। जब काल इस से देशी रियासतों के लोग अपनी कमनात्मक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति के प्रति जागरूक हुए और राजवाड़ों के चिरहुँदा शासन

के विरुद्ध प्रतिनिधि सरकार और अन्य जनतांत्रिक मार्गों के लिए संगठित होने लगे, तब उन्हें अनिवार्यतः ब्रिटिश शासन से भी संघर्ष करना पड़ा, क्योंकि ब्रिटिश सरकार इन रणवाहियों की रक्षा के लिए पचन बढ़ थी। इस तरह रियासतों की जनता का संघर्ष ब्रिटिश भारत की जनता के स्वतंत्रता संग्राम के साथ एक मोर्चे में मिल गया और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध समस्त भारतीय जनता के संयुक्त अखिल भारतीय आन्दोलन का जन्य हुआ।¹

1857 के बाद देश में नई जागृति पैदा होने लगी। जिस तरह लार्ड डलहौजी ने 1857 की क्रान्ति के लिए अपनी दृष्टिनीति को लागू किया था ठीक उसी तरह भारत के पुनर्जागरण के लिए लार्ड लिलिंग के काले कारनामों, 1877 के बेहद खर्चीले और भव्य दिल्ली दरबार का उस समय आयोजन जब देश में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ रहा था, 1878 के कर्नाटूलर प्रेस एक्ट जो भारतीय प्रेस की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने के लिए ही जारी किया गया था के कारण जन अंतोष के काबू हो गया और 1857 से बड़े और श्यानक विस्फोट की स्थिति बन गई।

परन्तु यह भारतीय जन क्रान्तियों का प्रारंभ से ही दुर्भाग्य रहा है कि अपार जन शक्ति और उत्साह होने पर भी वे कभी अपना संपूर्ण लक्ष्य नहीं पा सकी क्योंकि उन्हें स्वार्थी नेतृत्वों के कारण सदैव मार जानी

1 - सञ्चारोद्देशः भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि-पृष्ठ-251

पड़ी है। अंग्रेजों के खिलाफ लड़े जाने वाले स्थानों में भी यही हुआ। इसके बावजूद भी जनता में अभी नैराश्य नहीं आया।

अंग्रेजी शासन के खिलाफ भारतीय जनता में जन असंतोष बढ़ रहा था। उसी समय ४० ओ० ह्यूम नाम के एक अंग्रेजी अधिकारी ने इस स्थिति को शान्त करने के लिए मीठी मार का हथियार, "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस" 1885 में बनाकर इस्तेमाल किया। अंग्रेजों के लिए यह सुरक्षा कपाट के समान साबित हुआ। क्योंकि रौणाना के विद्रोह और जन असंतोष से बचने के लिए साल में एक या दो बार शाहीनता के साथ बिना किसी उत्तेजना के भारतीय अपनी मर्गि और कठिनाइयों को शासन के इस मंच से रख सकें।

"भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस" की स्थापना से आन्दोलन की ज्वाला हीतवृत्तरी और घुड़ गई। क्योंकि इस संस्था में लड़े घरों, धूमिलपित्तियों उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों को लिया गया था जिनमें बच्चू० ती० बनर्जी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फीरोजशाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले आदि थे। इन लोगों ने अपने उदारता वाली दृष्टिकोण से अंग्रेजों का सहयोग ही किया। "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस" भारतवासियों की कितनी हित साधिका थी यह उसके पहले सम्मेलन 28 सितंबर 1885 में ह्यूम द्वारा दिए गए भाषण से साफ जाहिर हो रहा था। कांग्रेस के महा सचिव होने के नाते उनके समापन भाषण^{का} भाव छूटच्य है ---

“बड़ी प्रसन्नता के साथ इस भार को ग्रहण करते हुए द्यूम ने ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया की बड़ी प्रशंसा की, और कहा कि सब उपस्थित लोग महारानी को बहुत प्यारे हैं और वे सब लोग महारानी के बच्चे हैं। ऐसी महा महिमा मयी राज राजेश्वरी का जय जय कार उन्हें आरंभ में ही करना चाहिए था। लेकिन कोई बात नहीं, डेर आस हस्त आस। फिर अपने को राज राजेश्वरी के गुत्तों के फीते खोलने के भी अयोग्य बताते हुए द्यूम ने उनका जय जय कार स्थिर तीन बार नहीं, तीन का तीन बार और अगर संभव हो तो उसका भी तीन बार करने का प्रस्ताव रखा। उपस्थित लोगों ने भारत भूमि का नहीं, स्वदेश का नहीं, ब्रिटिश साम्राज्य वाद की प्रतीक महारानी विक्टोरिया का बराबर जय जय कार किया और अपने अपने घर चले गए।”¹

अयोध्या सिंह ने इसके प्रारंभिक स्वरूप पर बड़ी स्टीक टिप्पणी की है---

“इस तरह राष्ट्रीय आन्दोलन में कांग्रेस का जन्म साम्राज्यवाधियों के उत्तेज से हुआ और साम्राज्य वाद के सबसे बड़े प्रतीक के गुत्तों के फीते खोलने के योग्य बनने में भी अपना पड़ा सौभाग्य देखने वाले, उपनिवेशवाधियों की भारत सरकार के दसियों वर्ष तक विश्वस्त सेवक रहने आन्दोलन द्यूम कांग्रेस के जनक बने। कांग्रेस राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए नहीं बल्कि भारतीय क्रान्ति को रोकने का अस्त्र बनने के लिए पैदा की गई।”²

1- अयोध्या सिंह: भारत का मुक्ति संग्राम- पृ०- 128-129

2- वही: पृ०- 129

और सबसे बड़ा सुर्माग्य यह रहा कि कांग्रेस में ब्रिटिश सरकार की जी झुझुरी करने वालों की संख्या बहुत अधिक थी । कांग्रेस के उदार-वादी नेताओं ने जो कि कांग्रेस के कर्मधार थे उन्होंने भारत की जमीन से न छुड़कर ब्रिटेन की जमीन से छुड़ना अधिक सम्मान जनक समझा वे जमींदारों और नवाबों से भी ज्यादा अपने को बराबर बताने की कोशिश में सम्मेलनों में बड़े-बड़े भाषण देने लगे । 1899 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन के अध्यक्ष रमेश चंद्र ने अपने अध्यक्षीय भाषण में स्पष्ट कहा था--

“शिक्षित भारत ने अपने को ब्रिटिश राज्य के साथ व्यवहारतः सकारात्मक बना लिया है, वह ब्रिटिश राज को हमेशा बनाए रखना चाहता है और ब्रिटिश राज के प्रति वफादार है, इसलिए कि ब्रिटिश राज को जारी रखकर शिक्षित ^{भारत अधिकांश स्वायत्त शासन} और पृथ्वी को आधुनिक राष्ट्रों के बीच स्थान प्राप्त करना चाहता है । इन्हीं को प्राप्त करना हमारा लक्ष्य है और इन्हीं के लिए हमारा प्रयास है ।”

इसी तरह का विचार 1892 में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अभिव्यक्त किया था--

“हम एक महान और स्वतंत्र साम्राज्य के नागरिक हैं और दुनिया के अब तक के एक सर्वोत्तम संविधान की छाया हमारे सिर पर है । अंग्रेजों के अधिकार हमारे अधिकार हैं और उनकी सुविधाएँ हमारी

1 - इंडियन नेशनल कांग्रेस [1899] की रिपोर्ट अध्यक्षीय भाषण

सुविधाएँ हैं, उनका संविधान हमारा संविधान है ।^१ और 1902 में अपने अध्यक्षीय भाषण में इस महानुभाव ने ब्रिटिश सरकार की जमकर चिरोरी की थी--

"हमारी इससे ज्यादा आकांक्षा नहीं कि हमें स्वायत्त शासित राष्ट्रों के महान संघ में शामिल किया जाय जिसकी पवित्र माता इंग्लैंड है । हम पहले से ही काफी बकावार हैं, और ब्रिटेन के साथ हमारा काफी गहरा सम्बन्ध है । लेकिन हम ब्रिटिश राज के स्थायित्व के लिए, ब्रिटिश साम्राज्य के महान संघ में स्थाई रूप से शामिल किए जाने के लिए प्रीति और उत्सुक हैं ।"^२

लेकिन इससे कहीं ज्यादा अंग्रेजी सरकार परस्त मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद खां थे जो तबोईल से उनके छोड़ण और खान को आदर के साथ देखते थे । यद्यपि वे कांग्रेस के विरोधी थे परन्तु उन्होंने भी भारतीय जन जीवन से अंग्रेजों से मिलने वाली सुविधाओं के पीछे कभी भी गुहने का प्रयास नहीं किया वे उम्मे मुसलमानों को कांग्रेस और जन आन्दोलनों से अलग रखकर अंग्रेजों का स्वायत्त पनाना चाहते थे --

"खिलाफत छद्म सरकार हिन्दुस्तान की जनता की तरक्की के लिए फिरमंद है । अगर मौजूदा हालत को ब्रिटिश प्रभुत्व की सुझात के पक्ष

1- रजनी पाय वस्तु: पीछिया दूधै-1970 पृ0-322

2- अयोध्या सिंह: भारत का मुक्ति संग्राम-पृ0-154 पर उद्धृत

की छाया से मिटाकर देखा जाय तो वह तरक्की, जो ब्रिटिश हुकूमत ने हिन्दुस्तान की जनता को दी है, देखकर सन्तुष्ट ताज्जुब होता है। सरकार अब भी उनकी तरक्की और ज्यादा करने को उसी तरह तैयार है। वह जो कुछ तरक्की उचित समझती है दे रही है और देती रहेगी। --

1857 की क्रांति ने ----- हिन्दुस्तान की तरक्की^{को} सारा ही ~~खो~~ धकेल दिया था। अगर क्रांति न हुई होती तो, हमारे फौजी मिशन के सेक्टरों नौजवान बालीव्यर होते, आर्म्स शक्ति पास न किया जाता, हममें से बहुत से फौज में कप्तान और कर्नल और जनरल होते और हमने सरकार से कहा होता- अपने यूरोपीय अफसरों और ब्रिटिश सिपाहियों को तत्काल मत कीजिए। देखिए हम अकेले सरहद से आगे बढ़ेंगे और हिसारों को व्यावहारिक सत्तक देंगे कि आगे कैसे बढ़ा जाता है और कैसे हटा जाता है।¹

इस तरह सर सेयद और उनके समर्थक और अंग्रेज समर्थक एवं संप्रदाय बांटी थे। वे अंग्रेजों को हटा रखकर अधिक से अधिक सुविधाएँ और लाभ होने के लिए प्रयत्नशील थे। उनके इन्हीं कारनामों के लिए उन्हें "सर" की उपाधि पक्की गई थी।

अंग्रेज की उदार और ब्रिटिश संसद परस्त नीतियों के कारण उत्तमों से एक बहुत बड़ा वर्ग "गरम हल" के नाम से जिन्हें "राष्ट्रवादी"

1- एच। मुहम्मद खान: राइटिंग्स ऐंड स्पीच आफ सर सेयद अहमद खान,
1972- पृष्ठ- 100

माना जाता है अलग हो गया । लाल लाजपत राय इस ग्रुप के अगुआ बने उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा--

"अंग्रेज भीख मांगने से जितनी घृणा करता है उससे ज्यादा किसी अन्य बात से नहीं । मैं समझता हूँ कि भिक्षुग्रा घृणा का ही पात्र है । अतः अंग्रेजों को यह दिखाना हमारा कर्तव्य है कि हम इतना समझने लगे हैं कि हम सब भिक्षारी नहीं हैं और हम ऐसे साम्राज्य की प्रजा हैं जिसमें लोउ उस स्थिति प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं जो प्राकृतिक नियम के अनुसार उनका अधिकार है ।"

इस तरह कांग्रेस के अन्दर ही स्वाभाविकियों का ऐसा ग्रुप तैयार हो गया जो अंग्रेजों को अब अधिक दिन एक पदार्थित नहीं कर सकता था । इसका केन्द्र संजाल था यद्यपि इन पर शासन द्वारा तुर्मा, सजा आदि की गई फिर भी वे जो छुट्टी के लिए उदारवाधियों की तरह तैयार नहीं हुए बाल गंगाधर तिलक का मराठी पत्र "केसरी" और लाला लाजपत राय का अंग्रेजी दैनिक "पंजाबी" अपने लेखों से जनता में धेतना का संचार करने लगे ।

सन् 1915 में गांधी जी ने कांग्रेस में प्रवेश किया । इस उपर्युक्त समय प्रथम विश्व युद्ध चल रहा था । अंग्रेज काफी संकट में थे । यहाँ के आन्दोलनकारियों ने भी उन्हें काफी काफी तंग कर रखा था । इस समय

उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की - ज़रूरत थी जो कि उन्हें सहायता करे भारत के जन आन्दोलनों को शान्त रहे । संयोग से राजनीतिक घटना पर गांधी जी का उद्भव ऐसा ही हुआ । उन्होंने अंग्रेजों की इस युद्ध में भर-पूर सहायता की । उन्हें ओज्ज्वल सहायुधता के आधार पर यह लालच था कि युद्ध समाप्त होने पर उन्हें स्वराज्य मिल जायेगा । अतः उन्होंने भी अपनी बंधावारी अंग्रेजों के लिए प्रस्तुत की ---

"बिना किसी शर्त के और पूरे हृदय से अंग्रेजी सरकार से [लड़ाई जीतने में] सहयोग करना हमें जितना शीघ्र अपने लक्ष्य के समीप पहुँचा देगा उतना अन्य कोई उपाय नहीं" ----- इसे मैं एक सम्माननीय महत्त्वपूर्ण मानता हूँ कि हम साम्राज्य के लिए लड़कर अपने देश की स्वाधीनता प्राप्त करें ----- साम्राज्य की सहायता न करना राष्ट्रीय आत्म हत्या के समान है ।¹

परन्तु 1918 में युद्ध के बाद कश्चित्तियों को इस सेवा के बदले में करोड़ों का र्ज और जालियानवाला बाग का हत्याकांड मिला जिसने समूचे विश्व को खला दिया । विश्व युद्ध पर हुए छर्चे से अंग्रेजों की भेद नीयति साफ़ झलकी है ---

1 - एन्ड्र विधा वाचस्पति: भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास
पृष्ठ- 146-147

"ब्रिटेन जो वी गई इन धेतों और फौज पर किए इतने अधिक
 खर्च का नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तान पर कर्ज इयोडे से ज्यादा हो
 गया और 1923 तक लगभग दूना हो गया । इंडियन लेजिस्लेटिव असेम्बली
 [केन्द्रीय विधान सभा] में वित्त मंत्री सर जेसल ब्रैकेट के वक्तव्य के
 अनुसार यह कर्ज, जो 31 मार्च 1914 को ५1 करोड़ रुपए था, बढ़कर
 31 मार्च 1923 को 781 करोड़ रुपए हो गया ।¹

यह था साम्राज्यवादियों का तोड़फा जोरक वक्यीश के रूप में
 गांधी और उनके अनुयायियों को मिला था । अतः कांग्रेस अभी तक
 देश को सही रास्ते पर ले जाने में पूरी तरह असफल रही यह सदैव अंग्रेजों
 के इशारे पर नाचने वाली संस्था ही बनकर काम कर रही थी ---

"जब सारी दुनिया में क्रान्ति की लहर फैली हुई थी और परा-
 धीन देशों की जनता आगे बढ़कर साम्राज्यी हुंटरों पर चार कर रही थी,
 भारतीय जनता भी राष्ट्रीय मुक्ति की क्रान्ति का रास्ता अपना रही
 थी । उसे एक क्रान्तिकारी नेतृत्व की आवश्यकता थी, उसे सेक्रेट जैसे
 एक क्रान्तिकारी नेता की जरूरत थी गांधी स्पष्ट कांग्रेस के नेता ऐसा
 नेतृत्व देने में पूरी तरह असफल रहे । अपने व्यवहार से उन्होंने दिखा
 दिया कि वे क्रान्तिकारी नहीं बल्कि सुधारवादी हैं ।²

1- अयोध्या सिंह: भारत का मुक्ति संग्राम-पृ०- 365

2- वही: पृ०- ५५

अतः कांग्रेस प्रारंभ से लेकर अन्त तक समझौता परस्तर नेतृत्व में हल चुल पन और अवसरवादी धालों के कारण देश में कोई सम्मानजनक कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं कर रही थी । इसकी ही प्रतिक्रिया स्वरूप देश में स्वातंत्र्य क्रान्तिकारी स्थिति जो पैदा करने वाले शक्त सिंह, धर्म शेर जैसे क्रान्तिकारी उभरकर सामने आने लगे । दूसरी ओर किसान सभा और मजदूर यूनियन अपने अपने क्षेत्रों में अग्रियों के पिदतु और बलात पूँजीपति और जमींदार के खिलाफ संघर्ष कर रहे थे ।

1935 तक आते आते कांग्रेस पूरी तरह जमींदारों और पूँजीपतियों के कब्जे में आ गई थी । अतः यह वर्ग अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए आन्दोलन को सदैव अपने हंग से चला रहा था । इससे उसके दो कार्य पूरे होते थे । एक तो स्वयं उसकी सामाजिक स्थिति तो सुदृढ़ थी ही दूसरे राजनीतिक मंच पर वह इसलिए आना चाहता था कि स्वतंत्रता के बाद भी उसका बड़ा शेयर उसे मिले उसकी शान और संपत्ति हर स्थिति में सुरक्षित बनी रहे ।

परन्तु स्वातंत्र्य क्रान्तिकारियों ने बलिदान दिया, फाँसी दी, काला पानी सडा परन्तु स्वार्थान्ध होकर वे राष्ट्रीय मंच पर नहीं आए । सट्टे माइने में 1947 की स्वतंत्रता उन्हीं के बलिदानों का परिणाम थी ।

लम्बे जन संघर्षों और जनान्धोलनों के बाद 1947 में 15 अगस्त के दिन भारत को स्वतंत्रता मिली । परन्तु यह स्वतंत्रता दूसरे ही प्रकार से अर्जित की गई —

लेकिन देश का कुर्बानि कि राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व सुधारवादी और समझोता परस्त कर्जुआर्क के नेताओं के हाथ में था । उन्होंने क्रान्ति का रास्ता अपने के ह्याय उसकी पीठ में छुपी भोंके का, क्रान्ति का श्व दिखाकर साम्राज्यवाधियों से लोखेबाणी और समझोते का रास्ता अपनाया जिसका परिणाम देश का विभाजन हुआ । देश को एक लेनिन की, एक माओ की और मणवूर का की एक शक्तिशाली पार्टी की जरूरत थी लेकिन यह अभाव दूर न किया जा सका । हिन्दुस्तान में कम्युनिस्ट पार्टी थी लेकिन कांग्रेस और लीग के मुकाबले उसकी ताकत कम थी ————— एत यह हुआ कि क्रान्ति का नेतृत्व करने की क्षमता अपने में पैदा करने के सबसे बड़ कांग्रेस और लीग का कुमछला कर रह गई । ॥

देश को आजादी मिलने के तुरन्त बाद प्रीतित जवाहर लाल नेहरू ने घोषणा की ---

“आधी रात की इस घड़ी में जब दुनिया तो रही है, भारत जगदर जीवन और स्वतंत्रता प्राप्त करेगा एक क्षण ऐसा आता है, जो

इतिहास में बहुत ही कम आता है जब हम पुराने युग से नए युग में कदम रखते हैं जब एक युग उत्पन्न होता है जब एक राष्ट्र की अस्मिता से दली आत्मा बोल उठती है । यह बहुत ही अच्छी बात है कि इस पश्चिम क्षण में हम भारत और उसकी जनता की सेवा और उससे भी बढ़कर मानवता की सेवा करने की सौगंध लेते हैं ।^१

इस तरह भारत आजाद हुआ । इस मिली हुई आजादी और उसके विस्तेषारों पर अधोध्या सिंह की टिप्पणी सारगर्भित है --

“इस तरह भारत की क्रान्ति का एक अध्याय अर्थात् साम्राज्यवाद के विरुद्ध ज्ञा के सब वर्गों के संयुक्त मोर्चे का अध्याय समाप्त हो गया । ज़ुल्फ़ा कर्न ने सत्ताह्व होकर भारतीय क्रान्ति को आगे बढ़ाने की जगह उसकी पीठ में छुरी भोंकने का रास्ता अपनाया । ----- यह रास्ता अपनाकर ज़ुल्फ़ा कर्न ने साम्राज्यवादी पूँजी की रक्षा और उसके साथ साधेदारी का सामंजस्य- जमींदार कर्न के साथ सझौते और उससे राजसत्ता में छोटा विस्तेषार खाने का रास्ता अपनाया । उसने राज्य सत्ता के यंत्र का इस्तेमाल मजदूरों, किसानों, मध्यकर्म आदि क्रान्ति की शक्तियों को ध्वस्त करने में किया ।^२

इस तरह लंदी प्रेरणा और संघर्षों के परिणाम स्वरूप आजादी प्राप्त हुई । और भारतीय जनता को उससे आशा लंबी कि यह उसकी

१ - आर०सी० मजूमदार: इस्ट्री अफ़ दि ग्रीडम मूवमेंट इन इंडिया-
भा०-३, पृ०- ८१०

सरकार है उसके देश और देशवासियों की सरकार है । अब कमन और अत्याचार का अध्याय समाप्त होकर शान्ति और प्रगति का श्रीगणेश वह और उसके सहयोगी करेंगे ।

परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह कांग्रेस देश में सबसे बड़ी और स्वतंत्रता से अब तक की अवधि में सबसे अधिक समय सत्ता में रही है । लेकिन आज तक यह स्वतंत्रता के 35 वर्ष बीत जाने के बावजूद भी देश को न तो कोई व्यवस्थित कार्यक्रम दे सकी है और न उसकी प्रगति के कोई ठोस कदम ही उठा सकी है । चुनाव और जनतंत्र के नाम पर हर पाँचवें वर्ष बड़े जोर शोर का हल्ला होता है । गांधी - नेहरू के नाम अपने काले कारनामे छिपाने के लिए खूब उछाले जाते हैं परन्तु चुनाव के जीत जाने के बाद वातानुकूलित कमरों में जाकर उन्हें नींद आने लगती है घायले और कार्यक्रम एवं विकास की बातें उन्हें याद नहीं आती ।

छड़े-छड़े मूनीपति और जमींदार सत्र सार्वमत आज इस राष्ट्रीय कल से अपना रिश्ता जोड़े हुए हैं । प्रत्येक मंत्री उनके साथ बैठता है अथवा उनकी रिश्तेदार अथवा परिवार का सदस्य होता है । उसी की छत्रछाया में लोक मार्केट और तस्करी का धन्धा ^{रखे जा रहे हैं 1950 से अब तक के} राजनीतिक ^{क्षेत्र} पर कांग्रेस की इन्हीं कमजोरियों और सत्ता परस्ती के कारण कई बार विभाजन हो चुका है जो कि 1950 से अब तक की वास्तान है । व्यक्तिगत स्वार्थों के टकराव ने देश में अराजकता की स्थिति उत्पन्न कर दी है ।

सुधारों के नाम पर मंत्री और सांसद, विधायक मात्र अपने परिवार का ध्यान करते हैं ऊँची ऊँची नौकरियों और लाभ के पदों पर ~~अन्य व्यक्तियों~~ योग्य और अयोग्य का ध्यान न रखकर ^{अधिकार और} रिश्तेदारी का सबसे अधिक ध्यान रखा जाता है। सरकार की ओर से मिलने वाली अकूत धनराशि केवल कागजों पर ही खर्च की जाती है और पूर्ण विकास दिखाकर उद्घाटन और स्थापन के नाटक पूरे किये जा रहे हैं।

किसानों और मजदूरों को सरकारी तौर पर मिलने वाली कृषि सहायताओं को बड़ा भूस्वामी दृष्ट कर अपने उद्योग और लाभ के कामों में ले रहा है। कृषि विकास के नाम पर बी० डी० ओ०, ए० डी० ओ० जैसे ब्लाक स्तर के अधिकारी क्षेत्रीय राजनीति के शिकारी में फँसकर नेता गिरी करने लगते हैं। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो शासक दल उन्हें स्थायी न कर स्थानांतरित अथवा रिबर्ट कर उनकी पदोन्नति में रुकावट डाल देगा।

छरिणों की रचनामार्ग करने वाली सरकार आज भी उनके आरक्षित पदों को पूरा नहीं कर पाई है। किसी, किसी विभाग में तो उनकी संख्या नहीं के बराबर है। गवि और कस्बों में वे आज भी द्वितीय श्रेणी के नागरिक की तरह जीवन जी रहे हैं।

युवा संगठनों ने समाज में शासन से चिपट रहते ही लम्बाजनाक स्थिति पैदा की है। आज देश में कृत्रिमी शासन है। ये उससे या उससे

संघीय संघन के सदस्य होने के नाते सफेद कुर्ता पाजामा हैं हर समय आँखों पर चश्मा लगाए अनैतिक कार्यों में संलग्न हैं ।

अतः आजादी के बाद भी सही नेतृत्व न होने के कारण कृषि क्षेत्र को वस्तुनिष्ठ प्रशासन देने में असमर्थ रही है । अशिक्षित जनता उसे गायी, नेहरू के बहाव में आकर घुन तो देती है परन्तु उसके दुख दर्द की यह पार्टी कभी भी फिक्र नहीं करती । बहुत सी समस्याएँ हैं, इस तरह की घिसी मिटी बातों से मात्र जनता का मन बहलाव किया जाता है । उसकी मूल भूत कठिनाई को पहचानते हुए भी अनदेखा करती रही है ।

जमींदारी उन्मूलन और उसका ग्रामीण जीवन पर प्रभाव

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय नेताओं ने देश के विकास के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम निर्धारित किए जिसमें कृषि को सर्वोत्तम प्राथमता दी गई । किसानों और मजदूरों को सामंती और जमींदारों के शोषण से मुक्त करने के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत ही "जमींदारी उन्मूलन" इसी आशय के साथ किया गया । यह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कृषक और मजदूर की जिन्दगी को सुधारने का पहला शासकीय प्रयास था । जैसा कि डॉ० पूरन चंद जोशी ने कहा है —

“भारतीय कृषि और भूमि व्यवस्था के पुनर्र्धार की दृष्टि में लगान उपवीची जमींदार और जागीरदार वर्ग के अधिकारों और आर्थिक स्थिति को किसी हद तक सीमित कराकर कृषि विकास की पूर्व स्थितियों पैदा की ।”¹

वास्तव में किसानों को जमींदारों के संयुक्त से निकालने एवं उनकी आर्थिक स्थिति को अच्छा बनाने की दिशा में यह सरकार का राजनीतिक प्रयास था--

“जमींदारी उन्मूलन का एक आधार आर्थिक कारण ही नहीं राजनीतिक भी था और वह था जमींदार और जनता के बीच संघर्ष से पैदा आया संघर्ष उसी के परिणामस्वरूप जमींदारी उन्मूलन हुआ ।”²

संघर्षों से पैदा आ रही इस परंपरा का अंत सैद्धान्तिक तौर पर खड़ी जल्दी हो गया परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यह आज भी तनाव का कारण बना हुआ है । अंग्रेजों द्वारा पैदा किया गया यह वर्ग उनके साथ रखकर शोषण, अन्याय और वैशमन्य की तमाम हरकतों से परिचित था । उसने और उसके उत्तराधिकारियों ने अपनी तमाम समस्त शोषण और वदनीयता को समझने में ही लगाई थी । अतः इस वर्ग की नस नस में कटिलता का छून खोड़ रहा था ।

1- डॉ० पूरन सिंह जोशी : भारतीय ग्राम सांस्थानिक परिवर्तन और आर्थिक विकास- 1966 पृ०- 44

2- डॉ० रामबिहारी सिंह तोंवर : ग्रामीण समाज शास्त्र- 413

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में इस कर्म की वही महत्वपूर्ण भूमिका महज इसीलिए थी कि वह सामाजिक सम्मान के साथ-साथ राजनीतिक सम्मान भी अर्जित करे। इसीलिए इसने प्रान्तिकारी या गरम कतीय अथवा किसानों और मजदूरों के किले की रक्षण का सहयोग नहीं किया था। उसने सहयोग किया था कांग्रेस का। पूरे जोर से जेल जाने, मार खाने, सजा भुगतने, नजर बन्द रहने के विवेकी युक्त उसने महज इसीलिए सहन किया था कि स्वतंत्रता के बाद की राजनीतिक स्थिति में वह साक्षीदार होगा उसके कर्णिय स्वार्थों का हित साधन होगा। और यही नहीं वह अपने शिक्षित होने के बलबूते पर शासकीयवस्तुधेय भी करेगा। और वास्तव में हुआ भी यही। उसने आजादी के बाद अपने और अपने कर्म का ही भला किया आम जनता के कुछ वर्ग की आवाज उसने कभी भी नहीं सुनी।

“जमींदारी उन्मूलन” यद्यपि उनके हाथ से जाता हुआ स्वामित्व था फिर भी उन्होंने उसमें तीन पाँच टांगकर, बल अपन संसिक्त के नाम पर, पाग, कपिधे, तागाब, बरागाब आदि की आद में हजारों रूब की जमीन अपने पालिका नापालिका परिवारी सदस्यों के नाम लिखाकर उसकी तो सुरक्षा की ही साथ में सरकार की ओर से सुवाच्यो के रूप में [प्रिवीयर्स] जैसी भारी राशि वार्षिक रेंट के रूप में लावूनन पास कराती।

इस शासकीय संरक्षण एवं अपने अधिकार के माध्यम से उसने पुनः धेरात में अपने दरबार कायम किया है। छेती जो उद्योग के रूप में

इस्तेमाल कर उत्पादन के साधनों पर फिर से कब्जा करके उसने बड़े भूस्वामी और धनीपति की मिली जुली भूमिका का प्रदर्शन किया है। डेनियल थार्नर ने इस सत्य को अपनी पुस्तक में स्पष्ट करते हुए लिखा है ---

“जिझार में जमींदारी उन्मूलन के बाद भी पर्येच सौ या सात सौ ही नहीं एक हजार एकड़ की जमींदारियों साधारणतः है। इस रूप में अब भी जमींदारों के पास काफी जमीन है।”

जमींदारी उन्मूलन से भारत के गाँवों में एक शुद्ध वातावरण पैदा कर दिया। यह व्यवस्था हुई तो आम जनता को सक्षम बनाने के लिए भी लेकिन इसका दुष्परिणाम भी सामने आया। सरकार में उन्हीं जमींदारों के नाते रिश्तेदार थे, सरकारी कार्यालयों और उच्च-उच्च आदरों पर इन्हीं के संबंधी थे। अतः कानून के छोटे से छेद में हाथी निकालने की बात इन्हीं लोगों ने सिद्ध कर दिखाई।

जमींदारी उन्मूलन में सबसे पहले ~~हजार~~ जिझार प्रान्त की सरकार ने 1950 से लागू कर दिया था और विशेष बिल के माध्यम से जमींदारों की कुल आय की उँस फीस 20 गुनी रख तक उन्हें मुदावरे के रूप में लेने का वचन भी सरकार ने अपने इन हुक्मशुओं को दिया।

उत्तर प्रदेश सरकार ने जमींदारी प्रथा समाप्त करने के लिए व्यापक क़यम उठाए । परन्तु पालाक जमींदारों ने इसे कानूनी कारण लेकर काफी दिनों तक न्यायालयों में पैसों के बल पर अपनी ठोकरें हुर चलाते रहे और जानबूझ कर आनाकानी करते हुए चलते समय गोप्य और जमीन बेचने की प्रक्रिया शुरू कर दी । इसके से जमीन कम कीमत में बेचकर अन्त में वे रकम बटोरते रहे जो लगे लगे हाथ वाला सिद्धान्त अन्त में काम आ रहा था । परन्तु न्यायालय से अपील खारिज होती गई और उनकी अमलदारी उठती गई । परन्तु वे चोरी छिपे आण की नाम बदल बदल कर लड़ी काशत वाले किसान बने हुए हैं --

“उत्तर प्रदेश में 58 प्रतिशत भूमि धर पुराने जमींदार हैं ।”

“मध्य प्रदेश में झणारेदारी राजस्थान में जागीरदारी और विस्ते-दारी जैसी भूमि व्यवस्था संबंधी प्रथाएँ किसानों से लगान वसूलने के लिए थीं । स्वतंत्रता के प्रथम आलोक में उन्हें भी समाप्त कर दिया गया और एच।पी. उत्तर प्रदेश जैसे भूमिधर किसानों की तरफ़ जातेदार - किसान होती के तट्टे मालिक बने । इस तरह जम्मू और कश्मीर प्रान्त को छोड़कर सभी राज्यों में यह प्रथा उठा ली गई । जम्मू कश्मीर में ढाईदारी प्रथा थी और वे ढाईदार आजादी में गिरगिट की तरह रंग बदलकर भारत अधिकृत कश्मीर में कगिती हो गए और सत्ता का

अस्पूर प्रयोग करते हुए उन्होंने अपनी इस परंपरावादी व्यवस्था को बनाए रखा और आज भी हिन्दुस्तान-पाकिस्तान वाली राजनीति पर उनकी चैन से झीं बण रही है। इस व्यवस्था को देखते हुए बलगीत सिंह ने स्पष्ट कहा था---

“भूमि सुधारों से स्पष्टतः कृषि व्यवस्था में कोई संस्थागत परिवर्तन नहीं हुआ।”¹

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि जमींदार सैकड़ों वर्षों से बिना ताज के बाबशाह थे। उन्होंने अपनी जमींदारी के हमल में किसानों का जमकर शोषण किया था वे आसानी से अपनी प्रभुत्व को नहीं छोड़ सकते थे। अधिकार और हकूमत की लालसा मरते क्षम तक साथ थी अतः पहले तो उन्होंने जमींदारी प्रथा उठने की भनक सुनते ही फाजिल जमीन बेचकर काफी संपत्ति इकट्ठी कर ली थी दूसरे उसे मुआवजे² में मिलने वाली राशि से उसने खेती का औद्योगीकरण प्रारंभ कर दिया जिससे उसके यहाँ प्रत्यक्ष न सही परोक्ष रूप से लक्ष्मी निवास बन गया।

“जमींदारी उन्मूलन” से अच्छाई कम बुराई ज्यादा सामने आई है। क्योंकि जमींदार ने फाजिल जमीन को खाते पीते नवधनइय को देया था। और शक्ति और पुराने रीबदाब से किसान को छरा धमका कर उसने उससे जमीन की बेदखली ले ली थी इसीलिए इसने गाँव में रुक नए

1- बलगीत सिंह: नैक्स्ट स्टेप इन विलेज डेवेलप-पृ 0-75

बड़े भूस्वामी वर्ग जो पैदा किया जो कि देहाती जीवन में सबसे अधिक घातक सिद्ध हो रहा है —

देहात में एक ऐसे वर्ग का विकास हुआ है जिसका परित्र कई कृषिद्वयों से बना है । इस नए उभरे हुए वर्ग में भूस्वामियों और पूँजी-पति दोनों के सम्मिलित गुण कृषिगोचर होते हैं । जिसमें पुराने जमींदार की कुटिलता और पूँजीपति वर्ग की चतुराई और निर्ममता का सम्मिश्रण है ।¹

अतः देहात में अब इस आगे पीछे की दौड़ में तनाव की स्थिति बन गई है । बड़े किसानों का छोटे किसानों और मजदूरों से सीधा संघर्ष एक नयी अलगाव की मानसिकता को बनाता जा रहा है । "भैं और भैरा" के बीच गाँव का दायरा अब सिमट कर "घोपाल" के रूप में रह गया है । मजदूर दिन पर दिन मँहगाई और कर्ज में डूब रहा है वृत्तरे का भूस्वामी और जमींदार शिक्षित और धनवान होने के कारण शासन द्वारा प्रवृत्त कृषि सुधार के नाम पर तमाम सुविधाएँ, छूट और रियायतें लेकर दिन पर दिन संपन्न होता जा रहा है ।

चकबन्दी और ग्रामीण विकास योजनाएँ

सरकार ने खेती की दशा सुधारने के लिए राज्य, जिला और ब्लॉक स्तर के कार्यों को लागू किया "सर्वत्र कृषि" जैसे कार्यक्रमों में

1 - ~~सर्वत्र कृषि~~ ग्रंथ: ~~भारत सरकार द्वारा प्रकाशित~~ ~~ग्रामीण विकास~~ - पृष्ठ- 78

डॉ० कुंवर पाल सिंह : हिन्दी उन्मुख-सामाजिक-चेतना - पृ० सं० 155

खेती की हालत सुधारने के लिए ही अपनाए गए हैं। पकखन्दी इन्हीं में से एक कार्यक्रम है। पकखन्दी को लागू करने का उद्देश्य किसान के बिखरे हुए खेतों को एक जगह करना, उत्पादक और अनुत्पादक जमीन को एकत्र आकर सेंद्र बन्दी से विभाजित करना था। यह किसानों के लिए बड़ी लाभकर कार्य हुआ। क्योंकि इससे किसान का प्रम और समय की बचत होती थी दूसरे यह खेती पाड़ी की बिखरे हुए खेत होने के कारण देखभाल भी नहीं कर पाता था। दूसरे यह खेती के विखराव के कारण ही सिंचाई आदि के साधनों का समुचित उपयोग नहीं कर पाता था। इन्हीं कारणों को ध्यान में रखकर इस कार्यक्रम को प्रत्येक प्रान्त में लागू किया गया। परन्तु यह कार्यक्रम ग्राम प्रधानों, पटवारियों और सी० ओ० आदि के झूठे आचरणों और लालची वृत्ति के कारण सफल नहीं हो पा रहा है। रिश्वत लेकर भले-खुरे पक काटना, अच्छी जमीन को बड़े किसानों और खराब जमीन को गरीबों को देना, घूस लेकर जमीन की मालिकता के नाम पर किसानों को छाना आदि झूठे बात-बात के कारण यह कृषि विकास कार्य उपयोगी होते हुए भी नहीं चल पा रहा है। इस कार्यक्रम में सरकार का दुरुपयोग रक्खा, अशिक्षित किसानों का नदी, झील, तालाब और पैठ पीछे से अनावश्यक भार एक साथ ही साथक है। कृषि विकास योजनाओं के अंतर्गत सरकार ने अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में हरित प्रान्त, सड़करी खेती आदि कार्यक्रम लागू किए हैं।

'हरित क्रान्ति' के अन्तर्गत नए-नए संकर बीजों के प्रयोग, रासायनिक खाद और कीटनाशकों के साधनों में विद्युत नलकूपों की व्यवस्था से देश की खेती समस्या को सुलझाने का प्रयास किया गया। उन्नतशील बीज, उन्नतशील वृद्धि यंत्र, ट्रैक्टर, मेस्टन हल, प्रेसर आदि के माध्यम से पत्र और समय की बचत करके अधिक पैदावार लेने की योजना रही है।

सहकारी खेती के लिए कॉपरेटिव सौसाइटी और कॉपरेटिव सीड स्टोर जैसे सहकारी प्राविधान सरकार की ओर से थे जिनसे आपस में मिल जुलकर सहयोग से खेती करना था।

परन्तु यह सब कार्यक्रम मात्र दिखाने के रहे। इन सब कार्यक्रमों से एक मूँगीवादी व्यवस्था को ही बढ़ावा मिलता है। परन्तु भारत में ग्रामीण जीवन में गरीब किसान का शोषण गिने छुने लोग करते थे-परन्तु आजकाद भारत में उसे सुबह घर की छतलीज से निकल कर खाम को लौटते पदत तक न जाने कितने समझौते कितनी गिड़ गिड़ाहट और कितने धोले धुँरे शब्द सुनने पड़ते हैं इसे स्वयं वह गरीब श्री अपनी गरीबी के कारण सहता सुनता अनेकरी करता है। वहीं कभी कर्ज से मुक्ति के लिए गाँव से शहर और कल कारखानों में आकर शरण लेता है। और वापस लौटकर जब वह तीन त्योंहारों पर घर जाता है तो फिर वही महान्न सुवर्ण और वही भूस्वामी घेर कर बैठा रहता है। उससे आज फिर कर्ज में बेगार लेने की प्रवृत्ति पनपती जा रही है।

इस तरह नागार्जुन ने इस समूचे राष्ट्रीय फ़्लक को अपने उपन्यासों की कथावस्तु में लिया है । अंग्रेजी शासन, जमींदारी व्यवस्था गरीब, किसान और मजदूर का शोषण, आजादी के लिए लड़े जाने वाले आन्दोलन और उनकी विभिन्न भूमिकाएँ तथा आजादी के बाद बदलते हुए भारत के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्वरूप को कथा में संगोकर पाठक को अपने आँपलक परियेक से छुड़ने का कारण स्पष्ट किया है जिसे अगले अधीर्षक में स्पष्ट किया है —

आँपलक जीकन से सोहोखय त्सुक्तता

औद्योगिक क्रान्ति के बाद भारत के कृषि और कुटीर उद्योग धन्यों के किनाश से ईस्ट इंडिया कंपनी की शोषण की नीति से भारतीय ग्रामीण जीवन पर गहरा आघात लगा । इसी की प्रतिक्रिया में देहाती समुदाय ने स्वतंत्रता की लड़ाई में बलिदानी भूमिका निभाई थी । परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उसके सारे समने बिखर गए । उसके विदेशी ^{शासन} की गुलामी तो हूँटी परन्तु देश वालों ने उसे फिर से गुलाम बनाना शुरू कर दिया । स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान द्वारा प्रवृत्त अधिकार उसके लिए सफ़ेद छापी की तरह साबित हुए । पंचवर्षीय योजनाओं से मिलने वाले तमाम लाभ उसके क्षेत्र के छोटे-छोटे बाबू भाई ही लेते रहे हैं । जमींदारी तो दूर गई परन्तु उसके घर की जमीन उस किसान को नहीं मिली जो

वर्षों से गुलाम की तरह सून पसीना एक करता हुआ दिन रात की पटव्याएँ
 किस बिना मेहनत में लगा रहा । द्वैतीय स्म० एल० ए० और स्म० पी०
 उसके वर्ग की समस्याएँ विधान भवन और संसद में न रखकर उन सेठों और
 पूँजीपतियों का धना करने में लगा गए जिनसे उन्हें हजारों के घन्टों चुनाव
 के समय आपसी लेन देन के समझौते में लिए थे । बेचारा किसान मजदूर
 इस पैसे के खेल में मात्र लम्बाशा बनकर रह गए उनकी कुछ छोटानी को
 किसी ने भी नहीं छुना ।

अतः इस पूरे बड़े पैमाने पर हुए व्यापक परिवर्तन का प्रभाव ग्रामीण
 जीवन पर पड़ा । गवि का किसान आज फिर अपनी वैयक्तिक अस्मिता
 के लिए संघर्ष के रास्ते पर आने लगा है । वह अपनी सृज्यत आत्मा और
 राजनीतिक एवं सामाजिक सम्मान के लिए फिर बलिदानी भूमिका निभा
 रहा है । इसी परिवर्तन को विभिन्न स्तरों पर स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी
 साहित्य में विशेष रूप से उपन्यास साहित्य में लिया गया है । ग्रामीण
 जीवन में होने वाले भूमि संबंधी, राजनीति संबंधी एवं समाज संबंधी
 परिवर्तनों को इन उपन्यासों ने अपनी कथावस्तु के रूप में सीधा सीधा
 ग्रहण किया है ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि हिन्दी साहित्य की आलो-
 चना का यह तुर्भाग्य रहा है कि वह लेखितवादी रही है । इन ग्रामीण
 जीवन संबंधी उपन्यासों पर उसकी कृपा आधिक उपन्यास कह कर हुई

और इनके मात्र शैली पक्ष को लेकर उनकी व्याख्या प्रस्तुत की जाती रही है। डॉ० हंसर पाल सिंह ने आलोचना रिपोर्ट की इस चौखटा बन्दी पर चिन्ता व्यक्त करते हुए लिखा है ---

“वास्तव में बदलती हुई ग्रामीण व्यवस्था पर लिखे गए उपन्यासों की “अधिपक्ष” उपन्यास कह कर उनका महत्व कम किया जाता रहा है। और इस वास्तविकता पर परवा डालने का प्रयास किया गया जिसका अध्ययन बहुत आवश्यक है। इन उपन्यासों ने देश की तीन चौथाई भाग में हो रहे गंभीर परिवर्तनों की ओर उपन्यास के पाठकों और आलोचकों का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया था परन्तु इन्हें किसी अंचल विशेष की परिस्थितियों और समस्याएँ कह कर नकार दिया गया।”

वास्तव में आज का छुट्टिकोप केवल विज्ञापन का शिकार हो रहा है। पत्राचार छुट्टिकोप के अभाव में सत्य को ओछे तर्कों से बचाने की सन्तती परंपरा रही है। परन्तु जागरूक लेखकों ने इस अधिपक्षता को सौदृश्य ग्रहण किया है उन्होंने अपनी छुट्टियों में इस बात की छुट्टि भी की है। उदाहरण के लिए कपीरघरनाथ रेणु के “मैला अधिपक्ष” उपन्यास की धूमिल में दिए गए वस्तुओं को देखा जा सकता है ---

“यह है ‘मेला अर्चल’ एक आंचलिक उपन्यास कथंचित है पूर्णिया।
पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है ----- इसके हिस्से के एक
छो गवि को पिछे गवियों का प्रतीक मानकर इस किताब का कथा क्षेत्र
जाया है । इन्हें फूल भी हैं फूल भी, धूस भी है गुलाब भी, कीचड़ भी
है छंदन भी, सुन्दरता भी है कुम्पता भी, मैं किसी से भी दामन बचाकर
निकल नहीं पाया ।”¹

डा० शिव प्रसाद सिंह ने अपने उपन्यास ‘अलग अलग पैतरणी’
में इसी ग्रामीण जीवन की परिभाषा उन्होंने खड़ी की जमीन से जोड़
कर दी है ----

“गवि कोई आक्री है कि उसका कुछ छोटा रहेगा अरे भाई यह
तो देखा है । कभी उड़ता है कभी गड़ता है । कभी हुरे दिन आते हैं
कभी अच्छे दिन आते हैं ।----- असली चीज तो धरती है -----
धरती ही सब कुछ होती है । विषम जात । उसके जिना आक्री का
गुणर नहीं ।”²

वास्तव में हिन्दी साहित्य का आंचलिक जीवन की ओर झुकाव
सोवक्षेय रहा है । कविता के क्षेत्र में भी यही प्रवृत्ति हमें तब तक स्पष्ट है
दिखाई देती है । ज्ञानपीठपुरस्कार विजेता की ‘मेला गाड़ी’ रामधारी सिंह

1 - कृष्णधरनाथ रेणु: मेला अर्चल-मुद्रांक- की भूमिका से ।

2 - डा० शिवप्रसाद सिंह: अलग अलग पैतरणी, 1967-मुद्रांक- 687

दिनकर की "वन फूलों की ओर" सुमित्रार्जुन धर्म की "ग्राम्या" आदि इसी सहज हुकाव का परिणाम है। डा० विष्णुचन्द्र स्नातक ने इसी सीद्देख्य अधिलक्षता पर साम्प्रदायिक हिन्दुस्तान में लिखा था—

"अधिलक्षित उपन्यास राष्ट्रीय भावना के ^{उपन्यास} हैं। उनके द्वारा विचार क्षेत्र, उनके धृष्टियों की चेतना का बोध होता है और समग्र रूप से एक व्यापक राष्ट्रीय भावना खड़ी होती है।"

इसलिए ग्रामीण संघर्ष की ओर रचनाकार नागार्जुन की यह पृष्ठान्तन यथायथ नहीं रही है इसके पीछे सकलम्बी ऐतिहासिक परंपरा है ऐसा कि हम पीछे लड़ चुके हैं। औद्योगिक क्रान्ति ने विश्व के कोने-कोने को हकथोर कर रख दिया था। भारत के ऊपर इसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा और यही नहीं औद्योगिक क्रान्ति को सफल बनाने में लटके माल की आपूर्ति करने में भारत विश्व में सबसे पहला देश था जिसने प्रचुर मात्रा में खनिज सहायों को दिया। अतः उन्होंने यहाँ से संसाधनों का महारस से अध्ययन कर उनको अपने उद्योगों में लाने का भरपूर प्रयत्न किया। इसके लिए यहाँ की राजनीतिक परिस्थितियों का साथ लेकर देश की अर्थ-व्यवस्था पर लक्ष्य कर लिया जिससे आत्म निर्भर गरीबों वाला देश चिखेजी छुपी और शासन का गुलाम बना। प्रसिद्ध साम्राज्यात्मक ए० आर० वेसाई ने एशियाई की इस पाल को सही रूप में प्रस्तुत करते हुए लिखा है —

1 - ए० आर० वेसाई: भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, 1977
पृ० सं०- 25

“भारत पर अँग्रेजों की राजनीतिक सत्ता का स्वतः इत्ना

अधिक महत्व नहीं मिलता कि इस बात का कि उन्होंने इस सत्ता का खास ढंग से इस्तेमाल किया। जिसका भारतीय समाज पर गंभीर आर्थिक प्रभाव पड़ा।”

इस तरह उन्होंने कुछ प्रधान क्षेत्रों भारत के गाँवों को नष्ट किया और लगभग षेढ़ सौ साल के भीतर किस प्रकार से देश खोखला कर दिया यह बात घटनाओं के रूप में इतिहास और राजनीति शास्त्र में देखने को मिलती है लेकिन प्रभावित रूप साहित्य के अंतर्गत विस्तार से देखा जा सकता है।

कहना न होगा कि आर्थिक उपन्यासों के विश्लेषण का यह आग्रह निरंतर बना रहा है कि उन्हें भारतीय भूमि से भूमि की समस्याओं से जोड़कर विश्लेषित किया जाय। परन्तु इस दिशा में सिवाय बने हुए फार्मूले जोड़ने के और कुछ नहीं हुआ। माखनलाल घुर्मुखी की गाँव जीवन से संयुक्तता छड़ी ही आकर्षक है --

“कला गाँवों में पनपती है, शहरों में नहीं। हम पक्वान ~~कला~~ ठाँवर रसोइए पर प्रसन्न होते हैं--- काश किसान पर रीझते तो कितना अच्छा होता। जिस समय तिर पर से पानी बहता हो, गले में साँप

लौने न थे रखा हों, एदन पर चिथड़ा लिमटा हों, पास में पार्श्वती
पर्यंत पुत्री लड़ी पसीना पोंछ रही हों, जब उस गरीब मस्तक पर सुले
तभी उस कला की सट्टी पूजा है ----- शीकर पूजा है । वह
विस्तार ही हमारा शीकर है । सपि टैक्स है- चिथड़े गरीबी है! -----

इस तरह आंचलिक उपन्यास अपने अंदर विशिष्ट अंचल की उन
तमाम आस्थाओं और विश्वासों को समेटता है जिससे नवीनता का
पुनः पुनः परिचय मिलता रहे । BTO केन का तर्क इसी लक्ष्य
आंचलिकता को और अधिक रचनाकारों के संदर्भ में पुष्ट करता है ---

“यह आंचलिक संस्पर्श हम वहीं देखते हैं जहाँ लेखक का मुख्य
उद्देश्य कुछ दूसरा ही होता है और उसकी पूर्ति के लिए वह आंचलिक
विशिष्टताओं का चित्रण करता है ----- प्रधान उद्देश्य नवीन
सामाजिक पृष्ठभूमि में उठते उभरते हुए नए मानव, आर्थिक सामाजिक
संदर्भ का जीवन का चित्रण करना है । ऐसे उपन्यासों की सृष्टि का प्रेय
नागार्जुन और रेणु जैसे लेखकों को दिया जाना चाहिए ।”²

वास्तव में नागार्जुन ने अपने सभी उपन्यासों में गवि में छट्ठे वाली
तमाम सामाजिक एवं राजनीतिक घटनाओं को लड़े विस्तार से घटा
इसलिए लिखा है कि उनका ही अंतराष्ट्रीय महत्व है । आंचलिकता उनके
लिए एक प्रकार का माध्यम न होकर एक विशिष्ट उद्देश्य की पूरक है ।
नागार्जुन ने अपने स्मृति लेखन में इस बात का स्पष्ट निर्धार दिया है ।

1 - वादनाथ चतुर्वेदी: नया जीवन मार्च 1955 पृ०- 49

2 - BTO केन: आधुनिक हिंदी का साहित्य और चित्रण-पृ०-189

द्वितीय अध्याय

नागार्जुन की जीवन यात्रा और वैचारिक संकल्प

नागार्जुन की जीवन यात्रा और वैचारिक विकास

स्वतंत्रता के बाद के लेखकों कवियों में नागार्जुन प्रथम शीर्षक के कवि-लेखक हैं। नागार्जुन ने अपने समूचे लेखन में चाहे वह कविता हो अथवा उपन्यास चाहे वह भेषिली रचना हो या संस्कृत या हिन्दी, आम आदमी के सुख दुःख, वैनिक-पीड़ा और कष्ट क्रन्दन से उभरते हुए आक्रोश को अभिव्यक्त किया है। उनका समूचा चिन्तन जगत उन लाखों लाख मूक थैहरों से भरा हुआ है जो गुलान रखते हुए भी हेतुवान हैं शक्ति क्षीण होते हुए भी शक्तिहीन हैं, लज्जित होते हुए भी अत्यंत संयुक्त हैं तथा दिन रात कराते हुए भी भूँटे और ली रह कर जिन्दगी पूरी कर रहे हैं।

नागार्जुन का साक्षात्कार इस तरह के समाज से यकायक नहीं हुआ। उनके जीवन के पड़ावों, मोड़ों, चौरस्त्यों चौराहों और धूल भरे गली गलियारों में प्रविष्ट होने पर ही यह उन्हें हासिल हुआ है जिसे उन्होंने अपनी राज्य शक्ति के माध्यम से साहित्यकार के रूप में जन-मानस के निकट रखा है। उनके लेखन के प्रारंभ से लेकर अब तक के तथ्यात्मक वैचारिक धरातल उनके मन से लेकर अब तक के अनुभवों से परिचित रूप हैं।

जन्म:- नागार्जुन की जन्म तिथि का ठीक-ठीक पता स्वयं नागार्जुन को श्री मालूम नहीं है क्योंकि माँ के बहुत पहले ही स्वर्गवासी होने तथा पिता की धनहीनता के कारण ही उनके जीवन तक को छतरे में छान दिया था।

नागार्जुन का जन्म तिथि के बारे में भी कुछ लिखा गया है कि 1911 के जून मास की कर्म तिथि। ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा नागार्जुन की जन्म तिथि है। स्थिति का अपनी जन्म तिथि के संबंध में संदेह है क्योंकि तिथि और वर्ष का निर्धारण आधार उपलब्ध नहीं है। प्रतीति निमित्त है कि वह का महानाथ था जिसने उनका नाम से उन्हें मालूम हुआ। उक्त प्रमाण पत्र अट्ट: नागार्जुन जीवन और साहित्य-17

नागार्जुन अपने पिता की छठवीं संतान है ।¹ उनसे पूर्व पैदा होने वाले तमाम शिशु चलते होते । इनके जन्म से पूर्व इनके पिता गोकुलनाथ मिसिर ने धे धेनाथ नाम [देहर, जिला-संथाल परगना] जाकर एक मछीने का अनुष्ठान किया था । अतः इनका जन्म का नाम बाबा धेधेनाथ के नाम पर ही रखा गया । परन्तु बाद में अशुभ होने के डर के कारण उन्हें परिवार के लोग "ठक्कन" कहने लगे ।---

"परिवार की छोटी महिलाओं को चिन्ता हुई कि इतना अच्छा नाम रहेगा तो लड़के को अशुभ होगा, इसी से उन लोगों ने "ठक्कन" नाम रखा जिससे यह भासित हो कि यह लड़का चार दिनों के लिए आया है और मछी बाप को लग कर चला जायेगा ।"²

नागार्जुन के पिता गोकुलनाथ मिसिर थे जोकि प्रारंभ से ही जेठव आलसी परिवार के प्रति घोर उदासीन तबियत के थे । उन्होंने कभी भी परिवार के प्रति अपना उत्तर दायित्व नहीं समझा । वे सदैव झप-उथर ही रहे । कम पड़े लिये और लड़वाही होने के कारण वे सदैव अपनी ही दुनिया में मस्त रहते थे ।

नागार्जुन की माता का नाम उमा देवी था । वे सीधी-सादी सरल स्वभाव की थी । अष्टेड उम्र में उनके देहावसान से बालक नागार्जुन मातृश्रेम से सदैव सदैव के लिए वंचित हो गया । पिताजी ने कभी उनके कुछ वर्ष की पूछी नहीं । अतः वे प्रादोषिक जीवन की ही महान घटनाएँ ही उनके व्यक्तित्व में

1- डा० प्रकाशचंद्र शर्मा ने इनकी पाँचवीं संतान कहा है । डा० विद्या लाल शर्मा ने अपनी पुस्तक नागार्जुन और उनका रचना संसार में नागार्जुन की छठी संतान बताया है ।

2- डा० प्रकाशचंद्र शर्मा : नागार्जुन जीवन और साहित्य - पृष्ठ- 17

उभर कर आई जिनके द्वारा आज लेखक अंतर्राष्ट्रीय फ़ैलक पर बैठकर अपने दिल की घुन्डी छोल रहा है ।

मुझ वरु अनुभवों की जन्मना एकाग्रता

नागार्जुन जब चार ही वर्ष के थे तभी इनकी माता उमा देवी का देहान्त हो गया था । नागार्जुन अपनी माँ के देहान्त का कारण अपने पिता द्वारा की गई घोर उपेक्षा का कारण मानते हैं । पिता द्वारा की गई माँ को प्रताड़ना से नागार्जुन का बाल मन मन ही मन सुला उठा था । इस मातृ विछोह की ज्वाला की चिनगाारियों को उन्होंने 1947 में "रतिनाथ की चाची" में प्रोकी है । माता-पिता के दाम्पत्य जीवन पर उन्होंने ऐसा कस कर लिखा है जो अन्यत्र दुर्लभ है —

~~रतिनाथ की चाची~~ "रतिनाथ को अपनी माँ याद नहीं है । थोड़ा-सा आभास मात्र है । वह गौर श्याम थी । उसे क्या का रोग था । इस यही रक्ती लो याद है । माँ का घेहरा क़ैला था ? क़ार छोटा, अखि न छोटी न लड़ी । नाल नुकीली नहीं था । माँ का प्रश्न छिड़ते ही एक ध्यानल हूय उस तड़के ही अखि के आगे नाच जाता था वह नहीं पासता था कि इस तरह का अग्रिय और ध्यानल हूय उसे याद आये । किन्तु सिर्फ अखि मूक होने से ही कोई बात मन में न आय, ऐसा तो कहीं हुआ नहीं ।

क्या थी वह बात ? यही कि रतिनाथ की बीमार माँ बिस्तरे पर उतान लेटी पड़ी है और जयनाथ रुझ रूप धरकर बेचारी की छाती पर बैठा है ।

हाथ में छुल्लाड़ी है और वह अपनी स्त्री की गर्दन रेतता जा रहा है । वह धिपिया रही है, लेकिन कोई भी इस नरमेघ में हस्तक्षेप करने वाला वहाँ मौजूद नहीं है ---- माँ धिपियाती है, साढ़े तीन साल के अबोध रस्ती ने यह ज्ञाप्य देखकर वम साथ लिया है । घर के कोने में बैठा हुआ वह कनछी से रह रहकर अपनी माँ और बाप को देख लेता है ----

माँ की स्मृति के साथ वह भ्रान्त पित्र रस्ती की आँखों के अंगे आ जाता है । पिता के रुद्र स्वभाव के प्रति इस बालक के हृदय में प्रतीतिवृत्ता की आग कभी-कभी सुलग उठती है । तनी भों हों और पट्टी आँखों से वह बाप की ओर घूरता है । जिसको सदैव चाची से छल-छलकर जाते करते पाया उसी का अपनी माँ के प्रति वह नृणाँस और स्व व्यपहार रतिनाथ की समय से परे की बात थी । वह चार साल का था, तभी माँ मरी थी । माँ के जाव चाची ने ही उसकी देखभाल की है । क्रोधी स्वभाव के इस पिता से चाची ही उसे बचाती आई है ।----- पिता के प्रति उसकी भक्ति या प्रुता विप्लुन विखावटी थी ।^१

नागार्जुन के ब्रह्मविषय की यह छटना उन्हें आज भी तिलमिला ठर रख देती है । पत्नी के प्रति उपेक्षा का भाव रखने वाला पिता संतान के प्रति कभी भी सहायुधुति नहीं रखता यह नागार्जुन ने पहली बार अपने साथ घटी छटना सेवाना । रतिनाथ की चाची पर उनके पिता जी ने किस तरह उट्टि था- हाँ शिष्यार मिश्र ने उन्हीं के शब्दों में कहा है --

१- रतिनाथ की चाची: पृ० सं०- ३१-३२

“सामने नागाजी ॥नागार्जुन॥ का शिखु घेहरा----- पीछे एक अंधे
 पुरुष की प्रोढ़ मुखाकृति -----अगले ही क्षण घेहरे पर क्रोध का तनाव
 ----- छोट कर रहे हैं । ॥मैं तेरा हाथ काट दूँगा । क्या अंत संत लिख
मारा है तूने ? बाप की छुराई कौन करता है ॥

“मगर मैंने झूठ थोड़ लिखा है । मेरी घापी से आपका क्या रिश्ता
 था ? उस रोज वीपहर की उमस में अन्दर लेटी हुई मेरी माँ का गला छुट्टाड़ी
 से किसने काटना चाहा था । ----- कोई बात नहीं लेकिन मेरी माँ को
 और मेरे पाँच भाई बहनों को किसकी उपेक्षा का शिकार होकर हम तोड़ना
 पड़ा था ?

॥धोप । जीभ खींच दूँगा ।- जानता नहीं, मैं कितनों की पसलियाँ
तोड़ चुका हूँ । सेब के मारे गविय के पुष्पक छूँ “गुरु” कह कर पुकारते हैं--॥”

माता और पिता के प्यार से कोसों दूर बालक नागार्जुन ने बचपन में
 ही नारी जीवन की उपेक्षा और वैधव्य के साथ होने वाली लिखावट से नष्ट
 होते हुए भविष्य को देखा था । उसने जाना था कि उसके पिता सरीखे छगारों
 कामुक, लालची और लंपट नारी के सतीत्व को सुरक्षित नहीं रहने देते । गरीबी
 जैसी अनेकों विधवा चाचियाँ अधिरी अलेली अमावस, पूर्णिमा की रातों से इन
 निशाचरों की काम-पिपासा का शिकार होकर अनैतिक गर्भ देती, गिराती
 जीवन भर जीवित लाश बनी रहती हैं । उनकी इसी घेतना धर क्षीयमान ने उन्हें

हथोर कर रख दिया । अतः वे इन समाज श्रवणों के प्रयत्न से निरीह विधवाओं का इसीलिए पुनर्विवाह कराते हैं, **॥उग्रतारा॥** अंतर्जातीय विवाह कराते हैं **॥सुख मोचन॥** सर्व पिता आदि के कठोर अनुशासन पर विधवा को स्वतंत्र निर्णय के लिए घर से बाहर मन चाहे पति के साथ विवाह करते हैं **॥अभिर्दान॥** तथा नारी समाज को संगठित कर शोषित नारियों की नारी समाज द्वारा इसीलिए सहायता करते हैं **॥कुंभीपाक॥** कि यह सम्पद समुदाय फिर कभी इस तरह का व्यवहार न कर सके ।

"जमनिया का बाबा" में बाबा अभयानंद की पिटाई की एक और घटना नागार्जुन के साथ जब घटी तब वे धर्म मठों में होने वाले अत्याचार, दोंग और आडम्बर को सहन नहीं कर सके । ये जमनिया के मठ पर व्याप्त अधीशवास का विरोध करते करते हैं । इस विरोध पर उनकी श्रद्धा साधुओं से तकरार होती है । वे छुप नहीं रहते । गोरखपुर के मजिस्ट्रेट से जाकर वहाँ के मठाधीश की ह्मति करा देते हैं ।

"आयने के सामने" में नागार्जुन ने लिखा है —

----- छपने मुझे पिटवाया था । मैंने तुम्हें दो वर्ष जेल की सजा करवाई थी । तुम्हारी छटा तीस हाथ लम्बी थी । गोरखपुर के पारसी मजिस्ट्रेट ने तुम्हारी गिरफ्तारी के बाद पहला काम यही किया कि छटा मुँडवा दी -----पलाके में तुम्हारे दोंग की तुली बोलती थी- नागा बाबा ने तुलहवा के बाबा की माया को प्रस्फुर कर दिया । गवाहों ने अदालत में

कड़ा था- वह व्यक्ति मूलतः "तुमहीं" का रहने वाला मुसलमान है और भाग कर नेपाल चला गया था। वहाँ से साथु बनकर लौटा----- काले धेरे की लाल अङ्गुलियाँ बार बार मुझे घूर रही हैं।"

"इस आप बीती सत्य घटना से प्रेरित हो लेखक ने बाबा के मुसलमान होने, नेपाल भाग जाने, वहाँ से आकर साथु के रूप में मठ चलाने, मठ की ध्वनिचार, अबोध जनता के शोषण और राष्ट्र विरोधी कार्य का ठगड़ी बना लेने की घटनाओं के रहस्य से परिचित कराने हेतु हमरतिया जमनिया का बाबा उपन्यास लिखा है।"

जब नागार्जुन बनारस में पढ़ते थे वह समय इनके जीवन का उज्ज्वल था। उस समय का वातावरण ही इन्हें स्वाभिमानी और रुढ़ि श्रेष्ठ बनाता चला गया है। वह अकेला अपने रास्ते का राही बना और अपने प्रारंभिक जीवन में अपने आगामी भविष्य का संकेत दे दिया। बनारस एक ओर तो संस्कृत का पूजा, पाठ, पण्डों पुरोहितों का शहर था तो दूसरी ओर मालवीय जी जैसा समाज सुधारक वही था। नागार्जुन ने इन दोनों क्षितियों से अपने अर्थ की बातें अर्जित कीं। इन्हीं दिनों की दो और घटनाएँ उसके जीवन को और अधिक विस्तारी और संघर्षात्मक बनाती गईं। एक घटना इस तरह है ---

"हरभार मठानी लक्ष्मीश्वरी की देखरेख में एक छात्रावास और धर्मशास्त्र संचालित होती थी जिसमें अरर की मंजिल में संस्कृत विद्यालय के छात्र और

1- प्रकाशपूर्ण भूटः नागार्जुन जीवन और साहित्य पृ० २१०- २१२

निचली मीथल में यात्रियों के लिए ठहरने की व्यवस्था थी। मैथिल तीर्थ-यात्री अक्सर इसी धर्मशाला के कमरों में ठहरते थे। कोठरी की छप्पड़ी बाहर से लगी हुई है और मोहड़ी से कुछ पीला बक्सुरत मवाद रिस रहा है। बंदबू अलग से आ रही है। ध्यानक बंदबू के हावजूद किसी का भी ध्यान उधर नहीं जा रहा है। धेननाथ छुपके से गस तो दरवाजा खोल कर देखा कि कोई छिड़िया मरी पड़ी है और बंदबू उसी की लीग अकड़ी हुई सड़ती लाश से आ रही है। पहले तो वे छुपचाप चादर से उसे ढँक आस फिर अपने एक विश्वासपात्र नेपाली सहपाठी को इसके लिए तैयार कर लिया कि वह इस अपरिचित और लावारिस शव के अंतिम संस्कार में उनकी मदद करे। काम काफी टेढ़ा था और टेंट में धेला तक नहीं। फिर भी लाश को एक निजी पिछोरी [ओढ़ने की चादर] में गठरी की तरह बाँध कर दोनों ने छुपचाप शमशान घट पहुँचा दिया। धेननाथ अपने साथी को वहीं छोड़ रानी के दरबार में हाजिर हुए। काफी पूछताछ के बाद रानी लक्ष्मीवती के दो आदमी आस और एवढास की व्यवस्था करके चले गए। दाह क्रिया स्वयं धेननाथ ने की। इस घटना का पता जब छात्रावास के अन्य साथियों से काफी की स्वनाम धन्य पण्डित सँसली को चला तो धेननाथ पर तरह-तरह के लाँछन लगाए गए। घाण्डाल तक बूझा गया। धेननाथ को इससे विचलित होने का कोई कारण नहीं था। उन्हें यह सोच तब तक छोड़ना था कि ऐसा ही संस्कृत का सार है।¹

बनारस में ही रहकर बनारस और इलाहाबाद की यात्रा के दौरान उन्होंने एक जूता गल्ले वाले मोची के यहाँ सब कुछ जानकर देखकर पानी पिया था, गुड़ लाया था।

1 - डा० विजयबहादुर सिंह: नागार्जुन और उनका रचना सँसार-पृ०-18-19

इस तरह नागार्जुन ने अपने प्रारंभिक जीवन में ही पूत के पाँच पालने में दिखा दिए । उन्होंने समाज की विद्वत्ताओं को घुसकर देखा है उनसे टक्कर लेकर उनकी जड़ें उखड़ गयी हैं । गरीब विलीन शोषित समाज के प्रति उनकी हमदर्दी दिन पर दिन बढ़ती गई । वे उसी वर्ग के होते चले गए ।

शिक्षा और सीपक

जिस पिता ने कभी दाम्पत्य जीवन का सार ही न समझा हो, दिन रात घर में क्लेश और कोप का वातावरण बना रहा हो वहाँ संतान की परिवारिका और उसके भविष्य की आशंसा निश्चित रूप से अंधकार में ही तिरौटित हो जाती है । नागार्जुन के साथ भी उनके पिता ने ऐसा करने में कोई कोर कसर न उठा रखी थी । पिता गोकुलनाथ सदैव आलसी मंदबुद्धि और नागार्जुन के ही छब्बों में "मूर्ख" थे । अतः उन्होंने कभी भी बाल नागार्जुन की शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं किया । पढ़ी संस्कृत की पुरानी खड़ी खनाई पटरी पर नागार्जुन को सिर रगड़वाते रहे । शिक्षा के समय में वे सदैव बड़ा करते— "संत मेंत में लड़का पढ़कर तैयार हो जायेगा, अपनी तो एक कौड़ी भी नहीं लेगी । उल्टे, पढ़ाई के दिनों में भी चाहेगा तो हमारी मदद करता रहेगा।" और वास्तव में हुआ भी यही । नागार्जुन संस्कृत विद्यालयों में पढ़ते रहे, वही श्रीमंतों के यहाँ नौदुर्गा के दिनों में चण्डी पाठ कराकर पिता को "अठारह आने" देते रहे । अपनी शिक्षा के बारे में और पिता के अभिभावकीय व्यवहार पर उन्होंने "रत्तिनाथ की याची" में लिखा है । लीझर ग्राइमरी से ऊपर ग्राइमरी की शिक्षा का छर्य चार-पाँच रूपस जानकर उनके पिताप्री की यह अमृतवाणी दर्शनीय है —

"नहीं, कभी नहीं। यह नहीं हो सकता। प्रज्ञा: स्मरणीय नीति माधव उपाध्याय का स्थावर मूल्य भाषा पढ़ेगा। उसी दिन धरती उल्ट जायेगी- और आत्मान से अंगारे बरसने लगेंगे। वकील वालस्टर जनरल प्याण लहसुन और अन्धा नहीं खाना है रस्ती को, उसे तो अपने पूर्वजों की कीर्ति रक्षा करनी है----- बस, एक पटा कटा अमरकोष कहीं से उठा लाए और बेटा के हाथ में धमाके हुए कहा-- क्या करना है अंग्रेजी पढ़कर, -क्रिस्तान बनना है। तो यह अमरकोष, जिस दिन यह कण्ठस्थ हो जायेगा उस दिन तीनों लोक घुम्दारे लिए हस्तामलक हो जायेंगे।" यह थी कचे के श्राव्य विधाता पिता की वीरघ्न दिवली जिसने नागार्जुन को कभी भी बचपन में प्रोत्साहन नहीं दिया उसमें कभी भी आत्मविश्वास बनाने नहीं दिया। और वह संस्कृत की "टोली" में अपनी शिक्षा के सोपान पूरे करता रहा--

"शिक्षा संस्कृत शाला में, पैतृक विद्या-विधि जो भी घर में पाई। बाव में नागार्जुन ने किसी अंग्रेजी स्कूल कॉलेज, यूनिवर्सिटी का मुँह नहीं देखा। कोई परीक्षा पास नहीं की। जिन्दगी की छली पुस्तक से कबीर की तरह "अखि की देखी" सीखा। और वही ईमानदारी से लिखा।" 2

बनारस में शिक्षाध्ययन करते समय उनका संपर्क मालवीय जी से हो चुका था। वे प्रेमचंद को भी प्रेरित कर चुके थे। तथा प्रगटित बल्देव मिश्र से गांधीवादी विचारों से प्रभावित हो चुके थे। तथा बनारस में ही रहकर वे आर्य समाज के विचारों के अनुयायी बने। आर्य समाज से उन्होंने झूठा-धूत का

1- रतिनाथ की चाची- पृष्ठ सं०- 25-36

2- डा० प्रभाकर माचवे: नागार्जुन, 1977 पृष्ठ सं०- 4

भेदभाव न मानने सब स्त्रियों को बराबरी का दर्जा देने जैसी छान्तिकारी बातें सीधी । इन्हीं बातों का असर उन पर दिन-पर दिन गहराता जाता था रहा था उनके भावी चिन्तन में यह तत्त्व पड़ाव सामग्री का कार्य कर रहे थे ।

शास्त्री की परीक्षा देने के बाद नागार्जुन कलकत्ता की ओर निकल गए । वहीं पर वे संस्कृत कालेज से प्राकृत भाषा का विशेष अध्ययन करना चाहते थे । परन्तु कॉलेज के प्रिन्सीपल एस० एन० दास गुप्ता का भारी दखलवा था । बंगाल में लोग उन्हें बाधा [टाइगर] प्रिन्सिपल कहा करते थे । वह बाधा प्रिन्सीपल साक्षात्कार के माध्यम से विद्यार्थियों की भर्ती करते थे । नागार्जुन को अपनी संस्कृत भाषा पर पूरा भरोसा था । "उन्होंने उनके एक चपरासी को चार आने घूस देकर अपनी संस्कृत कविता उधर पहुँचा दी और हड़ आकर ब्लास रूम के एक कोने में बैठ गए । इण्टरम्यु के समय प्रिन्सीपल महोदय वह कागज हाथ में हुलाते हुए आए—

सड़टा कार रचना १ के लिले-थे १ के १ आमि देखि तो १ घोर पकड़ा गया के अंदाज में उन्होंने कहा "धरे गेलो तर । धरे गेलो । और घोण्ण की — आर तोमर परीवला होवे न । सड़ होले ।"¹

नागार्जुन का कवि मन बहुत पहले सेही लुटके लगा था । उनकी कविता उन्हें आगे लाने के लिए काफी मदद करती थी । बंगाल में इसी के चलवृत्त पर कॉलेज में प्रवेश हो पाया । वहीं रहकर नागार्जुन ने बंगाल भाषा

1- डा० विजयबहादुर सिंह: नागार्जुन और उनका रचना संसार पृ०-21-22

सीधी । नागार्जुन पर यही ब्राह्म समाज के आन्तिकारी विचारों का प्रभाव पड़ा । नारी को आधुनिक शिक्षा देने की प्रेरणा नागार्जुन ने यहीं से प्राप्त की । इस प्रकार नागार्जुन अपने विद्यार्थी जीवन में ही विचारों से दमन होते हुए और उन्हें अमली जामा देने के लिए कविताएँ धड़ल्ले से रची जाने लगीं । उनका अध्ययन का अन्तिम और लंबा में कोलम्बो शहर में पूरा हुआ ।

गृहस्थ-संन्यास और पुनः गृहस्थ

नागार्जुन का विवाह उन्नीस वर्ष में हरिपुर गाँव के सम्पन्न परिवार की बेटी अपराजिता देवी के साथ हुआ । अपराजिता श्री माँ बाप की इकलौती बेटी थी परन्तु वे कुशल गृहणी थी । नागार्जुन उन्हें प्यार से "अपू" कहा करते थे —

"क्या बात करती हो अपू । तुम तो मेरी सहधर्मिणी हो, ठेठ सनातन अर्धांगिनी श्रीमती अपराजिता देवी । हमारी अपनी देहाती जायदाद और घर आँगन की मालिक" ।

सन् 1933 में गीना हो जाने के दो-तीन महीने बाद ही नागार्जुन द्वा देहात के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए घर से निकल पड़े । घर पर पिता से कभी बनती नहीं थी अतः परिचित सत्य से अपरिचित सत्य की तलाश में लेटलु को धेन से नहीं बोलने दिया । अपने पिता के व्यवहार से वे अन्दर ही अन्दर सुलगते रहते थे । अतः पत्नी के साथ वृत्त समय हिरागमन घर मुश्किल से तीन

घर महीने ही रहकर अपना होता झण्डा उठाते हुए 1934 में घर की छेदरी को पार कर दिया। नागार्जुन के असली जीवन की शुरुआत यहीं से होती है।

नागार्जुन घर से निकलने पर काठियावाड़ [गुजरात] अबोधर आदि स्थानों पर चलते गए। काठियावाड़ में उन्होंने जैन मुनियों को प्रार्थना पढ़ाई। लेकिन उठाऊ प्रवृत्ति ने उन्हें कहीं नहीं जमने दिया वे गुंजाब पहुँचे और वहाँ स्वामी ज्ञेयवार्नव के साथ कुछ दिन रहे और मासिक पत्र "दीपक" का संपादन किया। यहीं रहकर इन्होंने बौद्ध धर्म में दीक्षित रहने की बात सोची और बुद्ध की प्रामाणिक वाणी देखने की लालसा से उन्होंने "महाबोध सोसाइटी कलकत्ता" को पत्र लिखा। जवाबी पत्र में श्रीलंका का हवाला था देखकर नागार्जुन की बाँछें टिल गईं वे अंगोछा फटकारते हुए उठ पड़े हुए। स्वामी ज्ञेयवार्नव के समझाने पर भी वे "आगे की पढ़ाई थी ज्ञेय के ही काम आयेगी। आप यही तो चाहते हैं कि आदमी पहल लिखकर देा के काम आये और पहल हूँगा तो और काम आयेगा"। बहते हुए निकल पड़े। पास में पैसे नहीं। गरीब और वरिष्ठता उनके साथ ऐसी की तरह सदैव सतकती रही। स्वामी ज्ञेयवार्नव ने कुछ पैसे दिए थे। मग्रात पहुँचते पहुँचते ^{उन्होंने भी} एक गिरहबट ले उठा²।

लंका निवास ने नागार्जुन को बौद्ध धर्म जनाया। और यहीं उनका नामकरण "नागार्जुन" हुआ जो हिन्दी के अपने ढंग के अकेले साहित्यकार हैं। सन्यासी होने पर ही नागार्जुन ने सिर मुड़ाकर बौद्ध धर्म में प्रवेश पाया।

1- डा० विजयलक्ष्मण सिंह: नागार्जुन और उनका रचना संसार-पृ०-23

2- वही: पृ०-23

“यों तो श्चि विरादरी घेयनाथ जी को काफी सम्मान देती थी पर जब साथ-साथ उठने बैठने का सवाल आता तो उसे नीचे आसन पर बिठाया जाता क्योंकि वह गैरिक वस्त्रधारी संन्यासी जो नहीं था । एक स्वाध्यायी भारतीय पण्डित को यह बात अक्सर लगती रहती थी और उसे यह भी तो मालूम था कि बौद्ध श्चि बुद्धिबल और पाण्डित्य में उसकी बराबरी के नहीं हैं । आपस में यह चर्चा कभी-कभी हो भी जाती थी पर संन्यासी बेचारे घेयनाथ को बराबरी का आसन दे ही कैसे सकते थे जब तक कि वह कुछ संन्यास ग्रहण न कर ले । आखिर एक दिन घेयनाथ ने तय किया कि जब तक “विद्यालंकार परिषेज” में रहना है— संन्यास ले लेने में ही हीनता ग्रन्थि से मुक्ति मिल सकेगी । आचार्य घेयनाथ को अपनी इच्छा का श्चिनुनाथ जब चुन लेने की स्वतंत्रता मिली तो उन्होंने विख्यात पार्श्वीनर “नागार्जुन” का नाम अपने लिए चुना ।

यहीं कैलाशिया में “विद्यालंकार परिषेज” विद्यालय में राहुल तीर्त्कृत्याय, भवन्त आनीद कोशाया सन, आचार्य जगदीश आदि ने बौद्ध शिक्षा ग्रहण की थी उनकी ही हुंखला में अब नागार्जुन की शामिल हो गए । यहीं रहकर उन्होंने श्चिणी की सीख ली । नागार्जुन के विचारों में यहीं रहकर क्रान्तिकारी परिवर्तन आ रहा था । वे वामपंथी चिन्तन में रुचि लेते लो थे जो कि अधिकारों का पक्ष पाती थी । इधर बौद्ध धर्म का समता-समानता वाला सिद्धान्त उन्हें समाज की अक्षमताओं को ध्वस्त करने में उत्प्रेरित

दे रहा था। वे अब देश और समाज की स्वा-विधा पर नजर टिकाए हुए थे। और प्रतीक्षा अक्सर की थी कि इन्हीं दिनों बिहार में किसान आन्दोलन शुरू हो गया। स्वामीसह आर्चव इस आन्दोलन को गति प्रदान कर रहे थे। नागार्जुन को उन्होंने पत्र लिखा---

"वहाँ मुझे के चक्कर में क्या पड़ेहों? आओ और जनता के लिए काम करो।" नागार्जुन यह सुनकर भारत लौटे और किसान आन्दोलन में सक्रियता दिखाने लगे। उनकी कविताओं का क्रम साथ-साथ चल रहा था। नागार्जुन की पहली गिरफ्तारी इसी आन्दोलन में हुई। डा० प्रभाकर माचड़े ने इनकी गिरफ्तारी के बारे में लिखा है -

"नागार्जुन भारत लौटे तब 38 के मध्य में। अमबारी [बिहार] के अत्याचारी भूस्वामी के खिलाफ राहुत सक्रियतायन ने नेतृत्व किया। उनके शिष्ट-जैसे मुंडित सिर पर लाठी पड़ी।----- नागार्जुन को किसानों के आन्दोलन के लिए पकड़ लिया गया। उपरा और हजारी बाग जेल में इस महीने जेल में रहना पड़ा।"²

नागार्जुन का पृथक संपर्क सूत्र कई महत्वपूर्ण लोगों से जुड़ा। समाज-वादी चिंतक कार्यालय और इयामनरु मिश्र से उनकी भेंट होने लगी। इसी बीच उनका पत्र व्यवहार नेताजी सुभाष चन्द्र बोस से हुआ। उनके छात्राचार्य आर्चव उनके जीवन को और अधिक द्रान्ति के रंग में रंगने लगे। दूसरी बार जब वे द्वितीय विश्व युद्ध के समय भूमिगत थे इनकी गिरफ्तारी हुई और आगलपुर की जेल में आठ महीने में रहना पड़ा।

1- डा० विमलचन्द्र मिश्र: नागार्जुन और उनका रचनाईसार- पृ०-23

2- डा० प्रभाकर माचड़े: नागार्जुन: पृ०-5

यहीं भागलपुर की जेल में सता लगने पर इनके पिता गोकुलनाथ आ पहुँचे । उन्होंने रोते हुए जेलर से कहा—

“यह लड़का क्यों से थागा हुआ है । छुड़ाये में हमें सता ही रहा है पर एक “बिछिया” की पीठ में सुरा घोष कर बाबाजी बना घूमता है । इस कसाई को जब आप जेल से रिहा करने वाले हों तब तार देकर मुझे बुलवा लीं हम चार जने मिलकर आँखी और इसे पकड़ कर घर ले जाएँगे ।”¹

और वास्तव में हुआ भी यही—

“सचमुच ही बुबारा जेल के फाटक पर हाजिर होकर पिता ने नागार्जुन को अपनी विरासत में ले लिया ।”²

जेल के इस छुटकारे पर वे गृहस्थ आश्रम में पुनः प्रविष्ट हुए । समाज में छड़ा बाविला मचा “सन्यासी के बाव गृहस्थ” होने पर उनके ऊपर तरह तरह के लांछन और वाग्वाण पड़ने लगे ।

“एक तो संन्यास से वापस आया और दूसरा समुद्र पार कर गया, तीसरी बात कि बौद्ध धर्म में दीक्षित हुआ । बौद्ध तो आधा मुसलमान होता है— आधा ईसाई । वे गाय की छाते में और सुआर भी । यह लड़का ब्राह्मणों के समाज में फिर से वापस लिया ही नहीं जा सकता ।”²

परन्तु गंधि में सुझ बल ने नागार्जुन को जमा कर छोड़ा अब वे गृहस्थी का भार उठाने के लिए तैयार हो गए । परन्तु उनका जन सामान्य

1- डा० विजयबहादुर सिंह: नागार्जुन जीवन और साहित्य पृ०- 29

2- वही: पृ०- 29

से संपर्क नहीं होता । वे अपने पिताश्री को हटा रखने के लिए "हुटवर पिताप" जैसी कतिबधा छपवाकर रेलों-गाड़ों में घूम-थूम कर बेचते रहे पैसे की रेणवारी आती रही ।

जेल यात्राएँ—विद्रोही प्रवृत्ति और साहित्य रूपन

नागार्जुन को शोषण अन्याय और अस्मानता से लड़ने की लत बचपन से ही पड़ गई थी । इस आवत ने उन्हें कहीं भी घेन से नहीं बैठने दिया । उनका मैथिली का नाम "यानी" इस लत के साथ बड़ा भेल खाता है । बचपन से ही पक्कड़ घुमक्कड़ी ने उन्हें बुनिया देहात का पेसा चस्का लाया है कि वे कहीं भी दो दिन घेन से नहीं बिता सकते ।

नागार्जुन का हुकाय सदैव से ही जन-संघर्ष की ओर रहा । उनकी पहली गिरफ्तारी इसी संबंध में सजारीबाग सेन्दूल जेल में हुई वही वे वस महीने तक जेल में रहे । अपराध था कि बिहार के अमवारी के अत्याचारी भूस्वामी के ठिलाफ शोषित-पीड़ित किसानों का साथ । परन्तु नागार्जुन इस गिरफ्तारी से और अधिक उत्साहित हुए और जेल से छूटकर से राष्ट्रीय राजनीति में भाग लेने लगे ।

नागार्जुन इधर सुभाषचन्द्र बोस जैसे पुझारु नेताओं के संपर्क में आ रहे थे अतः उन्होंने अपना संघर्ष का रास्ता हट निकाला था । द्वितीय महायुद्ध में कांग्रेस की नीतियों में वरार पड़ रही थी । नागार्जुन कांग्रेस से बिल्कुल सहमत नहीं थे । उन्होंने सम्मानी आजादी के लिए सुभाषचन्द्र बोस

की नीति का अनुसरण किया। वे समाजवादी और वामपंथी विचारों की ओर थे। ब्रिटिश सरकार को यह में सहयोग न दिया जाय इस तरह का यह विरोधी आन्दोलन पटना में बिहार के अन्तर्गत फारुख ब्लाक के लोग कर रहे थे नागार्जुन ने इस आन्दोलन में आगे बढ़कर हिस्सा लिया। उन्होंने इस आन्दोलन को तेज करने में विशिष्ट भूमिका निभाई। वे देहात से किसानों से दाल चावल कसुते थे और कार्यकर्ताओं को आकर खिलाते थे। उन्होंने असहयोग के रूप में एक पम्पलेट भी निकाला था— "न एक भाई न एक पाई"। अर्थात् ब्रिटिश सरकार की द्वितीय विश्वयुद्ध में कोई भी मदद नहीं की जायेगी, एक आदमी तक भारत की ओर से न जाय एक पैसा तक अंग्रेजों को न दिया जाय। इस तरह के पम्पलेट ने जनता में खलबली पैदा कर दी। परिणामस्वरूप अंग्रेजी शासन की नजर इन पर पड़ी। नागार्जुन भूमिगत हुए परन्तु पकड़े गए और आठ महीने भागलपुर जेल में कैद काटी। यहीं से नागार्जुन कांग्रेस और विदेशी शासन के खिलाफ जमकर लिखने लगे। वे जन आन्दोलनों की झड़ाने के लिए कविताएँ लिख लिखकर रेलों, बसों आदि पब्लिक समूहों में सुनाते।

उनके "रतिनाथ की चाची" और "बलपनमा" में यही 1935 से 1948 तक की राजनीतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि है। उभरते हुए किसान आन्दोलन कांग्रेस की दुर्लभ नीति, पूर्णपणित और कांग्रेस सामंत और साम्राज्यवाधियों का गठबन्धन उन्होंने सूच उजागर किया है।

1- डा० विजयबहादुर सिंह: नागार्जुन और उनका रचना संसार: पृ०- 24

नागार्जुन काग्रेस की नीतियों से नेताओं से उन्हें सदैव नफरत रही लेकिन वे गांधीजी की व्यक्तिगत स्तर पर बहुत मानते थे। उन्होंने "बाबा छेसरनाथ" में लिखा है ---

-आजादी के लिए जो समझदारी पहले थोड़े-से^{यह} लोको^{यह} तक सीमित थी, उसे गांधी जी आम पब्लिक तक ले आए। यही उनकी सबसे बड़ी खूबी में मानता हूँ।" और उनकी हत्या पर बिलबिलाकर उन्होंने "तर्ज" कविता "सुगंधारा" में लिखी थी ---

"जिस बर्बर ने
कल किया तुम्हारा कल पिता
वह नहीं मराठी, हिन्दू है
वह नहीं मूर्ख या पागल है
वह प्रहरी है स्थिर स्वार्थों का
वह जागरूक, वह सावधान
वह मानवता का महा शत्रु -----
वह मनुष्यत्व के पूर्णरूप का सर्वशत्रु महाराष्ट्र"

लेकिन वे काग्रेसी पेलों से कभी दूरा नहीं रहे उनकी "जलवनमा" में की गई धिक्कड़ वाणी ---

"यह जो दस-दस पंच-पाँच आदमी कुर्ता थोती, टोपी पहन कर गले में माला डाले फटुआ बकरे की तरह नमक बनाने जाते थे सौ मुखेबानू लोगों का एक छिलपाड़ ही लगता था।"

सूची निकली । इस बात का प्राकट्य उन्होंने आपाकी के मिलने के तुरंत
बात "ईस" में छपी कविता से कर दिया ---

"राम राज्य में अबकी राका नीगा होकर नाचा है ।
सूरत शान्त वहीं है बिल्कुल बस्ता केवल दृष्टि है ।
नेताओं की नीयत बदली फिर तो अपने ही हाथों
भारत माता के गालों पर कसकर पडा लगाया है ।

॥ईस जून १९४७॥^{०१}

जेल जाने का सिलसिला और पिछोही प्रवृत्ति बाबा नागार्जुन की
अभी तक बनी हुई है आपातकाल में उन्होंने इन्दिरा सरकार की घोर
भर्त्सना की और जे० पी० मूवमेंट में जेल यात्रा । इन्दिरा गांधी की ताना-
शाही पर उन्होंने 'क्या हुआ आपको' १ शीर्षक कविता से प्रहार किया था--

"आपकी चाल-ढाल देख-देख लोग हैं क्षी
हकूमती नशे का कैसा घटा रंग
छात्रों के हून का पस्का लगा आपको
काले चिकने माल का मस्का लगा आपको
किसी ने टोका तो दस्का लगा आपको
पूल से भी हल्का
समझ लिया आपने
हत्या के पाप को
इन्हू जी इन्हू जी क्या हुआ आपको
सत्ता की मस्ती में झूल गई आपाकी^{०२}

१- डायरी प्रकाशक माधवः नागार्जुन-पृ०सी०- १९

२- वही: पृ०- ८०

नागार्जुन का यह विद्रोही स्वभाव आज तक बना हुआ है। वे जहाँ कहीं भी कभी बैठते हैं उनके व्यंग्य की समझीर लपट पाकर उसके उपर गिरती है। डा० विजय बहादुर सिंह ने उनकी इसी प्रवृत्ति पर कहा है—

“यह श्री मजेदार है कि जब क़्रिस्ती सरकार को नागार्जुन आड़े हाथों लेते लगते हैं तो वामपंथ और दक्षिण पंथ दोनों की बखिं खिल जाती हैं किन्तु यही कौन जब उनकी दली दँकी सी घन-उधेड़ने लगता है तो उन्हें काफ़ी उत्कण्ठ और खतरनाक जान पड़ने लगता है।----- यह अज्ञानी आदमी आज तक पालतू नहीं बन पाया। ---- इसलिए कोई भी इससे दूरा नहीं है न दक्षिणपंथ न वामपंथ। यह किसी का है ही नहीं।”¹

अपनी इसी फक्कड़ आवत पर उन्होंने जे० पी० के आन्दोलन को जाद में लताड़ दिया था— “मैं रण्डियों और भ्रूओं के कोठे पर पड़ गया था”

इस तरह बाबा नागार्जुन की संपूर्ण जीवन यात्रा खड़ी सैरानील रही है। इस यात्रा का उनके जीवन और साहित्य में बड़ा योगदान है। उनकी समस्त रचनाएँ चाहे वह गद्य हों अथवा पद्य रास्ते के अनुभवों से प्रस्तुत हैं। अन्य लेखकों और रचनाकारों की तरह उनका साहित्य काफ़ी हाउस अथवा हिल स्टेशनों की नक्की जमीन से पैदा नहीं हुआ है। उनकी इसी यथार्थ स्वस से उनका पिछोस कहीं आक्रोश और कहीं व्यंग्य में बरसता रहता है। डा० नाथवर सिंह ने उनकी इस प्रवृत्ति को बताते हुए लिखा है ---

1 डॉ० विजय बहादुर सिंह : नागार्जुन और उनका रचना संसार, पृ० सं० 36.

“नागार्जुन की यह वर्ग-प्रतिहिंसा कविता में व्यंग्यों के रूप में प्रकट हुई है : और बिना हिचक के कहा जा सकता है कि कबीर के बाद हिंदी में नागार्जुन से बड़ा दूसरा व्यंग्यकार पैदा नहीं हुआ।”¹

नागार्जुन प्रारंभ में “पियनाथ” नाम से संस्कृत में लिखते थे। “यात्री” नाम से मैथिली में। और मैथिली से हिन्दी में आते समय उन्होंने कहा था—

“मैथिली मी है, मगर उससे पेट नहीं भरता। हिन्दी से पेट भरता है, इसीलिए उसे अपना कलेजा नौचकर चटा देता हूँ।”²

इस प्रकार नागार्जुन का पूरा साहित्य, कविता और उपन्यास उनकी जीवन यात्राओं के अनुभवों से ऋणित हैं। निम्न वर्ग, बिस्तान और मजदूर वर्ग उनके लेखन के नायक हैं। उत्पीड़ित और शोषित समाज उनका लक्ष्य है और अनुभवों की धार पर रखी हुई भाषा उनकी अपनी है।

नागार्जुन ने “रतिनाथ की चाची” [1947] में विधवा समस्या, पल्लवमा [1952] में बिस्तान और जमींदार आन्दोलन “नई पीढ़ी” [मैथिली में “नवतुरिया”]— 1953 में अनमेल विवाह, “बाबा छटेसरनाथ” [1954] में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और जमींदारी उन्मूलन में जमींदार और भूस्वामी की मिली भगत से बिस्तानों का शोषण, “हृत्प्रोचन” [1956] में विधवा का अन्तर्जातीय विवाह, “दलन के छे” में निम्नवर्गीय मछेरों के जमींदार के खिलाफ संगठन और निम्न वर्गीय नारी की सक्रिय भूमिका,

1 डा. नामवर सिंह: आलोचना संयुक्त 56-57 (नागार्जुन विशेषांक) 1981, 604-02

2. जीवकांत ‘लहर’ नागार्जुन विशेषांक - नवम्बर 1970, पृष्ठ 36.

"हंशीपाल" में अस्त्राय मलिकाओं के नारकीय जीवन की वास्तविकता,
 "जमनिया का बाबा" में पण्डे पुजारियों के दोग, "उग्रतारा" में गर्भवती
 विधवा का पुनर्विवाह, "पारो" में अनमेल वर की कहानी तथा "अभि-
 नन्दन" [वीरक पद्मिनी का अभिनव प्रकाशन] में राज नेताओं की हुराफातों
 अवसरवादिता और उनकी हस्तानों के घाल-बतल का च्योरा प्रस्तुत किया
 है ।

कविता के क्षेत्र में तो उन्होंने सामाजिक चित्रण को बखूबी पेश किया
 है । समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिदृष्टि उनकी कवि-
 ताओं में मुखर हो उठा है । युगधारा, सतरंगी प्रकृतियों वाली, प्यासी
 पथराई आँखें, " *रिक्त* विप्लव देखा हमने " हजार-हजार बाहों वाली "
 आदि अनेक कवितारस और संग्रह हैं । कुछ अप्राप्य रचनाएँ भी नागार्जुन ने
 लिखी हैं तो कुछ शासन का कोपभाजन बनकर इधर-उधर हो गई । नागार्जुन
 का कविता बोध तत्कालीन समस्याओं पर होता है ।

इस तरह नागार्जुन ने अपने-अपने जीवन में समाज की हकीकत दिखाय
 से सीखा । सामाजिक प्रसंगितियों से उनके मन में विद्रोह और आक्रोश
 उभरा है, विलित और शोषित के प्रति उनके हृदय में कड़वा और दया का
 भाव जागृत हुआ है शोषक और अत्याचारी के प्रति उनके मन में घृणा और
 व्यंग्य ने जन्म लिया है । उन्होंने अपने नायक को अपने परिवार का बनाकर
 उसे वीरान जंगल में अथवा जैसा कहेंगे नहीं छोड़ा उसे सहानुभूति दी, दिया
 निर्देश दिया है । इसीलिए आज भी उनके हृदय पर एक अदृश धैर्य तटका
 रहता है । बीमार होते हुए भी वे अपने इस निम्नवर्गीय शोषित और
 पीड़ित समाज के सदस्यों से मिलने के लिए यात्रा कर रहे हैं ।

नागार्जुन की वैचारिकता

प्रेमचंद के बाद स्वातंत्र्योत्तर भारत के गवियों की बोली-बानी, पहनाव-उढ़ाव, छान-पान, रहन-सहन, सोचने समझने के तौर तरीकों, कीचड़ और रपटीले रास्तों, भूखे और अधनगी लोगों, पैसे के पीछे मरते और भागते बेईमानों, साँप की तरह कैबुली बदलते महानुभावों, देश प्रेम का ढोंग करने वाले आदमी की शक्ल में भेड़ियों, धर्म की आड़ में काम-पिपासा शान्त करने वाले पाखण्डियों, चुगल खोरों, अधिकार के लिस लड़ने मरने वाले किसानों, मजदूरों, समाज से टक्कर लेती विधवाओं, जर्जर धोयी सामाजिक मान्यताओं को तोड़ते हुए नौवानों, ढोंग और आँडंबरों पर चलने वाले ब्राह्मणों, सूद दर सूद की लपेट में घिस्टते गरीबों, जमींदारों के शोषण से आगिज निरीह किसानों की पहली बार रंगीन तस्वीर नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में उतारी है। हिन्दी साहित्य को यह उनकी रंगीन और अनुपम भेंट है। यह भेंट वैचारिक धरातल को खाने के लिस नहीं बल्कि उसे चौकाने के लिस है जिसे हर बार देखकर नवीन वैचारिक उन्मेष होता है, समाज में कुछ करने की प्रेरणा मिलती है। नागार्जुन ने अपनी इस तस्वीर को मिथिला और बिहार के अंचलों में रंगा जरूर है परन्तु उसके तन्नाम रंग राष्ट्रीय रंग है भारत का समूचा मानचित्र देहाती तस्वीर से स्पष्ट झलकता है।

नागार्जुन की उपन्यास यात्रा 1948 [रतिनाथ की चाची] से लेकर 1979 [अभिर्नवन- हीरक ज्योती का अभिनव (स्करण)] तक है। उनके हिन्दी में ग्यारह उपन्यास हैं। इस समूची उपन्यास यात्रा में उन्होंने अपनी सहानुभूति दबै, पिसे, शोषित, क्षीत, कर्ज और गुलामी में दूध सामान्य पात्रों के साथ रखी है। और उनके उपन्यासों के मुख्य नायक के रूप में इन्हीं कर्जों के पात्रों का ध्यान हुआ है। वे तिलमिला उठते हैं जब कभी उनके इन सड़ते और कुनवेती पात्रों पर अत्याचार होने लगता है। नागार्जुन की सहानुभूति उनकी कविता और उपन्यासों में इन्हीं के साथ बनी रही है। और यही नहीं अपनी साधारण और सरल शैली के माध्यम से वे अपने पात्रों की कहानी को ऐसा बना देते हैं कि पात्र पाठक का अपना बनता चला जाता है। उपन्यास "वलयनमा" में वलयनमा के साथ छुड़ने वाली सहानुभूति बड़ी ही सहज है। वह अपनी गरीबी और तीगडाली की स्थिति ब्रह्मा सुआ पाठक का हृदय पात्र बन गया है —

"अच्छा तो भावान करते ही हैं १ चार परानी का परिवार- छोड़कर मेरा बाप मर गया, यह भी भावान ने ठीक ही किया। भूख के मारे दादी और माँ आम की गुठलियों का गुहा घूर-घूर कर फाँकती थीं, यह भी भावान ठीक ही करते थे। और मालिक लोग कच्चीर और तुलसीझूल के दूधबूझार भात, अरहर की दाल, परवल की तरकारी, घी, सब्जी, सब्जी खाते थे, तो यह भी भावान ही लेता थी। चौकोर

कलमबाग के लिए उनको [मालिक] हमारा दो बूढ़ा खेत चाहिए था और हमें चाहिए अपने चौकौर पेट के लिए मुदरी भर दाना ।¹

यहाँ छुटव्य है कि नागार्जुन का और गुलामी से परेशान मजदूर, गरीब जनता के कुछ दर्द को बड़ी गहराई और गंभीरता से लेते हैं । गरीब और मजदूर की अस्मिता उसके छाती पेट से जुड़ी हुई है उसे भरने के लिए वह कितनी चाकियों में घिसता है कितने कष्ट और ख़ाव सहता है यह वर्णनातीत है । पेट की विस्तृता उसे उसके जीवन के अन्त तक अनेकों समर्थों से तोड़ती चलती है ।

नागार्जुन का समूचा उपन्यास जगत गरीब और निरीह जनता के ऊपर होने वाले शोषण का जगत है उन्होंने अपने लेखन में अपनी निजी अनुभव के आधार पर समाज की विस्मृतियों का चित्रण किया है । अपने उपन्यासों में उन्होंने किसी भी अपरिचित और कल्पित पात्र को कोई भी स्थान नहीं दिया और नहीं उन्होंने कथानक में कल्पना के छल फैलाकर अन्य लेखकों की भाँति उछान भरने की कोशिश की है —

नागार्जुन ने अपने कथा साहित्य में जिस समाज का चित्रण किया है वह उसका देखा वाला है । उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों का चित्रण किया है । गरीब घरवाड़े से लेकर थैली पेट लेने वाले मजिगण और पानी छूने

ले लेकर "सहस्रनामिका" मंत्र के पाठ तक सबके वर्णन उनके कथा-साहित्य में सुलभ हैं ।^१

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में बड़ी सूझ बूझ के साथ अपने अनुभव को उकेरा है । अतः अध्ययन की सुविधा के लिए हम उनकी लेखकीय पैयारिकता को निम्नलिखित शीर्षकों में रख सकते हैं —

यथार्थ का आग्रह

नागार्जुन की समस्त औपन्यासिक कृतियाँ उनके देखे भाले जीवन और समाज के ऊपर आधारित हैं । उपन्यासों में उन्होंने कथानक की प्रामाणिकता को यथार्थ के चित्रण के माध्यम से परिपुष्ट किया है । डा० रामदरश मिश्र ने उनके यथार्थवादी झुकाव की शूरि-शूरि सराहना की है—

“ये जन सामान्य की आर्थिक विषमता, पीड़ा, अभाव, अपमान, संघर्ष को यथार्थवादी दृष्टि से उभारते हैं साथ ही साथ नयी धेतना के आलोक में इनके नए मूल्यों और संबंधों को भी उभारते हैं । लेखक पुराने संबंधों, मूल्यों और स्थितियों की विभीषिका को चित्रित करता हुआ सर्वत्र उसमें उभरती दरारों को अनावृत करता है तथा नए क्षितिजों की ओर संकेत करता है ।”^२

1- डा० प्रकाशचंद्र शेट्टी: नागार्जुन जीवन और साहित्य 1974 पृ०-241

2- डा० रामदरश मिश्र: हिंदी उपन्यास एक अंतर्दृष्टि 1968 पृ०-194

वास्तव में नागार्जुन की कला कर्म के क्षेत्र में अद्वितीय है। उन्होंने ग्रामीण समाज के हर कर्म के हर जाति के और हर व्यवसाय के साथ चलने वाले दैनिक व्यापारों की वास्तविक रूप में लिया है।

नागार्जुन के उपन्यासों में हमें वहीं भी अस्मिता और भाग्य छटाव के कर्म नहीं मिलते। उन्होंने वस्तु स्थिति का चित्रण बिना किसी लाग-लपेट के प्रस्तुत किया है। उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण में किसान, जमींदार राजनेता, गरीब, मजदूर, पिथवासी और वैचारिक संश्लेष करने वाले नवयुवक हैं जोकि अपनी प्राकृतिक भूमिका में कृतियों में स्थान रख रहे हैं।

जमींदार के ठाठ बाट और उसके घर के बीच पनपती विभासिता और तण्डुल्य शोषण नागार्जुन ने आँखों से देखा है। उसकी नस-नस से धे धाँक्य हैं। औछी बाल, पारिवर्तिक कम्प्लोरी, इस कर्म की विक्षोभता तरेव से बनी रही है। उन्होंने गुत्थ सङ्गे वाले पात्र "बलवनमा" से इस सत्य का उल्लेखन सङ्ग त्य में करवाया है —

"गरीबी नरक है श्रेया, नरक। घाघल के चार दाने छोटकर छेलेल्या जैसे चिड़ियों को मँसाता है उसी तरह ये होलत वाले गरजसँव औरतों को मँसा मारते हैं। उनके पास धन भी होता है और अकल भी होती है। अमरपार है उनकी लीला। लड़े छानवान का आवारा से आवारा आकमी पंडितों और सुरोहितों से धलपनसाहत का एतवा पा जाता है।"¹

नागार्जुन इस कर्मा के दैनिक कार्य का भी ऐसा जोखा प्रामाणिक तौर पर पाठक को प्रस्तुत करते हैं ---

“लुट्ठे होते हैं ये लोग । असूल तहसील का काम गुमस्त-खराबिल के हवाले, घर गिरस्ती की देख रेख छुट भइयों के हवाले, सेवा टहल का काम बहिष्वा-खवास के हवाले, बाकी बचे बेटा नाती, भाई-भतीजा सार सरबेटा । सो बेटे-बेटे तास पीटेंगे, शतरंज खेलेंगे, बाहर जाकर सिनेमा देख आयेंगे बेकार मन शेतान का घर । छान पान और आराम की कमी नहीं । काम करेंगे नहीं । किसी की लड़की सयानी हुई नहीं कि निशाना साथे लग जाते हैं ----- कई बार ऐसा होता कि जिसे देखने को बाप बेताब हो उठता उसी पर बेटा भी फिदा ।”^१

यह कर्मा कितना मतलबी और स्वार्थी होता है । अपना काम निकालने के लिए इसकी भाषा ऐसी लपलपाती हुए आगे बढ़ती है “बलचनमा” में बाबू यशोवार्धन को अकेले खान्गी के तौर पर देखा जा सकता है । अपने कलम काम को पीकीर करने के लिए बलचनमा का डेढ़ विस्तार देत जिस मुलमौदार भाषा में छड़पा है नागार्जुन ने इसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दिया है ---

“बलधनमा की माँ ! तुम्हें तो याच होगा, तुम्हारे बखत में हम कभी पीछे नहीं रहे । दो की जरूरत पड़ी तो तुम्हें चार दिए, पाँच की जरूरत पड़ी तो तुम्हें दस दिए । जैसे हमने परिवार के प्राणी हैं तुम लोगों को हमने वैसा ही समझा । हाँ कामकाज की धीड़ रहती है ख्याल नहीं रहता है । कभी-कभी तुम्हारी बात पर ध्यान नहीं भी जाता है, मानता हूँ, मगर मछली और बहियाँ [मातलक और गुलाम] आखिर बाप बेटे ही तो होते हैं । दूसरा काम नहीं आता है । कान भरने वालों की कमी नहीं है ————— आपस की बात है । एक का भात दूसरे की दाल, एक की रोटी दूसरे की भाजी————— कल हुआ है परतो वृत्तस्पति । बलधनमा की माँ, जरा छाँटली चलना होगा । तुम्हारे घर से पक्षिण हमारा जो भिदटा छेत पड़ता है उसमें करेबी आम के कलम लगाना चाहता हूँ, [तुम्हारी कुछ जमीन वहीं पड़ती है । यह अगर दे दो तो छेत बिल्कुल चौकोर हो जायेगा ।”]

यह सब सत्य है जिसे दिन रात देखा जाता है । छोटे घर के लोग अपनी शान और शौकत के लिए सदैव छोटे लोगों को खजाते आये हैं । नागार्जुन इस वास्तविकता को समझा समझाकर कहते हैं ।

नागार्जुन ने छोटे घरों के मटलों को देखा है । परन्तु गरीब की छोमछी से उनका स्पर्श रहता है । गरीबी कैसी होती है उसके कारण

घर की आवासीय स्थिति में कैसी पिया वनने लगती है "रूप के ढेंटे" में ^{कुस्म} ~~हस्त~~ की पारिवारिक स्थिति देखी जा सकती है जहाँ कि नागार्जुन ने गरीबी का घूटा और चीका भी देखा है ।

"पुआत बिछे थे कोने में, उन पर फटी-पुरानी लोरी बिछी थी । एक जवान लड़की और जंगलुंग बच्चे के तरतीब सोए पड़े थे । ओढ़ना के नाम पर कपरी गुल्ली के दो तीन छोटे-छोटे टुकड़े उन शरीरों को जहाँ तहाँ से ढक रहे थे । दूसरे कोने में घूटा चीका । तीसरे में अनाज रखे के कूड़ और लुब्धे । चौथा कोना खाली । छप्पर के बसियों से बस्तियों छिदके लटक रहे थे । मछीखाना पकड़ने और रेंसाने के ओपार भीत की लूटियों से ढंगे थे -- गजि, टापी, सजत, तरेसा किस्म-किस्म के डन्डे । पालों की कढ़ाई-बिनाई में काम आने वाले छोटे लड़े सूख, पलायें । पालों के अक्षरे टुकड़े । घर गिरस्ती की बाकी पसियों चीकें । यानी छरछर का समूचा संसार ही मानो तेरह एट लम्बे नौ फुट लंबे घर में अटा पड़ा था । भीतों कीत ताल पुरानी, फिर भी मजबूत थीं ।"

आणकल के धारणवृत्ति वाले तथाकथित छविणीवी और पत्रकार मंत्रियों और शासनाधीशों के पीछे - पीछे हम हिलाते फिरते हैं । अने सिद्धान्तों और कर्तव्य-बोध को कुहराकर वे "अहोर्त्थ अहोऽपनि" वाली परंपरा को जीवित बनाए हुए हैं । नागार्जुन ने ऐसे लेखकों के मंत्रियों से

1 - रूप के ढेंटे - 1975 [दूसरी बार प्रकाशित] राजपाल शर्मा संसं
दिल्ली से, पृष्ठ 110-11-120

चिपक्ये उनके अभिनंदन ग्रन्थ छापने, हीरक जयंती मनाने के मनसुबे को उजागर अपनेउपन्यास "अभिनंदन" [हीरक जयंती] का अभिनव प्रकाशन में यथार्थरूप में प्रस्तुत किया है । उस प्रसिद्ध मंत्री के उपर लिखा गया यह अभिनंदन ग्रन्थ जिसने लाखों का डेर फेर किया है जिसका सुसूत्र नेपाल से गजिया आदि नशीली वस्तुओं की तस्करी करता है, स्वयं बाबूजी के आदमी एक ओर सेंट विनोबा जी के चरणों में भूमि का दान पत्र अर्पित करते हैं और दूसरी ओर हरिजन छैत-मजदूरों की होंपड़ियाँ हाथियों से उण्डवाते हैं । ऐसे व्यक्ति की गुण गाथा में आज के छुट्टीजीवी की छुट्टिमत्ता के कौशल को नागार्जुन ने उसके द्वारा बनाई भूमिका पर व्यंग्य किया है । माल मंत्री नरपत सिंह का अभिनंदन ग्रन्थ झुलाके के नामी पत्रकार लालजी [बाबू देवकी लंदन प्रसाद] निम्न स्वर में तैयार कर रहे हैं ---

"विषवात्मा बाबू जी
 कृष्णामय बाबू जी
 वीतराग बाबू जी
 निर्लिप्त बाबू जी
 पातु जी का शब्द गीत
 बाबू जी की परिहास प्रियता
 बाबू जी और हिन्दी
 बाबू जी और संस्कृत
 बाबू जी और अंग्रेजी
 बाबू जी और सामाजिक पुनरुत्थान

बाबू जी और नव निर्माण
 बाबू जी और बौद्ध धर्म
 बाबू जी और छावी विकास
 "क्रान्तिकारियों के प्रचलन आश्रयदाता
 ब्रह्मादीप कठोरणि, मुद्गूनि कुसुमादीप
 गंगर्न गगनाकारं, सागरः सागरोपमः
 जननायकः सर्कारी
 लूफान और नाविक : गद्यकाव्य
 काव्य पुष्पाभिलि : कवितार्-----
 बाबू जी की प्रिय पुस्तकें
 बाबू जी और निरक्षरता-निवारण
 बाबू जी के वार्श्वीनिक विचार
 बाबू जी और किसान जागरण
 बाबू जी और पुस्तकालय आन्दोलन
 बाबू जी और बिलौना व्यक्ताय-----^{०१}

इस तरह यह चार सौ पृष्ठों का भारी श्रद्धा ग्रन्थ बार्धस छपार की एक
 मुद्रत रत्न में---

०- पंचि छपार ।

- और संपादन में १

१ - नागार्जुनः अभिलेख १९७९॥ हीरक ज्योती का अभिनव प्रकाशन॥ पृ० ३०-३४-२
 वाणी प्रकाशन दिल्ली ।

- छः हजार ।
- छपाई में १
- पाँच हजार ।
- कागज में १
- चार हजार ।
- बीधाई में १
- दो हजार ।^{०१}

तैयार होने की योजना के अंतर्गत आ जाता है । नागार्जुन का कथ्य बेहद प्रामाणिक है । वे उन तमाम भोगे हुए जीवन के अंशों को अपनी कला का आधार बनाते हैं जिनके बारे में उन्हें पूरी जानकारी है । वे इस संदर्भ में कधीर के अनुज माने जायें तो अत्युक्ति न होगी । डा० विजय बहादुर सिंह ने उनकी इसी यथार्थवादी धेतना पर टिप्पणी करते हुए लिखा है —

“वे प्रायः उन्हीं अनुभव छंटों को लेते हैं जिनके बारे में उनकी जानकारी बहुत गहरी है । इसलिए गाँव और शहरों का निम्न मध्यम वर्गिय जीवन ही वे कट्टे माल के रूप में इस्तेमाल करते हैं । पढ़ी और सुनी हुई दुनिया पर उनका भरोसा कतई नहीं है । वे देखी हुई दुनिया के लेखक हैं ।”^{०२}

स्वभाव से ही घुमंतु और फक्कड़ और यथार्थ की भूमिका में जीने वाले बाबा ने जो देहात की जन सामान्य से लेकर जनविशेष की सामाजिकता

1 - नागार्जुन: अभिनवन 1979॥ छीरक जयंती का अभिनव प्रकाशन॥ वाणी प्रकाशन दिल्ली-मु0सं0-35

2 - डा० विजयबहादुर सिंह: नागार्जुन और उनका रचना संसार 1982मु0-82

को छड़ी निष्कृता से देखा है । वे अपनी प्रतिभा के धनी हैं । उनकी पैनी नज़र से सामान्य सी चीज़ें भी ओझस नहीं हो जाती । उन्होंने प्रत्येक वर्ग की अन्वत्तनी प्रवृत्ति को पहचाना है ।

नागार्जुन को राजनीति का गहरा अनुभव है । वे राजनेताओं की रंग-रंग से परिचित हैं । स्वयं भी समाजवादी चेतना के साथ जुड़े होने के कारण राजनीतिक जगत को छुलकर देखने और पहचानने का मौका मिला है । वे राजनेताओं की देश भक्ति की रामनामी वादर से भी परिचित हैं और उनकी अपने परिवार की कल्याणकारी योजनाओं से भी । उन्होंने नेताओं द्वारा सामान्य जनता को दी जाने वाली औष्ण्य सहानुभूति की देखी है और उनके गला काटने वाले हथियार भी । सरकार की ओर से आम जनता को दी जाने वाली राहत में इनका प्रतिभात श्रेष्ठ भी सुरक्षित है और देश के तथाकथित संचालक होने के कारण पी० आई० पी० का छिंताव भी इन राजनेताओं ने अछित्यार कर लिया है । "बलवनमा" में भ्रष्ट आने पर सरकार की ओर से राहत के रूप में बाँटी जाने वाली धरणी को उच्चशिक्षित एवं देश सेवा का स्वर्णि करने वाला, गरीबी के सिद्धान्तों का अक्षरशः अनुयायी, स्वतंत्रता आन्दोलनों में जेल जाते जाते जिसका स्वास्थ्य भी जवाब दे रहा है वह पूरा वास्तु अशिक्षित जनता में ठीक आधी छोटकर शेष अपने घर में ले जाता है । लोगों को जितने स्पष्ट दिख जाते हैं उनसे ठीक दूनी रूप रजिस्टर में वैश्विक चढ़ाई जाती है । बलवनमास्य सत्य को उजागर करता है ---

रिक्तीफ एंज की ओर से भावान जाने कितनी रकम इस गवि के लिए उन्हें मिली थी । लेकिन कुछ दिनों बाद मुंशी जी के लड़के से जो मुझे मालूम हुआ वही तुम्हें बता देता हूँ । इससे तुम्हें इतना अंदाजा जरूर होही होगा कि लाखों की वह रकम लोगों में किस तरह हूटी होगी । तो मुन तो भइया--

1-	बलुअन पाठक के नाम पर	50 रु० की रकम लिखी थी	30 रु० मिले
2-	धामो ठाकुर	40	20
3-	मोसम्मात जानकी	30	15
4-	तारारतव झा	30	15
5-	छोखाई मिसर	25	10
6-	चतुरानन चौधरी	40	20
7-	पचकौड़ी झा	25	10
8-	जे बल्लभ मलिक	25	10
9-	ब्रभौले झा	25	10
10-	पणवे मिसर	25	10
11-	मनियार गोप	25	8
12-	सकौड़ी गोप	25	8
13-	कपिलेसर महुस	25	8
14-	तीररी अमात	20	6
15-	कल्लर केष्ट	20	6

16-	मुसम्मात हुंती	15	3
17-	हसु प्मार	15	3
18-	शेख अब्दुल	25	8
19-	करिम बख्श	15	3
20-	मोसम्मात हमीदा	15	3

समझा दिया, बीस आदीमियों के नाम पर सवा पचास तो स्वयं की छाया तिली गई लेकिन लोगों को मिले सिर्फ दो तो छह स्वयं ।^१

यह मात्र एक नेता के साथ घटने वाली घटना नहीं है यह सत्ता-धारी स्थितियों की परंपरा आज तक चली आ रही है । उनके द्वारा स्वयं ही इस तरह के प्रष्ट आचरणों को शरण मिलती है । नागार्जुन की राजनीतिक समझ इस संबंध में बड़ी पक्की है । आज के मंत्री और मुख्यमंत्री किस तरह अपनी संपत्ति बढ़ाने में लगे हैं कितने प्रेम और बेलिखत वे अपनी सत्ता का प्रयोग परिवार लुभ के लिए करते हैं मात्र खानगी के तौर पर मध्य प्रदेश को देखा जा सकता है ---

मौखिक बात यह है कि प्रष्टाचार उन्मूलन का दकोसला करने वाले इन सभी मुख्यमंत्रियों के कार्यकाल में प्रष्टाचार दूब फसा-फूसा । दारका प्रसाद मिश्र के कार्यकाल का प्रष्टाचार गुलाबी बना काँह के रूप में प्रकट हुआ । संविद सरकार का शासन भी प्रष्टाचार से मुक्त नहीं था । उस समाज का "टाट पट्टी काँह" पिछले दिनों स्वयं अर्जुन सिंह द्वारा उघाला

गया । प्रकाश सिंह सेठी का मुख्यमंत्रित्व काल "राणवाडा कांड" के लिए चर्चित रहा, तो श्यामा चरण शुक्ल के मुख्यमंत्रित्व काल में भ्रष्टाचार के विरुद्ध विध्वंसितियों की तरह घर-घर में गूँगुन लगे । जनता पार्टी के शासन काल में भ्रष्टाचार को संस्थानिक स्वरूप प्रदान किया गया । तत्कालीन मुख्यमंत्री वीरेन्द्र कुमार सक्सेना और आय के घोषित झोठों से अधिक संपत्ति अर्जित करने के आरोप की जर्घ्य वर्तमान सरकार द्वारा संपन्न हो चुकी है और अब मामला न्यायालय में है । अर्जुन सिंह के शासन काल में तो भ्रष्टाचार ने शिष्टाचार का स्वरूप ग्रहण कर लिया है । उनकी सरकार के कुछ घोटालों के नाम हैं । - रेपसीड शायलकांड, तेंदू पत्रा कांड, चिकनोद जंगल कांड, खंडई फ्लैट कांड, देशी शराब ठेका कांड आदि आदि ।^१

यह तो रही राजनेताओं की खुद की बात । नागार्जुन इनके कुपुत्रों के घरियों को भी अच्छी तरह पहचानते हैं । तस्करी करना, डकैती डालना, लड़कियाँ उठाना, शिक्षित लेना, धंदे के नाम पर लालों की रकम खेचना इन लुटकीयों की बख्शी आदत है । जब इन आदतों को नेक और ईमानदार कर्मचारी, अधिकारी पकड़ लेते हैं तो या तो वे गरीब किसी ऐसी जगह या ऐसे विभाग में स्थानांतरित कर दिए जाते हैं कि वे फिर कभी उनके रास्ते में न आएँ अथवा उन्हें बुरा थपकाकर तथ्यों में उलट फेर करवाई जाती है ।

"अभिर्नवन" के माल मंत्री श्री नखत बाबू का डेटा नेपाल सीमा पर तस्करी करते हुए सक्सेना अधिकारी मिस्टर सेन द्वारा पकड़ लिए जाने पर छेवर

१- रविवार, अंक-३३, अप्रैल १९८३-अर्जुन शरण-एक गीता पृष्ठ ॥ लेख ॥ पृ०-१७

को अखबार में छा छेकर मंत्री महोदय खिंतित हैं और पर्सनल सेक्रेटरी से कहते हैं ---

“नगेन्द्र चार घन्टे से पुलिस कस्टडी में है । आवकारी महाल के अधिकारियों ने उसकी दूक जोग बनी में रोक रखी है । कहते हैं, उपर बीस मन तम्बाकू के पत्ते थे नीचे पचास मन गणित— इस लड़के ने तो मुझे भारी संकट में डाल दिया है, क्याल बाबू ।”¹

इस तस्कारी को फोन पर डाटि कर किस तरह साधारण माल में बदला जाता है यह भी छूटव्य है—

“हलो----- हलो ----- टंक ।। ----- हलो----- हाँ,
मैं रेवेन्यू मिनिस्टर का प्रायवेट सेक्रेटरी ----- हाँ आप कौन ? मिस्टर
सेन ? सक्साइज सुपरिन्टेण्डेंट ? ----- हलो ----- हलो----- टंक
कौकाल अभी तोहिए नहीं----- हाँ मिस्टर सेन ? हमारे पास इस बात
का पक्का सबूत है कि इस टंक में तम्बाकू ही तम्बाकू थी गणित नहीं था
उत्तरे । नहीं बिल्कुल नहीं साब । दूक में गणि की एक भी कली नहीं-----
आप लोगों को थोला हुआ मिस्टर सेन -----²

और बिचारे मिस्टर सेन पर उसके घोरष्ठ अधिकारियों की डाटि पड़ती है कि वह यह निन्दनीय कार्य कर रहा है इसलिए उसे शीघ्र ही उस घड़ेते हेटे के दूक को छोड़ कर मंत्री का कृपा पात्र बनने का सर्टीफिकेट लेना चाहिए ।

~~और जान घड़ी कि~~

1- अभिनदन पृ० सं०- 129

2- घड़ी: पृ० सं०- 129-130

यह रही एक मंत्री के घर की घटना । आपातकाल के दौरान से युवा वर्ग के नाम पर इन मंत्री सुत्रों ने पूरे हिन्दुस्तान में तबलका मचा रखा है, वे शासन का अंग न होते हुए भी प्रशासन को अपनी उंगली पर नचाते हैं । अधिकारियों को घरा थपका कर नाजायज परीम्प, लायसेंस आदि लेकर अपने मन के सभी शौक पूरे करते रहते हैं ।

नागार्जुन ने सामाजिक विध्वंसताओं का वर्णन भी खड़ी ह्यालता के साथ किया है । वे अनमेल विवाह, दहेज और विकौआवर जैसी थोथी मान्यताओं की वास्तविक कमजोरियों को समझते हैं । इन ओछी परंपराओं में संलग्न उन तमाम दोंगियों की उन्होंने क्लई छोली है जो इस कार्य को व्यवसाय के रूप में करते चले आ रहे हैं । नारी के शरीर का व्यवसाय करने वाली बीमा हुआ पर कच्ची उमर की लड़की भुवन "कुंभीपाक" में अपनी जिन्दगी का यथार्थ प्रस्तुत करती है ----

"तीन चार मामूली साड़ियाँ, दो जूताउज, रोल्ड गोल्ड के ईयरिंग और ----- छ्वा मुझे लगती है ----- यह औरत सौ घुँवलों की एक घुँवल है । जाने कितनी छोकरीयों का कीमा बनाया होगा । मुझे भी तल झुनकर ला जायेगी । हम क्या हैं ? रकम बनाने की फैक्ट्री के काम पूर्ण हैं । देखो तो आँके छोई, ममता का कुंआ बनकर कैसे हमदर्दी उड़ेल रही है इस वक्त"-----

श्रुवन द्वारा अपने को ऐसे बनाने वाली फेवरी के काँटों पर चलना यह उस जगत का जीवित यथार्थ है जहाँ स्त्रियों के शरीर की अनदेखी और अनचाहे लोगों के लिए नीलामी होती थी। श्रुवन जैसी न जाने कितनी व्योमिरीयों अपने कामों को पैसे के लिए मोन होकर छुटाती हैं। छोटतों, डाक डीलियों, मेहमानों की दापतों में केबरे नृत्य आदि में ऐसी ही बेबत और अर्थाभाव वाली महिलाएँ दिन रात देखी जा सकती हैं। इसी तरह की आत्माशिव्यन्त अनमेल विवाह पर "पारो" उपन्यास की व्योमिरी नायिका करती है। अपने सौ उम्र में तीन गुने वृद्ध व्यक्ति के साथ उसकी विधवा माँ को असहाय समझकर समाज के ठेकेदार उसे विवाहित कर लेते हैं। भावुकता में पारो अपनी सुहागरात का क्षय प्रस्तुत करती है—

“चतुर्थी की रात में सा रूपस के सा नोट मेरे आगे फैलाते हुए उन्होंने कहा था— और चतुर्थी तो पैसा कहिये १ क्रोड में में चलने लगी। हे क्षयान! साह बण्ड में मगर फिर औरत बनकर इस पैसा में जन्य नहीं है —
----- छी आ। पैतालीस वर्षों का नर पिशाच एक अघोष लड़की के सामने सा रूपसों के नोट का पक्षार इसी तरह लगावे कि—-----”

नागार्जुन ने अर्थाभाव में बाल मजदूरी पर “बालकमा” उपन्यास में यथार्थरक दृष्टिकोण से विस्तार से चर्चा की है। अर्थाभाव के कारण छोटे-छोटे बच्चों के माँ-बाप अपनी कच्ची उम्र की छतान को जिनके कि छाने और खेलने के दिन हैं मजदूरी में रूपस को रूपस रोज में काम पर लगा देते हैं।

नागार्जुन ने बलचनमा के बाल मजदूर को बड़ी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। यह माना कि बलचनमा कम उम्र का कच्चा बालक है। अभी उसके खाने खेले के दिन हैं परन्तु गरीबी और अर्थभ्रात उससे बाढ़ तोड़ भेदनत करवाने के लिए निरंतर दबाव डाल रहे हैं। उसकी नाबालिगी भुत्परी और असहायता में बालिगी खन जाती है। चौदह वर्ष के उस बालक को एक पूरे मजदूर के रूप में ढालने का प्रयास आधुनिक आवश्यकता बनकर मजदूर के जीवन की वास्तविकता को उजागर कर रहा है --

“उसके बाबू दादी और माँ की राय हुई कि मैं मालिकों की किस्ती पदवी में घरवाहे का काम करूँ। दादी ने मना किया था-- अभी खाने खेले का काम करूँ। इसी समय जोत होगी तो क्लेजा सूख जायगा, इस पर माँ खोली थी कि अभी से पेट की फिकर नहीं करेगा तो छतस [आवारा] हो जायेगा।”¹

वास्तव में मजदूर की जिन्दगी का यही सबसे बड़ा यथार्थ है। वही जूयती रोटी के लिए वह अपने शरीर को चाहे वह कच्चा हो अथवा पक्का मालिक के नैतिक और अनैतिक काम के लिए सागिर रखता उसकी मजदूरी है। यह यथार्थ अबले बलचनमा का ही नहीं आज यह रोग असाध्य रूप में गहराये और कसलें में सूव पाया जाता है। छोटे-छोटे एज्वे जौतिक अभी लपटे तक ढंग से पहनना-ढाँधना तक नहीं जानते उनके माँ-बाप उन्हें मजदूरी

कराने को बाध्य हो जाते हैं। होटलों में बर्तन साफ करना, व्यापारियों की दुकान पर इधर से उधर बोझा ढोना, रिक्शा चलाना, सड़क पर मरम्मत का काम करना अब उनकी रोजी रोटी के लिए अनिवार्य हो गया है। सुबह में शहर और कस्बों के चौराहों पर जहाँ मजदूर मजदूरी करने के लिए इकट्ठे होते हैं इन अवोध लव्चों को भी उनके साथ छेड़े देखा जा सकता है जिन्हें मालिक लोग आधी पौनी मजदूरी में छेड़े रिरियाने पर कबूलते हैं। अकेले मध्य प्रदेश के रतलाम और मंडसौर जिलों के ग्राम अधिकारी की ग्राम कार्यालय की सर्वे रिपोर्ट के अनुसार केवल इन दो जिलों में अवोध मजदूरों की संख्या छेढ़ हजार से लेकर द्वाद्व हजार तक है —

ये लव्चे तीन या चार स्तर में घस से चौद्व छँटों तक अनेकों कामों में जोते जाते हैं। माँ-बाप इन्हें आर्थिक विषमता में दुकानदारों, होटलों और छेड़े घरों में चौका बर्तन करने के लिए तीन सौ से लेकर पाँच सौ स्तर प्रति साल के हिसाब से उन अवोध लव्चों के भाग्य को इन लोगों के हाथ में बेप देते हैं। होटल में काम करने वाले लव्चों के साथ अनैतिक व्यवहार भी किया जाता है। मारना, पीटना, गाली देना तो मालिक के लिए सामान्य बात है।^१

इन बात मजदूरों को जाने के लिए मालिक और होटल के लोग झुठी तरकारी, बची हुई रोटियों के टुकड़े, जले हुए घावल आदि देते हैं।

1 - हिन्दुस्तान टाइम्स सित0-8, 1982 कॉलम-4, पृ0सं0- 16

नागार्जुन ने इस वास्तविकता को उन्होंने बात मजदूर बलबनमा के मुँह से कहलवाया है —

“वही जब बहुत खूदा हो जाता था, उससे चपलू आने लगती थी और वह उनके अपने या किसी पड़ोसी के खाने लायक न रह जाता तब मुझे मिलता । मैं उस वही को छुपी छुपी छा लेता । याद आता है कि एक बार जास्ती खूदा और बदबूदार रहने से उस वही को नहीं छा पाया तो मालिकाइन ने सजा दी थी-- अगले दिन खाना नहीं मिला था ।”

धर्म मर्कों में होने वाले अमानवीय व्यवहारों की भी नागार्जुन ने निगरानी की है । धर्म की आह लेकर दोंगी और आछम्बरी लोग अधिक्षित और भोली भाली जनता को भटकाते हैं । धर्म के नाम पर नैतिक और अनैतिक व्यापार देवाल्यों में छुले आम देखने को आण मिल रहे हैं । बीस्वीं शताब्दी में जहाँ विज्ञान ने प्राकृतिक सत्ता पर प्रश्न पिहल लगा दिये हैं वहीं ये अखाड़े बाण समाज को अंध विश्वासों में धरे जा रहे हैं । नागार्जुन ने अपने उपन्यास “जमनिया का पावा” में ऐसे ही प्रुट मठ और प्रुट मठाधीश का चित्रण किया है । साधू महात्मा अपनी सिद्धई की सप्राण में जमाने के लिए एक असहाय महिला के छट माघ के शिशु की बलि देवी को देकर पे अपने को असली सिद्ध होने का फ़ावा पाते हैं —

महाष्टमी की रात में, देवी की प्रतिमा के सामने छे महीने का शिशु डूबा दिया गया। उसकी कमर में रेशमी वस्त्र का लाल दुल्ला लपेटा हुआ था। गले में लाल फूलों की माला थी। माथे पर सिन्दूर का टीका था।

पूजा के मण्डप से बाहर गोरों से घाजे बना रहे थे। न्हाड़े, घड़ियाल, सिंहा, माँदर, डाल, करताल, धूल-----
 हजारों की भीड़ थी। अलग मैदान में चारों तरफ मेला और बाजार।

बकरी के बच्चे की तरह, आदमी के उस बच्चे का सिर धड़ से अलग कर दिया गया। दून के फव्वारे देवी की तरफ छोड़े गए। शिशु सुँह को देवी के चरणों में, मटियासुर के पास डाल दिया गया।

पीले वस्त्रों में, पुजारी जैसा दिखने वाला वह आदमी तलवार लिए खड़ा था। दून से स्त्री हुई तलवार पैट्रोमैक्स की रोशनी में चमक रही थी। वहीं पास ही में सुँहडीन शिशु-शरीर लहू में लथपथ पड़ा था। भिंभिं हंस प्रार्थों का स्पन्दन पैरों और हाथों को बीच-बीच में हिलाए दे रहा था।

तलवार में उँगली हिलाकर उस हत्यारे ने बाबा के ललाट में रक्त का टीका लगाया। मगौती, लालता, ठाकुर, सुखदेव सब थे। सबके माथों पर लहू के गीले टीके लगाए गए।

फिर कट्टे की धेड़ को उस निष्ठुर आदमी ने कई टुकड़ों में काटा। फिर वे टुकड़े एक-एक करके धवन कुण्ड में डाल दिए गए। जलते हुए मांस की हान्थ को खाने के लिए तेरों गुग्गल, ज्यूर, जौ, तिल, छपारी आदि तो आग में डाले ही गए, ऊपर से आधा टीन लुह घी भी डाल दिया गया। ----- बाबा की सिद्धई इस तरह सारे संसार में मशहूर हुई।^१

मन्दिरों में जहाँ मान्यता के अनुसार देव स्थान माना जाता है प्रदा सुप्त अर्पित किए जाते हैं परन्तु आधुनिक मंदिर जगत का यथार्थ इनसे कोतों दूर है। आज मंदिरों पर लूटे आम यौनाचार, माकू वस्तुओं का प्रयोग और तस्करी होती रहती है। धर्म में जितना ढोंग और आँधल होता है आज वह उल्टा ही अधिक ग्राह्य है। भोली जनता इन बाबाओं के इसी हसि और भुलावे का शिकार प्रतीति हो रही रहती है। जमनिया मठ पर यौनाचार, तस्करी और नशीली वस्तुओं का प्रयोग अपनी धर्म सत्ता को जमाने के लिए ढोंगी बाबाओं द्वारा किया जाता है। यौनाचार की स्थिति अवसोलनीय है ---

“इमरतिया जायेगी तो जलेविया नहीं आजायेगी १ एक-आध साधुआसन न रहे तो मठ उदास लगता है। श्रमों की तीव्रत उखटी-उखटी सी रहती है।^२

१- नागार्जुन: जमनिया का बाबा-1968 पृ०- 84-85

२- वही: पृ० 17

इसी योनाचार से ग्रस्त मठ की स्थापन गौरी बुले आम ल्यती है—

‘‘हैं भावन हैं, कच्चा बचाने के लिए मुझे आदमी ही चाहिए
और हमेशा चाहिए ----- पस बर्ष का लड़का हो तो भी पलेगा,
सत्तर साल का लड़का हो तो भी पलेगा’’।-----

नागार्जुन ने इन धार्मिकारियों के दुबरे यथार्थ को भी विश्लेषित
किया है । उनके वाक्य जगत और अन्तः जगत की स्थिति नागार्जुन ने
स्वयं बाबाओं द्वारा स्पष्ट की है । धर्म मठों से लगे लिखटे लोगों की
मानसिक घटना भी उनसे अज्ञाती नहीं रही है ---

मस्तराम सोचता है ----

‘‘एक साधु के नाते, मुझे यह सवाल बरा भी परेशान नहीं करता
कि बाबा जन्म से मुसलमान होने पर भी क्यों हिन्दू साधु बनकर हमारे
पीछे घुलघाता रहा ? हम सदियों से मुस्लिम फकीरों और ईसाई धर्मियों
को अपनी प्रथा प्रतिष्ठित करते आये हैं, उनके हाथों का प्रसाद ग्रहण करते
हमने अपने को धन्य माना है । हमारा समाज इतना लुप्त क्यों नहीं होगा
कि इस लिखाई को उत्पन्न करे ।

मेरे लिए परेशानी ही बात यह है कि वो साल बाद जब पापा
मेरा से बाहर निकलेगा तो फिर क्यों किसी नहीं के द्वार में या कि

वीरान झंगली बलाहे में अपनी सीपी जटार फैलाकर बैठा और फाँसी लालता जैसे घालपाण आदमी इस छूटे हुए औघड़ को फिर से मिल जायेगी । फरेवियों की मिली क्षात का घस्का लग गया है बाबा को ---- जातिपों और छाँ की घमात फिर इस रंग सियार को अपना मर्त नष्ट बना लेगी ?

हमारे समाज के अंदर ठौर-ठौर पर कुर्बों के अम्बार बढ़ते हैं----
----- इस तरह के हटे हुए बाबा लोग वहीं अपना आत्म जमाते हैं और रातों रात नश नश मठ ढहे हो जाते हैं । फिर वहाँ डाका काठमाई होकर गुप-छुप कीमती माल पहुँचाने लगते हैं ----- छोलीरयाँ आती हैं, छेले आते हैं, उनके साथ टेप रिजार्डिंग मशीन होती है, ट्रान्समीटर होता है ।

हमारा समाज किस तरह ललकता है इन जटायारी बाबा लोगों की तरफ ?¹

यह सब जानकर बाबा यस्तराम प्रतिज्ञा करता है ---

मैं देखूँगा जेल से छूटने के बाद यह बाबा कित्तर जाकर बैठता है ।

मैं देखूँगा किस तरह फिर से अपनी जटायों के अंदर नूँ पाजता है ।

मैं देखूँगा किस तरह पाकिस्तानी और चीनी जासूस इस जटायारी के रंगिन घोड़े की आड़ में पनाह पाते हैं ।²

1- कमनिया का बाबा- पृ०- 138-139

2- वही : पृ०- 139

वास्तव में नागार्जुन ने समाज के बहुविध व्रत आयामों को देखा है । परन्तु बाबा नागार्जुन की यह विशेषता रही है कि उसमें उन्होंने धेतना के अंकुर उगाए हैं उसे एक विष्ठा दी है । कमनिया मठ का मस्तराम यकायक यह बात कहता है यह बाबा नागार्जुन की कृष्टि का ही परि-
चायक है । डा० विद्या बहादुर सिंह बाबा नागार्जुन की इस विविष्टता को अद्वितीय मानते हैं ---

“नागार्जुन भारतीय समाज के उन यथार्थवादी लेखकों में से हैं जो राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक दुर्बलताओं और लक्ष्माणियों के साथ-साथ धार्मिक पाटण्डों को भी मद्दे नज़र रखते हैं । धर्म और राजनीति के द्वेग जहाँ मिलकर खतरनाक होते हैं वे उसे भी उद्बुते हैं इस प्रकार की प्रचार धर्मिता लेखन के लिए धर्मवतु है । यहाँ पहुँच कर लेखन परिवर्तन का एक कारगर दृष्टिकार बन पाता है ।”

इस प्रकार यह साफ़ जाहिर है कि नागार्जुन ने अपनी कृतियों में चित्तार के यथार्थ चित्रण लिए हैं, समाज, गरीबी, मजदूरी, मजदूरी धर्म, राजनीति आदि का वास्तविक रूप हमें उनकी कृतियों में देखने को मिलता है । नागार्जुन उन सच्चे लेखकों में हैं जो स्वयं अपने लेखन के साथ प्रतिष्ठ हैं उनके व्यक्ति और रचनाकार में एकपता ही उनके यथार्थवादी चिंतन की जननी है ।

नारी-समाज उत्थान का अनिवार्य घटक

लेनिन ने नारी समाज की भूमिका पर कहा था—

“देहात प्रमुख क्रान्ति के आधार हैं । और इसी में उसका महत्व और बल है । सभी सुविस्त आन्दोलनों के अनुभव से यह देखा गया है किसी क्रान्ति की सफलता इस बात पर निर्भर होती है कि उसमें औरतें किस हद तक भाग लेती हैं ।”¹

नागार्जुन का नारी समाज के प्रति मानवीय दृष्टिकोण रहा है। वे नारी समाज पर होने वाले अत्याचार और शोषण के प्रति घोर विरोधी रहे हैं । उनकी दृष्टि में नारी आधुनिक समाज के उत्थान का अनिवार्य घटक है । उसकी अस्थिरस्थिति में वे समाज के विकास को रुकगी और अधूरा मानते हैं । अतः उन्होंने अपने उपन्यासों में ऐसे स्त्री पात्रों को लिया है जिनसे समाज का स्वस्थ विकास हो सके । नारी जीवन में छटने वाली तमाम घटनाओं, विधवा, बाल विवाह, अन्धविश्वास, बिक्रीबा घर, दोटलों, पारिवीयों में नारी का शरीर प्रदूषण, आदि को नागार्जुन ने आर्थिक तंत्र के साथ-साथ समाज की गीली मान्यताओं को कारण माना है । इसलिये वे अपने उपन्यासों में इन तमाम विद्वेषताओं को प्रदर्शित करते हुए उनके निराकरण की एक दिशा “आधुनिक नारी” की भूमिका में देते हैं ।

इन्टर क्लास के पुराने सहपाठी के साथ चली जाती है । अपने पिता के नाम छोड़ा गया पत्र उसकी दयनीय स्थिति का परिचायक है --

°पिताजी

इस कोठी में यह मेरी आखिरी रात है । अब कभी मैं आपसे मिल नहीं सकूँगी ----- मैं सदा के लिए आपसे बिछड़ रही हूँ -----

प्रान्त में कोई शुभ कार्य नहीं जिसे आपके आशीर्वादों से वंचित होना पड़ा हो । साँझ-सम्मेलन से लेकर साधु सम्मेलन तक का उत्सादन आपने किया है । अनाथालय, विधवाश्रम, बहुरंग-श्रृंगों का स्कूल, पिणरा-पौल, वानप्रस्थ आश्रम ----- जाने कितनी संस्थाओं को आपकी मदद मिलती रहती है । "महिला मंगल स्मरण" तो छेर आपका अपना विशु है । दसियों युवतियों ने आपकी छत्रछाया में वैधव्य के अभिशाप से छुटकारा पाया है ।

लेकिन मैं १ मेरी तरफ दया कभी आपने ध्यान दिया १ द्वार की आती पूनम को मैं छल्लीस की हो जाऊँगी । अठारह की उम्र में मेरी शादी हुई । शादी के एक महीने बाद ही खवाई कुर्मना में उनका देहान्त हो गया । इन्टर के बाद आपने मेरी पहचान छुड़ा दी । एक छूटे पण्डित जी रहे गए । जिसे मुझे गीता, रामायण, उपनिषद्, देहान्त आदि पढ़ना पड़ता था -----

गत वर्ष तक मुझे आखिर माँ की ममता प्राप्त थी । पिछले दिनों मेरी नवेल आपने चाची जी को धरा दी । माँ वह माथवी की हो सकती है, मेरे लिए तो छुईल से वस्तर है यह औरत -----।

भाई- चाची को अपनी पट्टी रहती है, उन पर जब आपका ही कोई वस्त्र नहीं चसता तो मैं जला किस छेत की मूली हूँ ।

इन्टर का एक मेरा साथी बम्बई में रहता है । हम बीच-बीच में मिलते रहे हैं । एक मिल में वह टेक्नीकल एक्सपर्ट है, उः सौ पाता है----- वह आया हुआ है मैं उसी के साथ जा रही हूँ । विषय-क्षेत्री के शुभ अवसर पर हमारी शादी होगी । आपकी हीरक जयन्ती हुई, मेरी यह ताम्र जयंती ही सही ।

आपकी

मुहता^१

नागार्जुन ने इस तरह के विवाह तो उन विधवाओं के कराय हैं जो बाल विधवाएँ हैं और निःसीतान हैं । उन्होंने नारी-स्त्राण में इससे आगे और बढ़कर प्रान्तिकारी क्कम रखा है जबकि विधवा उग्रतारा का विवाह गर्भवती होती हुए भी उसके मनचाहे घर कायेश्वर से कराया है । इस कार्य को समन्वित कराने के लिए उन्होंने रुद्रिग्रस्त स्त्राण की

महिता का सहारा न लेकर एक धेतना संपन्न महिता कामेश्वर की भाभी को लिखा है जो कि उग्रतारा और कामेश्वर के विवाह को प्रसन्नता के साथ सम्यन्न कराती है ---

“सिन्दूर भरी कटोरी सामने रखकर भाभी बोलतीं--- आज यह विधि पूरी होगी । मैं पुरोहित हूँ । तो, झुटकी में सिन्दूर लो और उग्रतारा की सीध भर दो बाबू । उठो ----- कामेश्वर ने छुमघाघ भाभी की आज्ञा का पालन किया ----- दोनों ने उठकर भाभी को बारी-बारी से प्रणाम किया, अच्छी तरह पैर छूकर । भाभी ने आशीष दी- दीर्घायु भव । सौभाग्यवती भव ॥ दाहिना हाथ उगनी और कामेश्वर की पीठ पर फिरता रहा ।^१”

इस तरह के साहसी युवक की नागार्जुन ने उगनी के माध्यम से तारीफ की है ---

“आज ऐसी घटना घटी थी, जिसकी कल्पना का आभास तब उगनी को नहीं था । आज एक पुरुष ने गर्भिणी नारी के तीव्रत में सिन्दूर भरा था । थोड़े में १ नहीं जान छूड़कर । उसके होशो सदाश छुस्त थे, पिपेक सजग था आदेश या आदेश धेतना पर हावी नहीं था। सभी बातें उसे मालूम थीं ।^२”

1- उग्रतारा- पृ० सं०- १६

2- उग्रतारा- पृ० सं०- १७

नागार्जुन की पूरी पूरी सहानुभूति इन बेबस महिलाओं के साथ है। वे विधवा नारी को सामाजिक सम्मान दिलाने के प्रबल समर्थक हैं। BTO प्रकाश चंद्र भट्ट ने नागार्जुन की इसी रुझान पर लिखा है —

“स्पष्ट है कि लेखक विधवा को विवाहित देखा चाहता है। साथ ही लेखक इन पीड़ित नारियों को पूर्ण पवित्र मानता है।”¹

नागार्जुन के नारी पात्र घर की चार दीवारी में घिरकर मनुष्य के सुहृताण नहीं हैं। वे पुरुष समाज से किसी कीमत में छम् नहीं हैं। जितनी कार्य क्षमता पुरुष में होती है उतनी ही नागार्जुन के ये स्त्री पात्र कर दिखाते हैं। वे समाज सुधार से लेकर राजनीति तक में बे-छिड़क समाज की जर्जर रूढ़ियों को तोड़ते हुए प्रवेश करते हैं। नागार्जुन के नारी पात्रों भी राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। “वर्ण के छेदे” की मधुरी ने आधुनिक नारी की भूमिका में सामाजिक और राजनीतिक परिवर्धन को नयी चुनौती दी है। पट्ट पति धर्म की उस आदर्शवादिता को ललित्या देती है जिसके अन्तर्गत यह माना जाता है कि “स्त्री के लिए पति जैसा ही हो परमेश्वर होता है। वह ससुराल में होने वाले सुख को बढ़ावा नहीं करती ---

1 - BTO प्रकाशचन्द्र भट्ट: नागार्जुन-जीवन और साहित्य-पृ० सं० 290

“अच्छ वह कभी उस नशाखोर छद्दे की लाल-चात बर्बाद करने नहीं जायेगी ----- फिर से शादी कर लेगी किसी दिलेर नैक चलन-और मेहनतका जवान से ----- और, खीर मर्द के कोई औरत अकेली जिन्की नहीं गुजार सकती है क्या ?” ----- ३९

मधुरी समाज को अपने धूँत की नौक पर रखती है । वह अकेली रहकर अपने पिता छुरछुर का हाथ बटाती है और मेहनत मजदूरी करके अपने पिता के साथ परिवार का निर्वाह करती है । मधुरी के हृदय में नारी सुलभ व्यावहारिकता है । वह समाज सेवा के लिए भी दिन रात काम करने में संकोच नहीं करती ---

“ऐसा लगता था कि छुरछुर के लिए वह लड़की नहीं है, लड़का है । छपि में मछलियाँ लेकर अब वह पड़ोस के गाँवों में बेच आती थी । बाढ़-पीड़ितों के लिए रिक्तीफ का काम शुरू हुआ तो वह गल्लपोखर के सहायता-शिवरों में छट गई और इससे बाप को बेटा हुआ सुई ।”

नागार्जुन की यह कल्प सुत्री यद्यपि निम्न वर्गीय है । परन्तु उसके मन में संकोच और भय का लेख मात्र भी छिन्दु नहीं है । वह स्त्री होने के लिए पुरुष के आगे है । गाँव में अपने मछुआरे परिवार के “मछुआ संघ” की राजनीति में वह सक्रिय भाग लेने लगी है । वह अनपढ़ है फिर भी बातों को बड़ी गंभीरता से समझकर उनका जवाब देती है । जमींदारों द्वारा

गढ़पोखर पर लिख गए हुं ठे दावे के खिलाफ वह अपने पिता के साथ
 "मछुआ संघ" का साथ देती है । वह अकेली महिला है जो कि तहकीकात
 के लिए आये हुए अफसरों को यह कहने पर कि "मोहन मांझी ने आखिर
 तुम्हें भी कम्युनिज्म का पाठ पढ़ा ही दिया ----- राजनीति
 ही तो एक चीज थी जिसे गवि की हमारी बहू खेटियों ने अब तक अपने
 पास छुट्के नहीं दिया था, लेकिन हम तो देखता हूँ -----"
 पर वो दूक जवाब देती है ---

"तो इसमें क्या दर्ज है सुनर । जिनगी और जमान ओरतों के
 लिए नहीं है क्या ?"

और इस तरह मधुरी मलाही गोदियारी गवि में गढ़पोखर के
 मसले को लेकर संघर्ष करती है । वह अनपढ़ होते हुए भी मछुओं का नेतृत्व
 करती है । पुलिस और थाना दरबार से उसे तनिक भी दखल नहीं होती
 वह मिलट्टी की गाड़ी पर बेलोस घटकर गिरफ्तारी देती है । हिन्दी
 साहित्य में यह अपने परिवार की अकेली नायिका है ---

"मधुरी ने आगे बढ़कर नकछेदी का हाथ पकड़ा और खींचती हुई
 बोली रु काका देखते क्या हो ? चलो, हम टरक पर सवार हो जायें आप
 ही चलकर ।" ---

फिर उसने मंगल, जलेश्वर और कन्हैया को भी अलग-अलग संबोधित किया। पल भर की देर नहीं हुई कि फुर्ती से जाकर वह पुलिस-घान पर सवार हो गई।¹

मधुरी के मन में अपार उत्साह है वह खामोश मातमी भेष में नहीं बैठती वह नारे लगाती हुई मछुआ लंब की घेतगा को मुखर कर देती है--

"लेकिन मधुरी से नहीं रहा गया। वह लंब से उठकर फिर आगे आ गई और पुलिस घान के पिछले छोर पर खड़ी हो गई। बाई हाथ से उसने ऊपर लटकती जंजीर को थाम लिया और दाहिना हाथ घुमा घुमाकर नारे लगाने लगी। लोग हुनने-बोगुने जोश में जवाबी नारे देने लगे-- जीहो। गढ़ पोखर हमारा है हमारा है "-----²

मधुरी ग्रामीण अंचल में अद्वितीय व्यक्तित्व वाली नारी है जिसने पढ़ी लिखी और शिक्षित महिलाओं के लिए भी सामाजिक और राजनीतिक छान्ति के सवार कोसे हैं। BTD रमेश कुन्तल मेघ उसके इसी व्यक्तित्व की सराहना करते हैं ---

"नैतिकता की जंग लगी जंजीरों को तोड़ देने के बाद उसका सामाजिक व्यक्तित्व उभरता है। वह बाढ़ पीड़ित कैम्प में लगन के साथ जन सेवा करती है, "मछुआ लंब" का संगठन करती है, किसान-सभा की

1- वर्ण के छे: पृष्ठ- 115

2- वही: पृष्ठ- 116

की संगठन करी होती है तथा सर्वाधिक साहसी होकर सबसे पहले वसते हर गिरफ्तार होती है । ----- एक सामान्य महिला के रूप में विकसित होकर वह मुक्त नारी और समाज के अधिकारों की शक्ति हो जाती है ।¹

"बलपनमा" के अन्दर भी निम्नवर्गीय नारियाँ सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष में विशिष्ट भूमिका निभाती हैं । रामपुरा गाँव में जमींदार द्वारा किसानों की पकी फसल छड़पने पर वे तिलमिला उठती हैं -----

"इस मौके पर मोसम्मात हमीदा ने बड़ी बहादुरी दिखाई । जिनकी यह जमीन थी उन्हीं किसानों के यहाँ से दस-पन्द्रह ओरतों को बुला ले गई और चार कदों की तैयार फसल धान काट लाई ।"²

इन महिलाओं में राजनीतिक संगठन को मजबूत बनाने का भी अटूट होसला है वे किसान-सभा की घमघोर गरीबी में भी इकट्ठी हो सँबर बन जाती हैं मुसम्मात कुन्ती उन्हीं में से एक है —

"मोसम्मात कुन्ती ने सुना तो छुप आकर इकट्ठी हो गई और रसीव ले गई, कहा था- बातों देवता के पचाव के लिए एक घुटकी किसान गरीबी का भी ।"³

डा० रमेश कुन्तल मेघः क्योंकि समय एक शब्द है, 1975 पृ०-302

2- बलपनमा-पृ०-185

3- वहीः पृ०-126

नागार्जुन ने नारी समाज पर अपने सिद्धान्त को जहाँ भी आरोपित नहीं किया है । उन्होंने नारी का गें से ही नारी समाज पर होने वाले अत्याचारों पर प्रश्न विद्म लगावाये हैं । "रतिनाथ की चाची" में गौरी चाची की माँ विधवा के अनैतिक गर्भ को संकेत करती हुई विधवा समाज की विद्वेषता पर प्रकाश डालती है ---

"कोई क्या कर लेगा हमारा ? बिटिया को मैं प्याज की तरह जमीन के अन्दर दबाकर नहीं रख सकती इसके चलते जो कुछ हो । जिस समाज में हजारों की तादात में जवान विधवारें रहेंगी वहाँ यही सब तो होगा ।"¹

इन सब कारणों के पीछे नागार्जुन ने अधिका की बहुत बड़ी भूमिका को माना है । वे आधुनिक समाज में नारियों के लिए शिक्षा को अनिवार्य मानते हैं । पढ़ लिखकर स्त्री अपने पैरों पर खड़ी होती है उसमें एक आत्म सम्मान और आत्म निर्भरता अपने आप पैदा होती है । वे समाज में नारों को पढ़ा लिखा देना चाहते हैं --

"जब लड़कियाँ भी लड़कों की तरह पढ़ी-लिखी होने लगेंगी तभी इस मुल्क का उद्धार होगा ।"²

1- नागार्जुन: रतिनाथ की चाची, 1977 [नवीन संस्करण] पृ०- 30

2- बलचनमा- पृ०- 126

इस तरह नागार्जुन ने नारो के बारे में नवीन दृष्टिकोण का प्रारम्भ किया है। उन्होंने समाज की आगे बढ़ाने में इस कर्म की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की है। नारी उनके लिए, माँ, बहिन, साथी और विश्वास दायिका है वह मात्र काम पिपासा को शान्त करने की निर्धारित नहीं है। नागार्जुन नारो के सामाजिक सम्मान के प्रति सजग हैं। नारी समाज पर होने वाला जुल्म उन्हें सह्य नहीं है। वे अन्याय और अस्मानता को करने के लिए अपने इन पात्रों को ^{नी}क्रान्ति भूमिका में प्रस्तुत करते हैं।

शोषित वर्ग के प्रति संवेदना

नागार्जुन का लेखन उन लाखों ~~छद्म~~ गरीब, बे पटे, भूखे, नीचे, भूमिहीन मजदूर, कर्म में डूबे हुए किसानों का लेखन है जो दिन रात जाड़ा, गर्मी, सर्दी, बरसात में मेहनत में डूबे हुए हैं परन्तु जिन्हें पेट भरने की रोटो और तन टाँसे को कपड़े की कलतल तक छुँवना नहीं होती। अपना और अपने बच्चों का पेट काट काटकर जमींदार और साहूकार का कर्ज चुकाने में ही जिनकी जिन्दगी समाप्त हो जाती है, अच्छी चीज खाने के नाम पर सबेरे उन्हें मालिक लोगों की जुठन मिलती है। दो-दो पैसे के लिए जिन्हें हर समय मालिक लोगों के घर पर हाथ फैलाकर खड़ा रहना पड़ता है। बार-बार मालिक की झिड़कियाँ और लात घूँसा ठाकर जिनका जीवन आगे बढ़ता है। डा० प्रकाशचंद्र गुप्त ने ठीक ही कहा है—

“पीड़ितों और शोषितों के प्रति संवेदनशीलता उनकी विचारधारा का प्रधान अंग है। वे निम्न वर्ग के शोषण से मुक्त हैं। धर्मोपदेशकों के अत्याचार और अनाचारों का चित्रण करते समय मजदूरों और किसानों के प्रति दार्दिक सहानुभूति उन्होंने व्यक्त की है।”¹

नागार्जुन ने गरीबी, शोषण और निम्न वर्ग की सामाजिकता का चित्रण “बलपनमा” “बाबा बटेसरनाथ” “कृष्ण के कैं” “पुछ मोचन” में बड़े विस्तार से समीक्षित के साथ किया है। नागार्जुन ने स्पष्ट किया है कि देहाती जीवन में हाथ पैर की मेहनत और खेती से मजदूर और किसानों की किस्मत जुड़ी हुई है। उनके सारे कार्य व्यापार भूमि पर फसल के साथ जुड़े रहते हैं। गाँव का मुख्य व्यवसाय खेती ही होता है इसीलिए मजदूर के लेकर किसान और सूखे मजदूर से लेकर सर्वहारा तक की आशा की निगाहें धरती माँ पर टिकी रहती हैं। नागार्जुन स्पष्ट करते हैं —

“सभी के मुँह पर मुस्कान, सभी की आँखों में कामयाबी की झलक।
जिनकी अपनी फसलें थी, वे भी लुप्त थे, जिनके नहीं थी वे भी लुप्त थे।
गिरहथ, बनिहार, जन-जोनी, कलहर- भिखमंगा सभी के चेहरों पर आशा की रौनक थी। फसलें हुई हैं तो मजदूरी भी मिलेगी, बनिहारी भी।—

1 - डा० प्रकाश चंद्र शर्मा: नागार्जुन जीवन और साहित्य पृ०-247

अच्छी फसलें देखकर महानजन को भी कर्षा देने में उत्साह होता है ।-----
 समय समय पर बाढ़ न बरसे और बाढ़ नहीं आवे तब तो ठीक है,
 नहीं तो छेती हुई चौपट और छेती चौपट हुई तो लोगों के गाल फुट
 जायेंगे, अखि धिसकर अनगढ़ किया बन जायेंगी ।-।

पढ़ते हुए औद्योगीकरण और बिल्डिंग होते हुए ग्रामीण कुटीर
 उद्योग धन्धों से गाँव का मजदूर कर्षा दिन पर दिन तंगदस्ती और बेकारी
 में आता गया । नागार्जुन ने उन गरीबों की, कारीगरों की स्थिति को
 "बाबा बटेसरनाथ" में बाबा के माध्यम से स्पष्ट किया है । कर्षा तरह
 के कर्षा, परिवार में कर्षा उाने वाले और कमाने वालों के पास रोजी का
 ठिकाना न हो वह स्थिति वही ही भयावह होती है ---

"कमार जूते बनाना भूल गए । मोमिनों के पाँच करटे थे तो अब
 एक ही रह गया । चीनी की आमद ने गुड़ के व्यापार को चौपट कर
 दिया । बटन, हुई, आइना, कंघी, उत्तरा और कैंपी----- कपड़े,
 छेती के औजार----- बाहरी माल आ-आकर स्थानीय उद्योग
 धन्धों का गला दबाने लो । तेजी और मंदी के दो पाटों में पड़कर अनाप
 का एक-एक दाना कराह उठा बेटा । अनाप का एक-एक दाना नहीं

गाँव का एक-एक आदमी कराह उठा बेटा । बर्तन में पानी तो पहले ही जितना आता था, लेकिन छेद उसमें एक के बदले अनेक हो गए थे ।"

गरीबी में मजदूर का जमींदार और साहूकार किस तरह गला रेत-रेत कर ओकात वाले बनते हैं "बलचनमा" में दर्शनीय है । देश सेवा का नाटक करने वाले फूल बाबू के पिता श्री ने मजदूरों की नाक में कर्ण देकर ऐसी नकेल डाली है कि उनकी गर्दन सीधी नहीं रहपाती--

"तो कसाई के एक कसाई, न लड़के का मोह न लड़की का, न भाई का मोह न बहन का, न बाप का मोहन न माया का । हाय स्वेया । हाय स्वेया । जब देखो तब स्वेया । ----- ऐसी गृहस्थी थी उनके हाथों में । आस-पास के इलाकों से दुसाध, मुसहर, प्यार, खतबे, पासी, पुनिया, जुलाहा लोगों की बस्तियाँ थी । गृहस्थी के अलावे सुद-व्याज पर दस बीस हजार की वसूल- तलसीत थी उनके हाथों में । मुसीबत के मारे खेत मजदूर, आजकल भोपेट खेतों फिरते हैं । और भ्रष्टा, इन दिनों भी इनका यही हाल था । फूल बाबू के बाप इन्हीं गरीबों की जमीन- जायदाद छप-छपपर कर ओकात वाले बने थे----- पार-पार छे-छे आठ-आठ दस-दस स्वेया देकर वह ऐसी नथान नाथते थे लोगों को कि मरने पर भी बेपारों को छुटकारा नहीं । छोटी जाति वाले

जन बनिहारों के पास होता ही क्या ? बहुत हुआ तो दो चार धर की हीड, दो एक मड़ेया, एकाध बकरी- बाछी । मगर भैया इन कताइयों के पल्ले बेपारों के पास यह सब भी नहीं रह पाता । नीलाम करा लेते हैं । कुर्क हो जाती है । अवालत उनकी, ठाकिम, उनका, धाना- परोगा उनका, पुलित उनकी । गरीबों के लिए त्स्माय लात प्लुता के ओर हे ही क्या ?”

गरीब की मजदूरी के शोषण की हर कहानी नयी होती है । वह बड़े बाबूओं और मालिकों पर बड़ा भरोसा करता है । लेकिन ये धिसे घाघ उसे मजदूरी देने के नाम पर आज-कल आजकल करते हुए अदृश्य हो जाते हैं और उधार खा-खाकर मजदूर अपने कपड़े ही उधार में प्रकृता करके घर वापस आते हैं । यह बड़े-बड़े शहरों कस्बों के ठेकेदारों की कहानी है । नागार्जुन “कूब के छे” में कोसी बांध की शोषण सीता का प्राकट्य दुम्नी नाम के मजदूर से कराते हैं । हर रोज नया ठेकेदार उसका नाम लिखता गया परन्तु मजदूरी का उसे छदाम तक नहीं मिल सका ---

“भूजा फरही की पोटली बांधकर कोसी किनारे गया मैं हतितर कि पस रोज बांध की मजदूरी कूंगा, डाना खोवा निकाल कर कम से कम अठारह आना-बीस आना रोज तो बचा ही लूंगा । चार-छे पून साथ के

के दाने पका-पका कर भूख को जगाता रहा, फिर उधार की छिछड़ी चलने लगी । पहली बार जिस बार जिस बाबू ने नाम लिखा, वह दूसरी बार नहीं मिलता । दूसरे दिन जो भाई काम लेने आये, दो रोप बाद उनका भी पता नहीं । मिट्टी काटते-काटते बारह दिन बीत गए, छवाम का भी दर्शन नहीं हुआ । उधार खाते चावल-दाल-नमक-हल्दी-मिर्ची-ईधम के वाला दूकान दार भला क्यों छोड़ने लगा ? कुशल रखली, टोकरा रख लिया, धोती तक उतरवा ली । कमर से गमछा लपेटे दो दिन, दो रात का भूखा मैं घर के लौट आया हूँ----- इतना कह कर दुन्नी ने लम्बी साँस ली और धरती छूकर दोनों कान छू लिए ।¹

यह अकेले दुन्नी का आत्म कथन और परिस्थिति नहीं है यह उस पूरे तबके का हाल है जो अपना पेट बाँधकर सुबह से शाम तक कड़ी मेहनत करते हुए ठेकेदारों के मुहताब रहते हैं और उनके पल्ले छवाम भी नहीं पहता । डा० ज्ञान चन्द्र गुप्त जी ने ठीक ही कहा है —

“दुन्नी की यह व्यथा कथा जहाँ सरकारी व्यवस्था पर व्यंग्य करती है वहीं ग्राम जीवन की उन परिस्थितियों की ओर भी स्तित करती है, जिसके कारण दुन्नी जैसे अनेक ग्रामीणों को रोजी रोटी की तलाश में घर छोड़ना पड़ता है और अनेक यातनाओं से साक्षात्कार करना पड़ता है ।”²

1- कर्म के डे: पृष्ठ- 41

2- डा० ज्ञानचन्द्र गुप्त: स्वातंत्र्योत्त हिंदी उपन्यास और ग्राम पैला, 1974, पृष्ठ- 170

"बलपनमा" बोगरीबी कर्म और गुलामी का प्रमाणिक दस्तावेज है। उपन्यास कानायक के होश संभालने से लेकर मरने तक कर्म की लपट में सोया है। अर्थाभाव के कारण मालिक लोगों की झूठ जाकर, फेरन फारन पहन कर उसके दिन गुजरते हैं। बलपनमा की माँ रीरियाती हुई इस बात को अपनी मालीकन से कहती है ---

"आप ही का तो आसरा है, नहीं तो हम गरीब जनमते ही बच्चों को नमक न चटा दें। अरे, अपना झूठ उल्लाकर, अपना फेरन फारन पहनाकर ही तो हमारा पर्वपाल करती हैं----- दादी ने मलिकाइन के पैर पकड़ लिए- आज से आप इस निभागे की माँ बाप हुई गिरहथनी। आप का झूठ जाकर इसका भाग चमकेगा"-----।

बलपनमा उन सेकड़ों पेहाती परिवारों के सदस्यों का प्रतिनिधि है जहाँ कभी तन टकने को कड़े नसीब नहीं होते। जाड़े की हर रात इनके लिय प्रलय की सूपक होती है। गुकड़ी-कथड़ी भी उनका साथ नहीं देती। वह ठन्ठ से बपने के लिय मालिक लोगों के कोल्हू पर रात बिताने के लिय पल देता है ---

"गाँव के बाहर जाड़े के दिनों में हर सप्त मालिकों का कोल्हू गड़ता। उनके यहाँ गन्ने की खेती कम नहीं होती। मैं अपनी छोटी

बहन को लेकर रात को कोल्हू ^{आँसू} ~~जल~~ में डी बिताया करता ^{गरीब} ~~बड़ा~~ ठा-ठा कर पेट भर लेना और भूटी की अँप से गरमा कर सो जाना । डेढ़ दो महीने हर साल जाइयों में हम ऐसा ही करते ।¹

गरीब और अमीर कैसे जीवित रहते हैं । एक के स्वास्थ्य सूखने और दूसरे का हरा बना रहना स्वाभाविक है । उत्पत्ति वह पोधा है जिसकी जड़ें तबैव निम्न कर्मा में जमी रहती हैं वह उसे घुस-घुस कर ~~बाँटा~~ ^{बाँटा} बना देता है । बलपनमा की स्थिति पर यह सद्योक्ति उस पूरी व्यवस्था पर दृष्टिपात करती है जिसमें यह बिरवा पनपता है—

“अच्छा तो भावान करते ही हैं १ चार परानी का परिवार छोड़कर मेरा बाप मर गया, यह भी भावान ने ठीक ही किया भूख के मारे दादी और माँ आम की गुठलियों का गूदा- घूर-घूर कर फाँकती थीं, यह भी भावान ठीक करते थे । और मालिक लोग ककणीर और जलतीपूल के छबूवार भात, अरहर की दाल, परवल की तरकारी, ची, पड़ी, चटनी खाते थे तो यह भी भावान की ही लीला थी ।”²

नारी की कथनीय स्थिति को भी नागार्पण पूरी तरह परिचित है । जानवरों की तरह उनकी नीलामी अनमेल वरों के लिए विक्रयानुत्ती अभिभावक धन और स्वार्थपूर्ति के लिए बेइश्वक करते हैं । वह अपने जीवन

1- बलपनमा: पृष्ठ 12-13

2- वही: पृष्ठ 18

पर फिर रात भैतिकता और आर्का के नाम पर आँसू बहा बहाकर अपने
हृदय की इच्छाओं को जहर की तरह घूट घूट कर पीती रहती हैं ।
रतिनाथ की चाची का वक्तव्य उस व्यवस्था को सामने प्रस्तुत कर रहा है-

"गाड़ी पली जा रही थी, टपर-टपर-टप । गौरी उसी पर लेटी
पड़ी थी । आकाश से पाँव अमृत बरसा रहा था । हौले-हौले हवा चल
रही थी । चारों को एक-दूसरे से दूर-दूर देखकर उसे फिर एक बार अपने
सकाकी जीवन का ज्वाल आया स्त्री और पुरुष, पुत्र्य औ स्त्री । एक
दूसरे के पूरक हैं । एक दूसरे से रहित कुछ नहीं है ----- इसके बाव
गौरी को वह व्यक्ति याद आया जिसके हाथ में आज से बाईस साल
पहले वैदिक जी ने यह हाथ ध्मा दिया था । फिर उसे अपना अभाव-
अभ्योग ग्रस्त वह दाम्पत्य जीवन याद आया जो इस गाड़ी की भीति
टपर-टपर कुछ किन्हीं धेरे-धेरे चलता रहा । इस गाड़ी के भी दो बेल
बराबर नहीं हैं, उनकी भी जोड़ी ऐसी ही विषम थी" -----

"नई पोथ" की पंद्रह वर्षीया अनोध बातिका को सत्तर वर्ष का
पर मिथिलापत की दूल्हों की पेठ "सोरठ" से नौ तो त्पस में तप होकर
चला आ रहा है । बितेसरी को पता चलता है तो उसके बदन में काटे
खून नहीं रहता ---

1- रतिनाथ की चाची: पृ०सं०- 60

2- नई पोथ: पृ०सं०- 25

“बिसेसरी बेखबर नहीं थी । उसे अच्छी तरह पालूम था कि नाना आज रात एक कसाई को ला रहे हैं, धूमधाम से अपनी नतनी का प्रियकर कराएंगे----- जब से उसने छूटे वृत्ते की बात सुनी है तब से उसकी कसेजी भुन रही है । अब तक अपनी बेफेनी को वह जकट किस हुर थी, इसके बाद धीरज ने जवाब दे दिया । तन मन की समूची ताकत बटोरकर उसने पेरों को लहलहाने से बचा लिया, यही क्या कम था ? ----- वह अपने आप में झुझने लगी कि बूँद भर भी आँसु गिरने नहीं पाये ।”

अन्मेल विवाह पारों के लिए पानी में आग की तरह है । वह बचपन की एक कहानी को अपने वैवाहिक जीवन से जोड़ती हुई अपने पिता वृत्त्य पति पर आँसु बहाती है -----

“जोर जबर्दस्ती कोई किसी के शरीर पर ही केपल कर सकता है, मन पर कतई नहीं। ऐसे आप ही कहिए कि जहाँ पचास वर्ष के घर की पत्नी झुंझ ताल की होती हो, वहाँ सोमनस्य कैसे संभव है ? बहुत छोटी ही थी मैं जब मामी के झूठ से एक कहानी सुनी थी । उसमें हुआ यह था कि किसी पोखरे में आग लग गयी । उन दिनों यह बात अभीब लगती थी । पर अब अच्छी तरह समझती हूँ कि कैसे आग लगती है पानी में-2---

नागार्जुन के शोषित बाग्र निम्न वर्ग और मध्यम वर्ग दोनों ही वर्गों के हैं । उन्होंने शोषण की चक्की में पिस्से वाले व्यक्ति की तस्वीर अपनी

कृतियों में प्रस्तुत की है जाति विरोध की नहीं । वे शोषण और अन्याय के किसी भी स्तर पर पक्षीर नहीं हैं । "कलयन्मा" में गरीबों की विधवा ब्राह्मणी फूटन मिसर की विधवा मझसे मातिका की गिरहयनी की चक्की में पिस रही है नागार्जुन उसे भी सामने रखते हैं । वह विधवा, मातिका के कम तोलने और ज्यादा वसूलने पर बिलीबिला कर "बदले हुए बटखरे का संकेत देती है ।

इस तरह नागार्जुन ने समाज के उन दबे पिसे लोगों, कर्जों को लिया है जो दिन प्रति दिन अभाव और तंगी में जीवन यापन कर रहे हैं। वे अपने लेखकीय संसार में इन सभी को साथ लेकर उनकी समस्याओं से जुड़ रहे हैं ।

प्रगतिवादी चिंतन

नागार्जुन अस्मान समाज के ध्वंसक हैं । वे अत्याचार और शोषण को मानवता में लगा हुआ छून कट कर पुकारते हैं । गरीब और मूक जनता के लेखक, ग्राम कवि, सर्वहारा के हिमायती आदि विशेषणों से वे हिंदी जनता में जाने जाते हैं ।

वास्तव में नागार्जुन की कृतियों में अभिव्यक्त है प्रगतिवादी चिन्तन का परिणाम है । वे मानव समाज पर मानव द्वारा किए गए

बुद्धि को समाप्त करने में अपने लेखन की धार को निरंतर पेनी करते रहते हैं। सामाजिक अस्मानता उनके हृदय में फाँस की तरह हर समय करकती रहती है ---

“घर परिवार, समाज और देश की जो समस्याएँ आम जनता को ताल रही हैं- मसलन गरीबी, भुखमरी, जमीनों का दुरुप लिया जाना, अनमेल विवाह, छोटी जातियों के प्रति बड़ी जातियों की शोषण सूखी चतुराइयाँ, झूठों और रिश्तों की क्षणीय सामाजिक स्थिति, हिन्दुस्तानी जनता के अंध विश्वास और उनकी आद में घनपते ढोंगी साधु-मठात्मा गण, अनाथाश्रमों के रूप में चलते हुए झूठाचार के अड्डे, कृत्रिमी नेताओं की स्वार्थ परायणता और उच्च वर्ग के हितों का संरक्षण, नकली समाजवाद जन विरोधी बुद्धिजीविता आदि न जाने कितनी ऐसी बातें हैं जो सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि वाले साहित्य के लिए विचारणीय हैं। एक सच्चे देश-प्रेमी लेखक के लिए ये बातें कितनी पीड़ादायक हैं, इसे पढ़कर ही जाना जा सकता है। उनके जीवन अनुभव का यही यथार्थ है जो बार-बार उन्हें कलम धामे रहने को मजबूर करता है।”

नागार्जुन का साहित्य सम्ये अनुभव और गंभीर चिन्तन का परिणाम है। उनकी राजनीतिक और सामाजिक समझ बड़ी पेनी है। वे गति और

देहात के पक्षधर लेखक हैं । इसीलिए उनकी कृतियाँ अति साधारण हैं । उन्होंने सामान्य से विशेष की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट किया है । उनकी इस साधारणता में कर्ष और गुलामी से छूटने वाले नागरिक हैं जोकि परिवेश और परिस्थितियों में जीते हुए मर रहे हैं मरते हुए भी डट रहे हैं । मधुरेश का यह कथन उनकी इसी रुझान का संकेत है —

“नागार्जुन की सबसे बड़ी उपलब्धि ही यह है कि उन्होंने साधारण जनता के अति साधारण परिवेश में सै ही संघर्ष के मुद्दों की तलाश की । और उसमें उस क्रान्तिकारी चेतना की ज्योति अगार्ह जिसका इस पूरे दौर के साहित्य में बड़ा क्लृप्त प्रभाव दिखाई देता है ।”

नागार्जुन की इस साधारणता के कला क्षेत्र बिहार अंचल के रामपुरा मछपूरा, बरहमपुरा सितल पट्टी, मलाही गोदियारी, मुँकर पुर, तरहसवा, स्पडली, सुन्दरपुर गदिया आदि हैं जो कि उनके कथा नायकों के चेतना केन्द्र रहे हैं । इन गाँवों में कहीं कर्ष और गुलामी से पिसते मजदूर हैं तो कहीं दोस्त की भूख मिटाने वाले लपकोर जमींदार हैं । कहीं राजनीति को आमकनी का जरिया बनाने वाले जन नेता हैं तो कहीं आकर्षण और नैतिकता की धोयी जूजीरों में कसी बीसियों पिपपार अपने भाग्य को कोस रही हैं । अतः इन सब घटित व्यापारों को उन्होंने

एक सविनशील रचनाकार होने के नाते बड़े विस्तार से लिया है। अपनी इसी सविनशीलता के कारण उनके पात्र पाठक के बहुत अधिक निकट आ जाते हैं। और "बलपनमा" में तो यह सविनशीलता नेकदम इतना है कि नायक पाठक की कसम खा-ठाकर अपनी कहानी कहने लगता है ---

"शाही फकीरों की लीला अपरमपार होती है। यह ओटर तुम पर अगर दर जाय तो कसम तुम्हारी, तुम्हारे सकेस पुरखा का उद्धार कर देगी।"¹

अपनी इस सविनशीलता के कारण वे विख्यात कवि हुसयी भी हैं। श्री आनंद प्रकाश ने उनकी इस सविनशीलता पर टिप्पणी करते हुए कहा है ---

"लेखन में जितना राजनीतिक और समाज सापेक्ष होना संभव है, नागार्जुन ने उस सीमा बिन्दु को बार-बार हुआ है। इसके अतिरिक्त वर्तमान दौर की जनवादी राजनीति के विभिन्न स्तरों की परस्पर टकरावट को भी एक सविनशील रचनाकार की भाँति उन्होंने अपने लेखन के विभिन्न स्तरों पर निरंतर छूँछल किया है और उस पूरी प्रक्रिया को अपनी रचना में प्रायः सही सही उद्घाटित किया है।"²

नागार्जुन कीर्ण्य चेतना के लेखक हैं। उनकी रचनाओं में वर्ग शत्रु और कीर्णमित्र आसानी से देखे जा सकते हैं। अपने-सहज और सचेत हुए लेखन के कारण उन्होंने अपने पाठक को कहीं भी भटकने का अवसर नहीं

1 - बलपनमा: पृष्ठ 107

2 - आनंद प्रकाश: "एक परिचय" संपादित तिर्तबर, 77 जन 0-78 पृष्ठ 0-1

दिया । उनकी तमाम औपन्यासिक कृतियों में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक घेतना के स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं । उन्होंने किसान और जमींदार मजदूर और मातृक पूँजीपति और सर्वहारा, पीत और पत्नी, मठ और मंडित के आपसी रिश्तों और तनावों की कड़ी गहराई से लिखा है । उन्होंने अस्मान व्यवहार के कारण ही अपने छद्म और संघर्षशील पात्रों को आगे किया है ।

जमींदार और किसान के बने बिगड़ते सम्बन्ध नागार्जुन ने गाँव में जाकर खूब देखे हैं । जमींदारी उन्मूलन के बाद जमींदार अपनी प्रभुता को बनाए रखने के लिए फाजिल जमीन, बाग, पोखर और चरागाहों को घुपके घुपके नीलाम करा रहा है । इसके लिए नागार्जुन के किसान कान में तेल डालकर नहीं बैठे रहते हैं । वे जमींदार की इस ओछी नीयत का मुकाबला एक संगठन के माध्यम से करते हैं । वे अपने जैसे अनेकों शोषितों को साथ लेकर आगे आते हैं । आज के अकेले दबे हुए किसान नहीं है उनके साथ एक घेतना सम्वन का भी है जो उन्हें तैयारिस्तिक सम्वन देता है ।

"बलचनमा" में मजदूर गाँव के जातिम जमींदार साहूत्ता खाँ के अत्याचार के खिलाफ किसान-सभा का उद्घोष जमींदारों के अस्तित्व को मिटाने की छुत्तात में एक तबकत कयम है ---

"सर्मा जी ने समझाते हुए कहा- जमींदार बड़ा पर्यपी, बड़ा जातिम होता है । अड़ठत [अव्यक्त] तो पहले वह तुम्हारे अंदर आपस ही में फूट

डालने की कोशिश करता होगा, ----- अफसरों से मिलकर वह तुम लोगों को जेल भेजने की कोशिश करेगा----- सम्मन, नोटिस, वारंट, सजा- सब हो सकता है । मगर खबरदार, अपने छेत्तों छेत्तों से न डटना । भुलावे में न पड़ना और कचहरी जाने की गलती न करना । पुलिस और हाकिमों से साफ-साफ कह देना कि इन्हीं छेत्तों की जेल बना दीजिए, हम पड़े रहेंगे, मानेंगे नहीं । उस जेल में ले चलना है तो सबको ले जाइए ----- बाल बच्चे, जवान बूढ़े, मर्द-औरत, गाय-बैल, भेड़-बकरी, कुत्ता-बिल्ली, घुल्ला-यक्की----- हमारी सभी चीजें साथ जायेंगी सभी हम जेल जा सकते हैं । नहीं तो टस से मस नहीं होंगे----- जो करना है । यहीं कीजिए ----- फिर देखना कौन तुम लोगों का कैसे कर्ड़ा ले जाता है । अगर तुमने मेरी ये बातें मान लीं और डटे रहने का निश्चय कर लिया तो फिर तुम्हारे छेत्तों पर से तुम्हें हटाने वाली कोई ताकत इस दुनिया में नहीं है । जमींदार, सरकार, पुलिस, गुण्ठे----- सभी धक के बैठ जायेंगे । -।

नागार्जुन की इसी विचारधारा को समाजवादी विचारधारा के नाम से जाना जाता है । ये शोषितों का साथ देते हैं । उन्हें सीख देते हैं कि अधिकार के लिए लड़ना कर्तव्य है । सब समान है कोई किसी को दबा कर नहीं रख सकता और यदि ऐसा होता है उसके अन्याय के खिलाफ उसे अपनी आवाज उठानी होगी अन्य शोषित भी इकट्ठे होकर उसे गति देंगे ।

"कृष्ण के छे" उपन्यास में नागार्जुन ने इसी समाजवादी चिन्तन पर संघर्ष का खेल उन मछरों के बीच खेला है जिनकी रोखी रोटी को जमींदार अपने बाघी घंजों से छीनकर स्वयं निगल जाना चाहता है। मोहन मांझी और मधुरी जैसे नायक और नायिकाएँ मछरों की जिन्दगी को नया मोड़ दे देते हैं। वे अपना "मछुआ संघ" बनाकर अपनी जीविका की तमाम समस्याओं को क्रुतापूर्वक सुझाते हैं। जालिम जमींदार द्वारा गढ़ पोखर बंदे जाने पर छुट मछुआ गौनड तैल में आकर स्पष्ट कहता है ---

"यह पानी सदा से हमारा रहा है, किसी भी हालत में हम इसे छोड़ नहीं सकते। पानी और माटी न कभी बिके हैं, न कभी बिकेगी। गरीबर का पानी मामूली पानी नहीं, वह तो हमारे शरीर का लहू है। जिन्गी का निचोड़ है।"¹

और पूरा का पूरा मछुआ समाज अपने इस अधिकार को स्मर्थन देता हुआ उसे अपना हक मान रहा है ---

"सभी एक मत थे छोड़ा नहीं जाये। गढ़ पोखर पर हमेशा अपना अधिकार रहा है। जमींदार जलकर लेता था, हम पेतें थे। नया खरीद वार दूसरे तीसरे गाँव के मछुओं को मछलियाँ निकालने का ठेका देता। पलेगा और हम अपने घुरलेली अधिकारों से जीवित होकर रुलते फिरेंगे, भला यह भी क्या मानने की बात है।"²

1- कृष्ण के छे : पृष्ठ 31

2- वही : पृष्ठ 31-32

इन मछरों में गणब की धेतना है । वे अपने संघ का संबंध "किसान-सभा" से जोड़ लेते हैं । उन्हें ज्ञात है कि मजदूर गरीबों शोषित किसानों का भला अब वे अपने आप ही तलाशेंगे उन्हें अपने संगठनों के बलबूते पर ही इस झूट समाज की गिराना होगा । वे किसान सभा में अपने संगठन का उद्घोष करते हैं ----

"एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा गढ़ पोखर के तथा कथित नर मातियों को यानी साधारण के जमींदारों को सम्मेलन में आगाह किया था कि वे दूध की आवाज को अनसुनी न करें, मलाही — गोठियारी के मछरों को गरीबों से मछिलियाँ निकालने के पुत्रेनी हकों से वंचित करने की उनकी कोई भी साजिश कामयाब नहीं होगी । रोजी रोटी के अपने साधनों की रक्षा के लिए संघर्ष करने वाले मछर, अस्थाय नहीं हैं उन्हें आम किसानों और धेत मजदूरों का सक्रिय समर्थन प्राप्त होगा"।-----

ये मलाही गोठियारी गाँव के मछरे वास्तव में नागार्जुन के आत्मीय हैं । बाबा नागार्जुन इनके हक के लिए धेपेन है । डा० कुंवर पाल सिंह की मछरों की समस्या और जन-धेतना पर अपनी आलोचनात्मक टिप्पणी से उनके सामाजिक पक्ष का उद्घाटन है जहाँ से उनके संघर्ष के सूत्र विकसित हो रहे हैं ---

मसाही गोदियारी के छोटे से ग्रामांचल की ये समस्याएँ महान भारत की समस्याएँ हैं जिनमें भूमि व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था और राजनीति भी संश्लिष्ट है। समस्याएँ और अवरोध किस प्रकार जन-चेतना को जन्म देते हैं, इसका यथार्थ चित्रण तो इस उपन्यास में है ही, साथ ही शोषण से भरपूर समाज के साधन के रूप में समाजवादी समाज व्यवस्था के सुन्दर रूप को भी लेखक ने प्रस्तुत किया है। लेखक जहाँ से भी निराश और कुंठित नहीं है और केवल हवाई कल्पनाओं के स्वप्नील ताने बाने बुनता है, वैज्ञानिक समाजवाद में आस्था व्यक्त करता है।¹

किसानों और मजदूरों के ऊपर होने वाले अमानुषिक व्यवहार और यातनाओं का नागार्जुन हटकर मुकाबला करते हैं। नागार्जुन संगठन को महत्व देते हैं जो कर्षिय चेतना का प्रमुख आधार होता है। ऊँच-नीच का भेद भाव उनके यहाँ नहीं है। उन्होंने कर्षिय समाज की महत्ता पर जोर दिया है। डा० सुष्मा धवन ने उनके इस चिंतन को समाजवादी चेतना का प्रेरक रूप माना है ---

“नागार्जुन की कथा द्वितीय समाजवादी उपन्यास की श्रेणी में विन्यस्त की जाती है, परन्तु वे समाजवादी सिद्धान्तों के प्रचार के बोझ से वही मुई नहीं हैं। लेखक ने अपनी रचनाओं में तीथे लोक जीवन से रस ग्रहण किया है और मिथिला भूमि के वास्तव्यों को सजीव रूप दिया है-----

1- डा० कुँवरपाल सिंह: द्वितीय उपन्यास-सामाजिक चेतना-पृष्ठ 156

नागार्जुन ने एक ओर मार्क्सवादी सिद्धान्तों को आत्मसात किया हुआ है और दूसरी ओर देहाती जीवन का उनको गहरा व्यक्तिगत अनुभव है तथा उससे उनका घनिष्ठ संबंध है। इसलिए वे यथार्थ के क्रान्तिकारी पक्ष को पहचानते हैं तथा जीवन की उन शक्तियों को उभारते हैं जिनसे समाज में विषमता दूर होगी, रुढ़ियों का नाश होगा और मानव का विकास होगा।¹

सामाजिक शोषण के विरुद्ध भी उनके नायक बड़े सतर्क हैं। अपनी बहिन बेटी की इज्जत आकर जिसे जमोंदार लोग खिलौना समझते रहे हैं वे उसका अब हटकर विरोध करते हैं। जमोंदार द्वारा रेबनी के साथ होने वाले बलात्कार पर बलघनभा तिलमिला जाता है। वह सीना खोलकर मालिक के सामने आता है —

बेशक। मैं गरीब हूँ तेरे पास अपार संपदा है, तुस है खानदान है, बापदादे का नाम है, अहोस-पड़ोस की पहचान है, पिता जवार में मान है और मेरे पास कुछ नहीं है। मगर आखिरी कम तक मैं तेरे खिलाफ हटा रहूँगा। अपनी सारी ताकत को तेरे विरोध में लगा दूँगा। माँ और बहिन को जहर दे दूँगा लेकिन उन्हें तू अपनी रखेली बनाने का सपना कभी पूरा न कर सकेगा²-----

1- डा.0 सुष्मा धवन: हिन्दी उपन्यास- 1961 पृष्ठ 0- 302

2- बलघनभा: पृष्ठ 0- 82

इस सामाजिक चेतना में गाँव की महिलाएँ भी शामिल हैं वे नारी का पर होने वाले अनैतिक अत्याचार का हटकर विरोध करती हैं । और समाज के चमकने वाले आदर्श पर बहुत बड़ा प्रश्न चिह्न लगाकर उसे निरुत्तर कर देती हैं । "रतिनाथ की चाची" की गोरी की माँ ऐसी ही नारी चरित्र है । विधवा जीवन से होने वाले अनैतिक गर्भ के खिलवाड़ पर वह सीधे मुँह जवाब देने लगती है ---

कोई क्या कर लेता हमारा ? बिटिया को मैं प्याज की तरह जमीन के अन्दर दबाकर नहीं रख सकती, इसके फलते जो कुछ हो । जिस समाज में हजारों की तादात में जवान विधवाएँ रहेंगी, वहाँ यही सब तो होगा ।¹

इस प्रकार नागार्जुन का वैचारिक दृष्टिकोण गाँव और देश के बीच विकास को उभरने और उठने की ओर है । उन्होंने काँचिडीन समाज की कल्पना भारत के पूरे बसने वाले गाँवों में की है । निम्न और आर्थिक दृष्टि से डेढ़ सप्ते जाने वाले लोगों को उन्होंने सार्वजनिक सम्मान का पात्र बनाया है । वैचारिक धरातल को मजबूत करने के लिए उपेक्षित गाँव की समस्याओं को सुझाकर उन्हें समाधान प्रदान की है । नागार्जुन निम्न काँच के हिमायती हैं यह उनके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों में साफ झलकता है ।

तृतीय अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में विव्रित सामाजिक संघर्ष

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक संघर्ष

आज का दैनिक जीवन भौतिक आवश्यकताओं की जकड़ में दिन पर दिन कसता जा रहा है। सीमा और सामर्थ्य दोनों ही अपनी-अपनी परिधि को विस्तार दे रही हैं। बढ़ती हुई मँहगाई और मुद्रा स्फीति से विकासशील भारत की समाज व्यवस्था दिन पर दिन चरमराती जा रही है। शहरों में जहाँ पढ़े-लिखे बे-रोजगार नई असामाजिकता को जन्म दे रहे हैं तो गाँव में अब भी अशिक्षा अपने डेने फैलाकर उसे संकीर्णता में कसती जा रही है। श्रम का महत्त्व किराँतों-दिन गिरता जा रहा है। बेकारी सुरसा के मुख की तरह आकारहीन होकर समाज में नई-नई विद्रोहताओं को जन्म दे रही हैं। संयुक्त परिवार का बिछराव और अकेले छोटे परिवार की कृष्ठा ने व्यक्ति को बौना बना दिया है। गाँव के मजदूर का शहर की ओर पलायन, छोटे-छोटे बच्चों का कारखानों में काम करना, रिक्शा चलाना, बेलवारी करना, बोझा ढोना आदि उनके स्वास्थ्य में तो हानिकर हैं ही साथ ही साथ उससे नई पीढ़ी की पंगुताभी स्पष्ट होती जा रही है। धीरे-धीरे, आदिवासीयों के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम तो बने हैं लेकिन उनके कार्यान्वयन का स्वल्प आये कि दैनिक पत्रों में उनके ऊपर होने वाले जुल्म, ज़िन्दा जलाना, महिलाओं के

साथ बलात्कार, मंदिर प्रवेश पर हत्या तथा घरों की लूट आदि से बिना किसी नागा हुए देखा जा सकता है ।

आज भी आजाद भारत में मजदूरों का एक बहुत बड़ा भाग बंधुआ मजदूरों के रूप में जी रहा है । बड़े-बड़े लोगों के यहाँ गुलामी करने वाले ये निरीह चुनाव के समय पर ही दस-दस और बीस-बीस परिवारों की संख्या में मुक्ति पाते हैं । इनके भाग्य का फैसला भी संसद के चौधरीयों के साथ जुड़ा हुआ है ।

खेती और कल कारखानों में एक ओर उत्पादन तो बढ़ा है लेकिन उसका लाभ बड़े आदमियों वाले एक विशिष्ट वर्ग को ही मिल रहा है । सरकारी सुविधाओं और रियायतों का पूरा-पूरा लाभ उच्च वर्ग ने प्रत्यक्ष रूप से उठाया है । डॉ० कुंवरपाल सिंह नेइस वर्ग की भूमिका पर लिखा है —

“इस आधुनिकीकरण के फलस्वरूप देहातों में एक ऐसे वर्ग का विकास हुआ है जिसका परित्र कई दृष्टियों से नया है । इस नए उभरे वर्ग में भू-स्वामीयों और पूँजीपति दोनों के सम्मिलित गुण दृष्टिगोचर होते हैं । जिसमें पुराने जमींदार की कुटिलता, पूँजीपति वर्ग की चतुराई और निर्ममता का मिश्रण है । अपना काम निकालने में सिद्धहस्त यह वर्ग देश की राजनीति और सम-सामयिक जीवन को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है ।”

आजकल यदि गरीब के घर में इजाफा हुआ है तो वह गरीबी का ही हुआ है। बढ़ती हुई महंगाई ने उनके चलने के घुटने और सोने की कमर दोनों तोड़ दिये हैं। अतः वह दिन रात महंगी की मार से बिलीबिलाता हुआ हर रोज सहक के थोराहों पर, फुटपाथों पर पथराई अछि लिस देखा जा सकता है। इस संबंध में श्री ई० एम० एस० नम्बूदरीपाद की यह टिप्पणी विचारणीय है जिसमें बढ़ती हुई अमीर और गरीबी को रेखांकित किया है —

“अगर कृषि वर्ष 1973-74 को लेकर इस बढ़ोत्तरी के असर का मोटा हिसाब किताब किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि बड़े जमींदारों को एक हजार करोड़ रूपय से भी ज्यादा का फायदा हुआ होगा। इसी तरह का भारी फायदा आटा मिल मालिकों और थोक व्यापारियों को हुआ था। दूसरी ओर, आम लोगों को गेहूँ या चावल खरीदते वक्त, सरकारी वितरण प्रणाली से भी और छूले बाजार में भी बड़ी हुई कीमतें चुकानी पड़ती थीं। इसीलिए यह क्वम भी अमीरों को और अमीर तथा गरीबों को और गरीब बनाने का एक साधन ही साबित हुआ।”¹

इस टूटन और छूटन के बीच झूलता हुआ गाँव भी एक नए समाज की संरचना कर रहा है। नागरिक जीवन से दूर अपनी ही सीमा और सामर्थ्य में चलने वाले पेटाती अंगत कुंठित, थकी, लूट कर गुजरने को छटपटाती मानसिकता को जन्म दे रहे हैं जिससे उनके मन में अधिकार बोध की ज्वाला उठ रही है। गाँव की स्थिति आज भिन्न रूप में दिखाई दे रही है। जमींदार, भूस्वामी, सूबखोर महाजन, नेता आदि अपनी कम

1 ई० एम० एस० नम्बूदरीपाद: समाजालीन भारत 1981, पृ. सं 97-98.

तावात में होते हुए भी एक बहुत बड़े मेहनतका कर्म को दिग्भ्रमित करने पर तुले हैं तो दूसरी ओर निम्न कर्म प्रगतिशील विचारधारा का सहारा लेकर संघर्ष के माध्यम से स्वाभिमान का जीवन जीने के लिए कृत संकल्प है । डा० ज्ञान चन्द्र गुप्त की इस स्थिति पर वही मार्मिक टिप्पणी है--

“मूल्यों का मूल्यों से पारस्परिक संघर्ष इस नवीन दृष्टि का द्योतक है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परस्पर विरोधी मूल्य एक दूसरे से टकरा-टकरा कर टूट रहे हैं और कहीं तोड़ रहे हैं ।”¹

औद्योगिक क्रान्ति ने ग्रामीण भारत की अर्ध-व्यवस्था और सामाजिक संगठन को झुकाकर कर तोड़ दिया था । आधुनिकता की नकली चोड़ में यहाँ की तमाम पारंपरिक मान्यताएँ बिखर गईं । नवीन समाज व व्यवस्था के अस्तित्व में आने के कारण भारत के देहाती जीवन में एक नया संघर्ष का वातावरण बनता चला जा रहा है । तेजी से उभरते हुए व्यक्तिवाद ने पुराने मूल्यों पर प्रश्न चिह्न लगाकर नयी कर्णिय भावना को अस्तित्व में ला दिया है । डा० कुंवर पाल सिंह की इस बदलते हुए आधुनिकीकरण पर यह सार्थक टिप्पणी झुटव्य है --

“भय और आशंका से पीड़ित समाज में मानव मूल्यों और स्वस्थ सामाजिक विकास की अपेक्षा करना संभव नहीं है । इसी कारण हमारे बड़े औद्योगिक नगरों में एक धक्काभार संस्कृति विकसित और पल्लवित हुई है । इस व्यवस्था में व्यक्ति को पिछड़ा की आँख लगी अपनी प्रगति और केवल स्वयं का स्वार्थ ही दिखाई देते हैं, और उसी को बेधने का वह जीवन भर प्रयास करता रहता है । फलस्वरूप उस पेड़ के संतुर्ष परिरक्षा और

1. डा० ज्ञानचंद्र गुप्त : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम-जीतना पृ. सं 89.

वातावरण से बिल्कुल बेखबर व्यक्ति और समाज का सामान्य संतुलन और व्यवहार गड़बड़ा गया है ।¹

इस समूचे नवनिर्मित समाज में ग्रामीण जीवन भी बुरी तरह फँस गया है । नागरिक जीवन का यह व्यक्तिवादी और स्वार्थी संक्रामक रोग देहात को अपनी लपेट में लेकर उसके तमाम बुनियादी विषयों को उठाड़ रहा है । उसमें इस असमानता से जनित परिस्थितियाँ अस्पष्ट कहे जाने वाले देहाती की टकराव का रास्ता सिखा रही हैं—

“पूतरे रूप में शहरी मूल्य गाँव में प्रीकट हो रहे हैं । गाँव समाज में रहकर भी व्यक्ति अकेलापन अनुभव करता है । नैतिकता टूट रही है । ईमानदारी और सत्य के बदले बेईमानी और झूठ गाँव में प्रवेश कर रहा है । संरास, कुंठार, छुटन धीरे-धीरे ग्रामीण परिवेश का सामाजिक अंग बन रही है । भौतिकता, जीवन की सामूहिकता को तोड़ गाँव को रव संयुक्त परिवारों को विघटित कर रही है । जीवन की सामाजिक ईकाई का व्यक्तित्व खींचत हो रहा है ।”²

इस बिगड़ते हुए सामाजिक असंतुलन में ग्रामीण समाज के अंतर्गत जन चेतना भी बड़ी तेजी से बनप रही है । अपने अधिकार और हक के लिए देहात के मजदूर और किसान ने, परिवार की शोषित महिला ने, पूँजीपति के मातहत सर्वहारा ने सुपखोर के खिलाफ गरीब ने अपना सिर उठा लिया है । अतः इस बदलते हुए ग्रामीण जीवन के संघर्ष के स्वरूप को

1- डॉ० कुँवरपाल सिंह: हिन्दी उपन्यास-सामाजिक चेतना, पृ०- 152 पु.सं०

2- डॉ० ज्ञानचन्द्र गुप्त: स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना-91

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनकी प्रत्येक औपन्यासिक कृति ओकों सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों का परिणाम है।

नागार्जुन के उपन्यासों में आधुनिक ग्रामीण परिवेश में व्यक्ति के जीवन के विभिन्न स्तरों पर संघर्ष और टकराव टूटन और बिखराव के स्वर सुनाई पड़ते हैं जो निम्नवत् हैं —

आधुनिक जीवन का यथार्थ और नैतिकता के बिखरते मानक

स्वतंत्रता के बाद भारत के गाँव के जीवन स्तर का स्वल्प अपने परंपरागत समुदायवादी दृष्टिकोण से अलग होता जा रहा है। आज के गाँव का प्रत्येक व्यक्ति तत्काल सय में जी रहा है। समाज के तमाम आदर्श और नैतिकताएँ उसके लिए मात्र खिलौना बनकर रह गई हैं। उसके समक्ष वह है और उसके स्वयं के बनाए हुए आदर्श और इससे इतर कुछ भी नहीं--

"उसके सामने प्रतिष्ठित सत्य एवं स्वीकृत नैतिक मानक ठूठे पड़ गए हैं और न केवल समाज के प्रति वह नु स्वयं अपने प्रति विद्रोह करने के लिए आह्वान है, प्रयत्नशील है। उसके लिए हर संदर्भ अर्थहीन हो गए हैं और सारी नैतिक मान्यताएँ, बल्कि सारी की सारी आधार संरचनाएँ खोखली एवं खर्ब पड़ गई हैं। जितना ही वह सार्थकअर्थ प्राप्त करने की करता है उसमें व्यर्थता का बोध गहराता जा रहा है और वह अस्मर्थ होता जा रहा है।"

इसी असमर्थता को समर्थ बनाने के लिए वह दिन रात अपने से जुड़ रहा है। वह अपने सफर का अकेला राही है इसलिए उसे रास्ता और लक्ष्य स्वयं तलाश करने होंगे। "उग्रतारा" उपन्यास में नागार्जुन ने इस अपने को जीवित रखने वाले आधुनिक जीवन यथार्थ के मुद्दे को कामेश्वर की भाभी के माध्यम से सँकेत कर दिया है --

"देहात में रहना है तो गुण्डा बनो कामेश्वर। गुण्डों से दोस्ती करो, उन्हें खिलाओ पिलाओ। तुम उनका काम करो वे भी तुम्हारा काम करेंगे।"।

इसी उपन्यास में भूदान आन्दोलन में मिली जमीन पर बेदखली के कारण संघर्ष ने दूसरा रूप प्रस्तुत किया है। कठोर मेहनत से उत्तर और बंजर जमीन को उपजाऊ बनाकर जिस व्यक्ति ने अपने जाने योग्य बनाया उसे पुनः धान में देकर छड़पना नीयता और धैर्यमानों का दूसरा उदाहरण नहीं हो सकता। परन्तु वह व्यक्ति इस अन्याय के प्रति गह्रासा उठा लेता है और उसकी धेल हो जाती है परन्तु अन्याय को फिर भी सहने के लिए तैयार नहीं है सिमाही भभीख सिंह के मुँह से यह सत्य स्पष्ट होता है --

"इस उधेड़ केदी को भभीखन सिंह बहुत मानते थे। जमीन की बेदखली के खिलाफ उसने जमकर लड़ाई लड़ी थी। भूदान में मिली उबड़-ठाबड़ जंगली जमीन को उसने खेती के लायक बना लिया तो पुराने भूदानी

की सार टपकने लगी । फिर से कहीं रुंदी जमीन देकर वे उससे अच्छी जमीन छीनना चाहते थे । मार-पीट हुई गडासा चल गया । भूदानी बाबू के आदिमियों में से एक को इतना गहरा घाव लगा कि अस्पताल पहुँचते-पहुँचते बेचारे के प्राण पकेर उड़ गए । मुकदमा चला, इसे नौ वर्ष की सजा हुई ।-1

अतः सच्चे अर्थों में आज के जमाने में व्यक्ति का समूचा अस्तित्व उसके संबंध के जीवन पर ही टिका है । अपने परिवेश में रहने के लिए भी उसे अपने ही परिवेश को अनुकूल बनाना पड़ रहा है । प्रतिकूलता की स्थिति में वह तिलमिलाकर व्यवस्था पर टोट करता है/उसे तोड़ता है और उसके इन जर्जर सूत्रों को बखेर कर नए समाज की शुरुआत में हुनाक डालता है । ग्रामांचल के उपन्यास आज इसे रेखांकित कर रहे हैं !

व्यक्ति के इस बड़े और छोटेपन की भूमिका उसके आगामी भविष्य अथवा निकट भविष्य की संरचना है । डॉ० सुरेश चन्द्र ने इसको नई परिस्थितियों का प्रसव कहा है --

“स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास ने गाँव और मनुष्य दोनों को यथार्थ परिवेश में तटस्थ दृष्टि से देखने का प्रयास किया है । परंपराओं के विरोध एवं मूल्यों के अकमूल्यन से ग्राम गंधी परिवेश में नैतिकता की नयी स्थितियों ने जन्म लिया है ।-2

1- उग्रतारा- पृ०- 24

2- डॉ० सुरेश चन्द्र गुप्तः स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम घेतना पृ० सं०- 95

क्योंकि यह वातावरण परिस्थितियों की नयी केन है । अतः उसे स्वीकार करने में व्यक्ति को देर लग रही है । यही देर उसके जीवन में संघर्ष के द्वार का रास्ता खोलती है । बढ़ते हुए मुद्रा स्फीति के संकट, दबते हुए आर्थिक सोपान और बिगड़ते हुए सामाजिक मूल्य उसके लिए करघे के रूप में हैं जोकि कुछ राहत के रूप में इधर से उधर होने का अहसास कराते हैं ।

आधुनिक सामाजिकता का स्वल्प व्यक्ति के आकार प्रकार को घटाने बढ़ाने में ये अपनी विशिष्ट भूमिका निभा रहा है । वे तमाम मूल्य जिनको प्राप्त करने के लिए व्यक्ति ने संघर्ष किया था आज उन्हें तोड़ने के लिए कर रहा है । यह यकायक नहीं अपितु एक परंपरा का चरण है जो कि अब आगे आ चुका है ।

आजकल झूठ, बेईमानी, बेलिहाजी, अत्याचार, शोषण, कमन, योनाचार आदि बदलती हुई नैतिकता के मानदण्ड हैं । सच्चाई और ईमानदारी ने इस युग में आकर अपनी परिभाषा बदल दी है । नागार्जुन ने इन सबका कारण अर्थसूत माना है । यह सत्य भी है कि जिनके पास धन होता है वोलात होती है उससे बड़ा राजा आजकल कोई नहीं है । वह जो कुछ भी करता है वह पुण्य का काम मान लिया जाता है । अर्थाभाव में ही नैतिकता की नयी परिभाषा "बलधनमा" उपन्यास में बलधनमा दे रहा है —

“गरीबी नरक है भ्रष्टा नरक । पापल के चार दाने छींटकर बहेलिया जैसे पिड़ियों को फँसाता है उसी तरह से दोलत वाले गरजमंद औरतों को फँसा मारते हैं । उनके पास धन भी होता है और अक्ल भी होती है । अपरंपार है उनकी लीला । बड़े छानदान का आवारा से आवारा आदमी पीड़ितों और पुरोहितों से मलमल साहत का फतवा पा जाता है।”¹

बलवनमा ने इन लोगों का घर दवार देखा है । उनकी हर घाल बलवनमा को ज्ञात है कि ऊँट किस करवट से बैठ रहा है । बड़े लोगों के आज के विश्वास और उनकी नीयत के बारे में उसका बेबाक कथन सत्य विशेष का प्राकट्य है—

“लुट्ये होते हैं ये लोग । असूल तहसील का काम गुमस्ता बराहिल के हवाले, घर-गिरस्थी की देखरेख छुट भ्रष्टों के हवाले, सेवा टहल का काम बहिया खवास के हवाले, बाकी बच्चे बेटा नाती, भाई-भतीजा, सार-सरबेटा तो बड़े-बड़े तास पीटेंगे, शतरंज खेलेंगे, शहर जाकर सिनेमा देख आयेंगे, बेकार मन शेतान का घर । छान पान और आराम की कमी नहीं, काम करेंगे नहीं । किसी की लहकी सयानी हुई नहीं कि निशाना साथे लग जाते हैं । यह नहीं कि बहन बेटा सबकी बराबर होती है । अपनी इच्छत आकर संभालोगे तो दूसरे का भी भला होगा । मगर भ्रष्टा, जिनके पास दोलत होती है वह निपट अधि होते हैं अपना पराया कुछ नहीं सूझता ।”²

1- बलवनमा- पृ०- 65

2- वही पृ०- 64

किन्तु बलवनमा ने इन्हीं दोस्त वालों से टक्कर ली है। मामूली छेतिहर मजदूर अपनी बहिन रेबनी के साथ मझले मालिक द्वारा किए गए बलात्कार पर फुफकार उठता है। वह अपनी शक्ति और सामर्थ्य की परवाह किए बिना उस जालिम की कमीनी हरकत का बदला लेने के लिए बेताब है—

“मैंने मन ही मन अपनी ओर से पक्का कर लिया कि केद काटूंगा, फांसी चढ़ूंगा, गाँव से उजड़ जाऊँगा मगर इस जेतान के आगे सपने में भी सिर नहीं झुकाऊँगा ————— ब्रह्म में गरीब हूँ। तेरे पास अपार संपदा है, कुल है, खानदान है बाप दादे का नाम है, अड़ोस पड़ोस की पहचान है, जिला जवार में मान है और मेरे पास कुछ नहीं है। मगर आखरी दम तक मैं तेरे खिलाफ हटा रहूँगा। अपनी सारी ताकत को तेरे विरोध में लगा दूँगा माँ और बहिन को जहर दे दूँगा लेकिन उन्हें तू अपनी रेबनी बनाने का सपना कभी पूरा न कर सकेगा” —————।

रीतनाथ की चाची "उपन्यास के अंतर्गत भी सुनीला नाम की विधवा ऐसे ही धनी सेठ की नीयत के बारे में जयनाथ को बताती है। जोकि बाहर से विधवाश्रम के संरक्षक होने का दिखाता, शोषित नारी का अभिभावक होने का स्वाँग करता है फिर भी उसकी नजर उनकी सूनी कलाइयों पर टिकी रहती है —

"एक बार पंच गंगा घाट पर बैठे-बैठे सुशीला ने कहा- बहता पानी ही धार कहलाता है । देखो सुबह-शाम हजारों आदमी नहाने आते हैं । मगर तुम जिस जाति में, जिस समाज में पैदा हुए हो, वह जिंदा नहीं मुर्दाघर है, वह उड़न है । ----- उस धनी सज्जन का नाम मैं तुम्हें नहीं बताना चाहती जिसका हृदय हम विधवाओं के प्रति करुणा मय है -- इतना करुणामय कि तीन-तीन विवाहितारें पाँच-पाँच रूठेलियाँ रहते हुए भी घुड़ियों से सूनी कलाई की ओर ललवाई निगाह से देखा करता है । ताड़ी पीने वाले को तुमने अवश्य देखा होगा, मेरा भी वही डाल है । मैं प्रज्वलित अग्निकुंड हूँ, जो जितनी ही स्निग्ध समिधारें पाता है, उतना ही निर्धम, उतना ही निरुर होता जाता है ---- मेरे जितने मित्र बनते हैं उतनी बार मैं घुड़ियाँ पहनती हूँ, और फोड़ती हूँ ।"

इस तरह जीवन के बहु आयामी संदर्भों की नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में आधुनिक व्याख्या की है । उन्होंने वर्तमान सत्य के सूत्रों को स्पष्ट करने का सौंदर्य प्रयास किया है ।

सामाजिक मूल्य संघर्ष और उनकी नवीन स्थिति

नागार्जुन ने आधुनिक समाज की विस्मृतियों को देखा है । व्यक्ति से व्यक्ति के बीच बढ़ते जाने वाले फासले आज के युग में जिस तेजी के साथ बढ़ रहे हैं वह भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं है । उन्होंने स्पष्ट किया कि

सामंजस्य आपसी सहयोग सहाय्य आदि समाज के मानदण्ड है जिन पर पूरी समाज व्यवस्था टिकी हुई है। परन्तु आजकल के वैज्ञानिक युग में उन्होंने इन्हें टूटते जाने का बार-बार उल्लेख किया है। सारा समाज जिस अनुकरण की दौड़ में अपने अस्तित्व की पहचान छोड़े दे रहा है नागार्जुन ने उसे बड़ी निष्कृति से देखा है। यह संक्रामक रोग गाँव के सरल वातावरण में अपने पंख फैलाकर उसे ग्रसे जा रहा है। मानवीय रिश्ते आपसी तनाव के कारण धँसे जा रहे हैं। पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, माँ-बेटा, माँ-बेटी, पति-पत्नी आदि की समरसता आज संयुक्त परिवार के विघटन के कारण नीरस हो गई है। धोखा, बेईमानी, फरेब, छल कपट और अन्य अनेक बुराईयाँ स्वार्थ के प्रबल होने के कारण ग्रामीण मानव को निगलती जा रही है। परन्तु इन्होंने सामाजिक मूल्यों में विखराव आने के कारण देहात में तनाव और संघर्ष का वातावरण तैयार हो रहा है। एकदूसरे को धोखा कर अपनी स्वार्थ पूर्ति अथवा स्वार्थ ^{जीने की कामना लेकर आगे बढ़ने का संकेत} साधे हुए हैं। डॉ० हेमन्त जी ने इस परिस्थिति को अनिवार्य मानते हुए उसकी ऐतिहासिक पीठिका पर प्रकाश डाला है —

“गाँव में भी परंपरागत समाज व्यवस्था के मूल्य निरर्थक प्रतीत होने लगे हैं। अतः अब व्यक्ति परंपरागत मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों को आत्मसात करने लगा है। इस नव मूल्य परिग्रहण की प्रक्रिया में व्यक्ति के लिए संघर्ष एक आवश्यकता बन गया है। वस्तुतः यह समाज से नहीं वरन् मूल्यों का परंपरागत मूल्यों से संघर्ष है। इस मूल्य संघर्ष में युगानुकूल मूल्य

व्यक्ति का पूर्ण समर्पण पाकर स्थान बनाते जा रहे हैं ।^१

अब तो स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि पवित्र शारीरिक रिश्ते भी आधुनिक मूल्य बोध के कारण निरर्थक हो गए हैं । बेलिहाजी और बेअवबी हर घर में प्रवेश पाकर उसे अपनी गिरफ्त में लेने को उतारु है । अतः पारिवारिक सम्बन्धों के तनावों ने नयी सामाजिकता की ओर झारा दिया है जो अब तक देखने को नहीं मिला था ।

पति और पत्नी का रिश्ता जो कि कुशल दाम्पत्य जीवन के आधार पर एक स्वस्थ समाज के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । परन्तु आधुनिक विस्मृतियों ने उसे लीला कर उसके सामंजस्य में विलगाव पैदा कर दिया है । पति पक्ष का पत्नी के प्रति अविश्वास और कठोर शासन उसे उससे दूरने, अलग होने अथवा अपनी स्वतंत्र अस्मिता बनाए रखने पर मजबूर कर दे रहा है । आज की नारी वह दबी हुई और गुलाम नहीं है जो कि लात और जूते खाकर अपना सिर नीचा किए पति के पैरों में स्वर्ण की कल्पना करती रहे । उसे अपने में स्वतंत्र और मनुष्य के बराबर जीने का हक है वह उस हक को लेने के लिए आगे बढ़ती रही है ।

"कुरु के बेटे" की मधुरी सेती ही पत्नी है जो कि घर पक्ष से अपना संबंध विच्छेद कर अपने माँ-बाप के यहाँ जीवन बिताने का संकल्प कर लेती है । उसका यह संकल्प यकायक और पूर्व नियोजित न होकर बिल्क एक प्रतीक्षा का परिणाम है जो कि नारी जीवन पर घटने वाले अत्याचारों

की प्रतीतिव्या स्वरूप में आया है । मधुरी के इस क्रान्तिकारी कदम ने आधुनिक महिला जगत के लिए नया द्वार खोला है । पिटना, तात धूते खाकर उसको आर्क्ष नारी का खिताब लेना स्वीकार्य नहीं है वह स्वाभिमान की जिन्दगी बिताने के लिए एक दिन ऐतिहासिक निर्णय लेकर अपने पितृ गृह में चली आती है —

“अब वह कभी उस नशाखोर झूठे की तात वाल बद्विषित करने नहीं जायेगी ——— फिर से श्रादी कर लेगी किसी दौलत-नेक चलन और मेहनतकश जवान से————— और बगैर मर्द के कोई औरत अकेली जिन्दगी नहीं गुजार सकती है क्या ?”¹

बिना पति के जीवन बिताने का यह निर्णय वास्तव में समाज के अस्तित्व पर चुनौती है जिसे एक अनपढ़ नारी ने अपने स्वाभिमान और आत्म मर्दा के लिए दी है ।

इसी तरह उग्रतारा भी अपने पति भीखन सिंह से मनका मेल न होने के कारण पति और पत्नी के सम्बन्ध को तोड़ लेती है । यद्यपि वह प्रारंभ में तो आदर्श पत्नी की भूमिका निभाकर सिपाही भीखन सिंह को अभिभूत कर देती है परन्तु उसके मन में पति और पत्नी की कल्पना हर दिन हर रात क्योटती रहती है वह मात्र परिस्थितियों से अस्थायी मेल करती है —

1 - ~~कल्पना~~ - पृष्ठ सं० - ११३

परुण के बेटे - ४० सं० १०१

“यह सब सुन लेगी । एक बार भी जुवान नहीं छोलेगी इत्मीनान से पराफे पोती रहेगी, आलू तलती रहेगी । सिपाही जी प्याज नहीं खाते हैं । उसने भी प्याज छोड़ रखा है । सिपाही जी मांस मछली का नाम तक सुनना पसंद नहीं करते, उसने भी मांस मछली को अपने पित्त से उतार दिया है । सिपाही जी को सूजी का हलवा अच्छा लगता है । उसको भी सूजी का हलवा अच्छा लगने लगा है । सिपाही जी को पीले रंग में रंगा हुआ कपड़ा पसंद हैं, उसको भी कहीं पसंद है --- उगनी में उनको धर्मपत्नी के सारे लक्षण मिल रहे थे । यह दूसरी बात थी कि सिपाही जी में उगनी को “घरवाला” तो जरूर मिल रहा था परंतु नहीं मिल रहा था ।”¹

उसी पीत की तलाश में वह तमाम धोयी मान्यताओं को ठुकराती हुई अपने मन यादें पुष्पक कामेश्वर सिंह के साथ गर्भवती होते हुए भी भाग खड़ी होती है । उसका यह अपने पीत के यहाँ से भाग आना कामेश्वर के घर में तनिक भी निन्दा का भागी नहीं बनता । उल्टे कामेश्वर की भाभी उसके इस कदम की सराहना करती है और उग्रतारा को मांग में कामेश्वर के हाथों सिंदूर डलवाकर उसके स्वस्थ दाम्पत्य जीवन की कामना करती हुई आशीर्षकन करती है --

“सिंदूर भरी कटोरी सामने रखकर भाभी बोली आज यह विधि पूरी होगी । मैं पुरोहित हूँ । लो फुटकी में सिंदूर लो और उग्रतारा की सीध भर दो बाबू । उठो----- कामेश्वर ने पुष्पाप भाभी की आज्ञा

का पालन किया— दोनों ने उठकर भाभी को बारी-बारी से प्रणाम किया, अच्छी तरह पैर धुकर, भाभी ने आशीष दी- दीर्घायु भव । सौभाग्यवती भव ।। दाहिना हाथ उगनी और कामेश्वर की पीठ पर फिरता रहा ।”¹

यह रुग्ण दाम्पत्य जीवन को तोड़कर नए और स्वस्थ दाम्पत्य जीवन की शुरुआत पहली और ऐतिहासिक है । गर्भवती विधवा को जोकि किसी अन्य मर्द के साथ कल तक शरीर संपर्क करती रही यह जान बूझकर भी कामेश्वर उसे स्वीकार करता है नागार्जुन समाज को उन रुग्ण परंपराओं को तोड़कर समाज के नए निर्माण की शुरुआत करते हैं --

“आज एक ऐसी घटना घटी थी, जिसकी कल्पना का आभास तक उगनी को नहीं था । आज एक पुरुष ने गर्भवती नारी के सीमंत में सिंदूर भरा था । थोड़े में १ नहीं जान-बूझकर । उसके होशो-हवाश ठुल्लत थे, विवेक लगभग था अभेय या अभेय चेतना पर हावी नहीं था । सभी बातें उसे माहूम थीं ।”²

समता है यह उपर्युक्त कथन नागार्जुन स्वयं अपनी सफाई देने में कर रहे हैं क्योंकि यह ऐतिहासिक शुरुआत अभी तक अनदेखी और अनसुनी थी । वास्तव में आज जिस तेजी से मूल्यों का गिरना और उसके साथ ही साथ नवीन मूल्यों की स्थापना अपनी आवश्यकता को घोषित करती चली जा रही है । नागार्जुन इस भावी निर्माण के प्रति अपनी प्रगतिशील

1- उग्रतारा- पृष्ठ सं०- 96

2- वही- पृष्ठ सं०- 97

विचारधारा के साथ चल रहे हैं। असामान्य स्थितियों को समूल नष्ट करते हुए वे स्वाभिमान और आत्म मर्यादा को अधिक बलवत् देकर देहाती जीवन को भी नवीन दिशा देने का उनका प्रयास है।

“रतिलाथ की चाची” में माँ [गौरी] और पुत्र [उमानाथ] तथा तास [गौरी] और पुत्रवधू [कमल मुखी] के व्यक्तिवादी संघर्ष को दिखाया गया है। यह उमानाथ पिछड़ी हुई परंपराओं को मानने वाला, दूसरों के बहकाने और समझाने के कारण वर्तमान यथार्थ को समझपाने में असमर्थ है। वह विधवा जीवन से बिल्कुल अपरिचित है कि उसकी माँ ने कितनी परेशानी उठाकर उसे पढ़ाया-लिखाया है। लेकिन माँ को अनीतिक गर्भ रह जाने के कारण वह उसकी सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन नहीं करता अपितु अपनी माँ को लातों से मारता चला आता है —

“इस बार दुर्गा पूजा की छुट्टी में, कलश स्थापना से [शिवरात्रि के आरंभ का दिन-आश्विन शुक्ल प्रतिपदा] से दो रोज पहले उमानाथ घर पहुँचा, पर थोड़ी ही देर बाद अपनी माँ के संबंध में सारी बात जब उसे मासूम हुई तो ग्लानि और क्षोभ के मारे उसका दिमाग फटने लगा----- उमानाथ फुसकारता हुआ अपने अंगिन में आया और माँ को झोंटा पकड़ लिया। वह बेचारी इस आकीस्मक आक्रमण से पीकत थी ही कि इसी बीच लहके ने उसकी पीठ पर आठ-दस लात गदागद जमा दिए।”¹

उमानाथ को माँ के वैधव्य से बिल्कुल भी सहानुभूति नहीं है । वह विधवा समाज की मुसीबतों और असामाजिक स्थिति को बड़े-बड़े शहरों की रोशनी में नहीं देख पाता । उसके विचार में नौकरी पर पहुँच जाने पर भी कोई परिवर्तन नहीं है । वह अपनी माँ को जो कि चर्खा अपना माँ और दिन काट लेती है गाँव में आकर फिर दुत्कार देता है--

"माँ की आँखें सजल हो आई, आदत देवना का वह प्रतीक-आँसु-लहके ने देकना नहीं पाहा । उल्टे, कड़ककर कहता चला गया कि चर्खा चलाकर तूने दुनिया भर को बतला दिया- उमानाथ अवारा है, कलकत्ता में तुद तो मौज मारता है और घर पर माँ जुलाहीन हुईजा रही है । खबरदार । अब कभी चर्खा हुआ तो हाथ काट लूँगा ।"¹

इस आधुनिक पुत्र उमानाथ के इस चरित्र पर डाँ० ज्ञान चन्द्र गुप्त ने दो टूक बातें कहीं हैं--

"बेटे महाराज ने कलकत्ते में नौकरी क्या की मानो अफसर ही बन गए हों । माँ को सहारा देने के स्थान पर चलते समय उसे झिड़कियाँ देते हैं ।"²

यह तो रहा आधुनिक सुपुत्र का व्यवहार । पुत्रसूत्र इनसे भी चार कदम आगे हैं जोकि संयुक्त परिवार की दीवार को अपने वाक् पाशों से टहाती है । विधवा गौरी ने बीतियों वर्षों से यह आशा की थी कि उसके उमानाथ की बहू बड़ी अच्छी, नेक, सास-सेविका और कुलवर्धिका होगी

1- रतिनाथ की चाची- पृ० १०- 146

2- डा० ज्ञान चन्द्र गुप्त-स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्रामपेतना-106

परन्तु इस नयी पीढ़ी की समस्या ने सब पर पानी फेर दिया। उमानाथ माँ की सेवा करवाने के बजाय उसे और आराम तलब होने का पाठ पढ़ास चला जा रहा है। वह चाची की एक नहीं सुनती। उल्टे उसकी शिकायत अपने पीत से करती है ---

“घर के काम में तो कुछ देती नहीं, मगर लड़की की विदाई के समय पचास जाने कहीं से निकाले ? कितनी लम्बी है तुम्हारी माँ की आँत ?”¹

इसी पारिवारिक दून में इसी आपसी संघर्ष भरे घर में रतिनाथ की बहुत ही घैलना संयन्त्र भूमिका है जो कि अपनी चारित्रिक विशेषताओं से इस पारिवारिक संघर्ष को दूसरी दिशा दे रहा है।

रतिनाथ यद्यपि चाची की सगी संतान नहीं है फिर भी वह उसके सगे बेटे उमानाथ से बीस गुना बेहतर है। कहीं कहीं भी चाची के स्वाभिमान के खिलाफ एक भी शब्द बयान से ही सुनने को तैयार नहीं है। उसे ज्ञात है कि चाची अनैतिक गर्भ से है और उसका सामाजिक बहिष्कार हो चुका है परन्तु फिर भी वह अकेला पूरे गाँव से टकराने को तैयार है—

“रत्ती को चाची का यह रुख पसंद नहीं आया। वह सोचता जो एक सुनायेगा हम उसे दस सुनायेंगे। जो आग नहीं देगी उसके घूले पर पेशाब कर दूँगा।”²

और चाची भी मरते समय यही वसीयत करती है कि उन्हें अपनी कोख से उत्पन्न पुत्र पर कोई झुल और आनंद नहीं यह रतिनाथ उनके अंतिम संस्कार का भागीदार हो-

1- रतिनाथ की चाची- पृ० सं०- 155

2- वही- पृ० सं०- 14

"आज बापू ने भावान से प्रार्थना की कि उसका अंतिम संस्कार रतिनाथ के हाथों ही हो । पुत्र को जब माँ पर इतनी घृणा है तो यह अप्रिय कार्य उसे न करना पड़े"-।

इस प्रकार आधुनिक पारिवारिक संघर्ष व्यक्ति की नयी मान-सिक्ता बना देने में समर्थ होता जा रहा है । आपस के खूनी रिश्ते आपस में टकरा कर संघर्ष के माध्यम से नयी सामाजिकता का सृजन करते जा रहे हैं । व्यक्ति एक से हटकर दूसरे के साथ जुड़ रहा है यह उसकी नई समय के द्वारा कराई गई शुरुआत है जिसे आधुनिक पीढ़ी ने अपनी चेतना के साथ पकड़ा है उसे अपने जीवन के आधारों में शामिल कर अपनी अलग दुनिया कायम की है ।

नवीन दाम्पत्य जीवन और आधुनिक नारी

भारतीय जीवन में विवाह एक सामाजिक आवश्यकता है । इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए व्यक्ति नारी के साथ अथवा नारी व्यक्ति के साथ सामाजिक प्रतिबंधों, समझौतों एवं परंपराओं के अनुसार जीवनभर एक दूसरे के पूरक के रूप में प्रस्तुत होते हैं । लेकिन आज विवाह की भूमिका में पवित्रता की जगह व्यावसायिकता का प्रभाव बढ़ गया है । इसी के परिणामस्वरूप बाल विवाह, विधवा समस्या, अनैत विवाह, विकोज़ पर, दहेज आदि क्रूर रीतियों ने समाज को अपनी पकड़ में रक्ता है । आज यह रोग असाध्य है । शिक्षित और अशिक्षित परिवारों में दहेज के

कारण इस पवित्र बन्धन में दरार पड़ती जा रही है । दहेज के अभाव में तेन्हीं सुन्दर और शिक्षित महिलाएँ वरपक्ष का कोप भाजन बनती हैं । पर्याप्त मात्रा में धन सम्पत्ति न होने के कारण कन्या पक्ष अपनी पुत्री को योग्य वर नहीं दिखा पाते और यही कारण है कि उनमें अधिकांश बाल-विवाह का शिकार होती हैं जहाँ बे-मेल वर के साथ उनका दाम्पत्य सुत्र बांध दिया जाता है ।

इस व्याधि से हमारा ग्राम प्रान्त भी अब अछूता नहीं बचा है । वहाँ भी पढ़े लिखे समाज वाले लोगों की देखा-देखी कम पढ़े लिखे लोग अथवा माली हालत वाले भी उसके लिए अपना सामाजिक सम्मान मानकर दहेज का प्रदर्शन करते हैं ।

यह मान्य कि आजाद भारत के संविधान में नारी को संरक्षण दिया है । उसके पुरुष के समान ही जीवन यापन करने के सुख दाम्पत्य जीवन चलाने के लिए उसे अधिकार मिले हैं । इसीलिए अब वह आज से तो सात पड़ती वाली नारी नहीं है जोकि दब पिटकर अपना दाम्पत्य किस्मत के नाम पर खींचती है । गाँव और शहर में उसके ऊपर होने वाले अत्याचारों के लिए कानूनी प्रतिबन्ध के साथ-साथ "महिला समाज" जैसे संगठन भी इस दिशा में कार्य कर रहे हैं ।

दूसरे उसके लिए रोजी और रोटी के समुचित साधन उपलब्ध हो जाने के कारण उसमें एक आत्म सम्मान की भावना ने जन्म लिया है । वह अपने पैरों पर खड़ी होकर अपने जीवन का निर्वाह कर सकती है । डा० हेमराज "निर्मल" ने आधुनिक नारी की भूमिका के बारे में कहा है —

"बाद के वर्षों में विधेय रूप से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्त्री और पुरुष को वैधानिक रूप से समान अधिकार मिल जाने पर तथा नारी शिक्षा का द्रुत गति से प्रसार होने पर सामान्य नारी के प्रति किश जाने वाले अन्याय को दूर करने के लिए प्रयत्नशील है। इसीलिए वह नारी संगठन के सभी उपाय कर रही है। कानून बन गया है कि एक पुरुष एक ही पत्नी रख सकता है, इससे नारी स्वयं को अधिक सुरक्षित समझने लगी है। साथ ही हिन्दू कोड बिल के अनुसार तलाक की सुविधा दोनों को प्राप्त हो जाने से एक दूसरे के अन्याय का अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने का दोनों को अक्सर मिल गया है। अतः पत्नी अब न तो अत्याचार सहने को तैयार है और न ही अपनी उपेक्षा सहती है। अंतर्राष्ट्रीय ज्ञान ने उसे कार्यक्षेत्र में लाकर खड़ा कर दिया है।"

लेकिन रूढ़िवादी समाज में आज भी वैवाहिक पद्धति के नाम पर आर्क्ष और नैतिकता की छुट्टाई दे-देकर इस नारी का के साथ आज भी विस्मय किता जा रहा है। समाज चाहे कितना ही आधुनिक और प्रगति-शील विचारों का हो अपनी दीर्घानुसी प्रवृत्ति के कारण ही वह पुरानी मान्यताओं को नकारने के लिए तैयार नहीं है। परिणाम स्वल्प समाज में अव्यभिचित वातावरण, स्वच्छन्द यौन भावना, वैधव्य, अनैतिक गर्भ, तलाक जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। और वहीं समाज में संघर्ष की भूमिका प्रारंभ होती है जिसके अंगे पनपने में अथवा बड़े रहने में कुठारें, छूटन,

संक्रास जैसे मनोरोग विकसित होने लगते हैं । अतः देहात भी अब इस आग की लपट की चोट में आ गए हैं । वहाँ की-कहीं संघर्ष है तो कहीं घुटन कहीं स्वाभिमान है तो कहीं कुण्ठित जीवन वाले दाम्पत्य अपनी स्थिति में हैं ।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में इस पारिवारिक संघर्ष को एक दिशा देकर आगे बढ़ाया है कि जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है कि नागार्जुन यथार्थवादी नहीं हैं समाज की अनियमितताएँ और अत्याचार उन्हें निरन्तर कलम धामने को मजबूर किए रहते हैं वे स्वर्ग मैदान में उतरते हैं । वृद्धे व्यभिचर का फनी यह औंध इस पारिवारिक विद्रुपता को उजागर करता हुआ उस पर तीखी मार देकर एक नए समाज का निर्माण करता है जो उपन्यास साहित्य में अब तक संभव नहीं था । उन्होंने बाल विवाह, बेमेल विवाह, वैधव्य, दहेज आदि के ऊपर उनकी क्रियातियों को सामने लाकर पाठक और पात्रों को स्वस्थ और आधुनिक शोषण युक्त विचारधारा दी है जोकि समता समानता के लिए संघर्ष के रूप में उभर कर मानव-समाज के समक्ष आती है ।

नागार्जुन ने बाल विवाह और उसके परिणाम के ऊपर काफी विस्तार से प्रकाश डाला है । समाज की इस कुदृष्टि ने कितनी ही अबोध और ना-समझ कौसूरों को अपने अन्दर भीषण उन्हें समय से पहले ही जमीन से समाप्त कर दिया । "पारो" उपन्यास की नायिका का कर्षण अंत इसी समाज की निकम्मी पृथा के कारण छूट छूट कर हो गया है । वह अबोध बाला शारीरिक दृष्टि से इतनी लक्ष्म नहीं है कि अपने पिताशत्रु पेंतालीसकरीय प्रेड

के साथ सहवास कर सके । लेकिन समाज का पक्कानूती का आर्क्षवादीता के नाम पर इस मेल और बेमेल की स्थिति को न देखकर वह लड़की को भार समझता है । ऐसी स्थिति में या तो लड़की स्वयं को मार लेती है अथवा पति महोदय के स्वर्गवासी हो जाने पर वह जीवन भर लाश की तरह सड़ती रहती है । इस तरह के संयोग पर नागार्जुन ने व्यंग्य करते हुए लिखा है--

"मगर जैसे कुछ भी कहने का हक नहीं है उसके लिए जैसा पैंतीस वर्षों का घर जैसा ही पैंतालीस वर्षों का । लंगड़ा रहे या अंधा, लुला रहे रहे या काना, कोढ़ी रहे या पगला, बूढ़ा हो या प्रौढ़- पति साक्षात् परमेश्वर होता है, यही शिक्षा तो अपने यहाँ छुटपने से ही औरतों को मिलती है ।-।

कन्यापक्ष में कन्या की स्थिति बड़े तनाव का कारण होती है वह माँ बाप, भाई भाभी सभी के लिए ऐसा भार स्रष्टा है जोकि तीन कुत्तों के ऊपर सदैव सवार रहता है । विवाह होने के बाद उसकी तमाम ओप-चारिकताएँ यद्यपि पूरी नहीं की जाती तो घर पक्ष में अनावश्यक तनाव आने लगता है ।

बाल विवाह से पीड़ित पार्वती अपनी नारी बनने की भूमिका पर और बेमेल पति के साथ गुजरने वाले क्षणों को स्मृति को अपने ममेरे भाई विरजु से कहती हुई पक्कानूती समाज की परंपरा पर तमतमाती

हुई कहती है—

“जिन्हें आप लोग चौधरी कहते हैं उनसे मेरा संबंध ही क्या है ?
पति पत्नी का सम्बन्ध ? नहीं, हरिगण नहीं----- सुन लीजिए सब-
चतुर्थी की रात में क्या स्पर्श के क्या नोट मेरे आगे फैलाते हुए उन्होंने कहा था-
और चाँदिए तो पेसा कीदर ? क्रोध से मैं जलने लगी । हे भगवान । लाख
वण्ड हैं मगर फिर औरत बनाकर इस कैा में जन्म नहीं हैं----- जी आ।
पैंतालीस वर्षों का यह वर पिशाच एक अबोध लहकी के सामने क्या स्पर्शों
के नोट का पथार इसलिए लगावे कि”।-----

इस बाल विवाह की परिणति होती है उस अबोध की मृत्यु ।
वह कटपी उम्र में गर्भवती होकर शारीरिक स्व से कमजोर होने के कारण
एक लडके को जन्म देकर परलोक वासीनी हो जाती है —

“पारो के लहका हुआ है, अपने मगर वह बँकनी नहीं-----पिताजी
को महर इतना कह पाये । पीसी ने बुला भेजा था मेरे छोटे भाई को ।
गया मगर मैं ही----- कहीं मालूम था कि पारो का वाह संस्कार मुझे
ही करना पड़ेगा । ओह । जब तक केरबनिया पहुँचू तब तक पारो को लोगों
ने घर से बाहर लाकर रख दिया था । मैं जब उस पिर परिचित अग्नि में
पेर रखा तो देखा ----- तुलसी घोरा के पास मृत पारो उस्तान
पड़ी है ।”²

और वह कुछ ही क्षणों का जन्मा हुआ शिशु जीवन पर्यन्त माँ
और बाप के स्नेह के लिए तड़पता रहेगा ।

1- पारो- पृ० सं०- 30

2- वही- पृ० सं०- 93

"रतिनाथ की पापी" के अन्तर्गत तो इस अनमेल विवाह ने कहर ढा दिया है। तरकुलवा में जन्मी, ब्राह्मणों के खानदान में संस्कृत की नैतिकताओं पर ढोंग पालने वाला गुम्बर पुर का नीलमाधव का घर गौरी के नारी जीवन का अभिघात बनकर आता है। उसका अभाव-अभियोग ग्रस्त जीवन इसी अनमेल घर के साथ विवाह होने के कारण है। नैतिकता और आर्क्ष के नाम पर गौरी जैसी अनेक स्त्रियाँ अपने जीवन पर दिन रात आँसु बहाती रहती हैं। गौरी अपने अनमेल घर की स्थिति को बताती हुई कहती है —

"गाड़ी चली जा रही थी, टचर, टचर टच। गौरी उसी पर लेटी पड़ी थी। आकाश से चाँद अमृत बरसा रहा था। होले-होले हवा चल रही थी। तारों को एक दूसरे से दूर देखकर फिर उसे एक बार अपने सकाकी जीवन का ख्याल आया। स्त्री और पुरुष, पुरुष और स्त्री। एक दूसरे के परक हैं। एक दूसरे से रहित कुछ नहीं है ——— इसके बाद गौरी को वह व्यक्ति याद आया जिसके हाथ में आज से बार्दस साल पहले वैदिक जी ने यह हाथ धमा दिया था। फिर उसे अपना अभाव-अभियोग ग्रस्त वह दाम्पत्य जीवन याद आया जो इसी गाड़ी की भाँति टचर-टचर कुछ दिनों जैसे-तेसे चलता रहा— इस गाड़ी के भी दो बेल बराबर नहीं हैं, उनकी भी जोड़ी ऐसी ही विषम थी"।—————

यह वैधव्य नारी को समाज के अनगिनत मोड़ों से गुजारता है जिसमें उसके परिवार से लेकर उसका जीवन गल गलकर नष्ट होता चलता है।

वह जब तक मर नहीं जाती वह लाश की तरह सड़ती रहती है ।

"उग्रतारा" के अन्तर्गत भी सिपाही भभीजन सिंह उगनी से तीन गुने बड़े हैं । उग्रतारा अपने वाम्पत्य जीवन के सहवास को उग्र के इतने बड़े फासले के कारण उसे बलात्कार कहती है । विवाह पद्धति पर घोट करती हुआ उसका आत्म संघर्ष इस तथ्य को प्रकट करता है —

"यह भी बलात्कार ही था । ठीक है, भभीजन सिंह ने वैदिक विधियों से शादी की थी । ठीक है, आधे घन्टे तक अग्नि में आहुतियाँ डाली गई थीं । ठीक है, हवन के धूस ने बहनों की आँखों^{की} आनंद के आँसुओं से गीला कर दिया था । ठीक है, तोला भर सिंदूर माँग के बीचो बीच कई दिनों तक जमा रहा । सब कुछ ठीक है । लेकिन स्त्री पुरुष के बीच उग्र का बड़ा फासला किस तरह मखौल उड़ा रहा था विवाह के संस्कारों का । बाबू भभीजन सिंह को कानूनी तौर पर इस बलात्कार का हक हासिल हुआ । अब उगनी उनकी संतान को अपने लहू से पुष्ट बनायेगी ।"।

यह सब आर्थिक विषमताओं और अशिक्षा का परिणाम है । अर्थात् भाव के कारण ही इन सुकुमारियों का जीवन नष्ट होता है । कन्यापक्ष वाले अपना पेट भरने के लिए अनमेल घर से सेकड़ों की रकम लेते हैं और उन्हें उपहार में फूसती कन्याओं को आकाश पत्नी के रूप में देकर अपने को निहाल करते हैं । बलिनाथ की चाची का भोला पण्डित, "नयी पोथ"

का छोटा पण्डित और "पारो" का लक्ष्मा इसी तरह के व्यवसाय में
 दक्ष हैं। कन्याओं को जानवरों की तरह बेच कर उनसे मोटी रकम लेकर वृद्धों
 को सूर्यकी झीलागार, "कन्दर्प कुमार" बताकर विवाह के नाम पर
 उनका जिबड़ ही करते हैं। "नयी पौध" के छोटा पण्डित के इस सरल
 व्यवसाय का व्योरा निम्नवत् है —

"यही कारण था कि रामेसरी को छोड़कर बाकी उहाँ बेटीयाँ
 छोटा पण्डित ने बेच डाली थीं—

महेसरी से उन्हें 1100 रु० मिले थे।

भुवनेसरी से 600 रु० मिले थे।

गुनेसरी से 700 रु० मिले थे।

गुजिसरी से 1000 रु० मिले थे।

वानेसरी से 700 रु० मिले थे।

धनेसरी से 900 रु० मिले थे। और अब विसेसरी का नंबर था।

फसल तैयार छड़ी थी, कटने भर का विलम्ब था।" 1

और इस नारी के शरीर बिक्रम का परिणाम रतिनाथ की चाची
 का पधव्य उग्रतारा का गृह त्याग, पारो की अन्त्येष्टि होता है। छोटा
 पण्डित की लहकियाँ दिन रात अपने माँ बाप को कोसती रहती हैं —

"सभी बहिनें माँ बाप को सराप दिया करती थीं। कोई गूँगे के
 पल्ले पड़ी थी तो कोई बोहम के पल्ले। कोई तीन जिला पार मैक की
 गई थी तो कोई पाँच सौ कोस पर। उनमें से चार को भाग्य ने पधव्य

के बीच-बीच में डाल दिया था। एक पगली हो गई थी, एक को उसके आत्म खोर पति ने किरासत तेल की मदद से जलाकर खाक कर डाला था।”

इस तरह के वातावरण ने ही नागार्जुन की घेतना को झकझोर दिया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज की इस विभीषिका पर गहरे चिंतन से विचार किया है। उन्होंने वैधव्य को पुनर्विवाह में परिणत कर नारी समाज को यातनाएँ झेलने से बचाया है। इस लाइन में नागार्जुन अपने समकालीन और पूर्ववर्ती उपन्यास लेखकों से पृथक भूमिका निभाते हैं। प्रेमसूच की तरह उनकी विधवाएँ अपने भाग्य की दुहाई देकर सेवा सदन का निर्माण नहीं करती वे समाज से संघर्ष का रास्ता जोड़ती हैं। वह अपने मन के अनुसार जीवन यापन कर अपने दाम्पत्य जीवन का निर्वहण करती हैं। उन्हें समाज की यह छिछली, निकम्मी और दक्षिणानृती प्रथा स्वीकार्य नहीं है।

“कृष्ण के बेटे” की मछुरी अपने जीवित पति को उसकी यातनाओं से तंग आकर छोड़ती हुई उसे नयी महिला के आगमन का संकेत देती है जो ऐतिहासिक है और “पति परमेश्वर होता है” जैसी धोधी मान्यता को तुकरा कर अपने जीवन का अपनी इच्छानुसार रास्ता तय करती है —

“-----नहीं, अब यह कभी उस नन्हाखोर छुइटे की लात वाल बर्दा-
शत करने नहीं जायेगी----- फिर से शादी कर लेगी किसी पक्षेर-----

नेक चलन और मेहनतका जवान से ---- और, बगैर मर्द के कोई कोई औरत अकेली
जिन्दगी नहीं गुजार सकती है क्या ” 2

1- नयी पौध: पृ० १०- ६

2. वसुधा के बेटे - पृ० सं० - १०९.

नई पोथ" में एक अनमेल विवाह को ठुकराने के लिए नागार्जुन गाँव के पढ़े लिखे नव-युवकों को सामने लाते हैं। वे पुरानी पीढ़ी की इस कुटिसत बात को सुनते ही चौंक पड़ते हैं ----

"पन्द्रह साल की बिलेसरी साठ वर्ष के चतुरानन चौधरी को व्याही जाने वाली थी। दिगम्बर ने यह खबर सुनी तो उसे ऐसा लगा कि किसी ने भर-भर कसड़ी छीलता हुआ कड़ुआ तेल बारी-बारी से उसके दोनों कानों में डाल दिया है।"

गाँव का युवक समुदाय इस दाम्पत्य बन्धन पर आक्रोश व्यक्त करता है वह इस विवाह को किसी भी कीमत पर सम्पन्न होने देने में नहीं है। यह पहली बार ग्रामीण घेतना नागार्जुन के ही उपन्यास "नई पोथ" में अभिव्यक्त हुई है जिसने इस कुप्रथा की जड़ों को ढिला दिया है। विवाह स्थल पर दिगम्बर, माहे आदि अपने सभी सँगी साथियों को लेकर मारा मारी पर उतर आते हैं। दिगम्बर ललकारता हुआ कहता है—

"बच्चन बाबू यह बाबू साहेब जितनी धर लगायेंगे अर्थात् उतनी ही केनी। आप यह गाँव बाँध लीजिए कि गाँव का एक एक नौजवान पिटते-पिटते बिछ जायेगा मगर यह व्याह नहीं होने देगा---- लाज शरम को धोकर यही पी गए हैं तो क्या हम भी बेहया हो जायें"----- बिलेसरी जैसी तो इनकी नतनी पोती होंगी---- यह अभी सीधे नहीं मानेंगे तो बर्झकुर और छोटो पर टोकर इन्हें कत तक फिर सोराठ पहुँचा दिया जायेगा, इन्हीं के खिलाफ कल नौजवानों का हम एक प्रसूनिकाहो समझ क्या रहा है इन्होंने आखिर १"२

1- नई पोथ- पृ० सं० 14

2- वही- पृ० सं० 61

इस तरह उस साठसाठा महावर का गव्व से ये धेतना सम्पन्न युवक बहिष्कार कर विसेसरी का विवाह एक उसके सम्बन्धित वर वाधस्पीत पाठक से कराते हैं जो कि वहेष विहीन, आडम्बर रहित निहायत सादगी से सम्पन्न होता है। विसेसरी अपने मन पसंद वर को पाकर आत्म संतोष करती है—

"तब विसेसरी ने जी भर अपने वूल्हे को देखा। गेहुआ सूरत का वह त्रुण सौंदर्य छोकरी को बड़ा मोहक लग रहा था— भरी-भरी सी पीठ, गोल-गोल बाहें, पुष्ट और मांसल कंधे, गोल माथा, काले काले श्वरों से बाल" ¹-----

यह आजाद भारत के युवक संघर्ष का परिणाम है जिसने चालाक थोथरियों को नयी ऊँची देकर उनकी सारी थोथराहट मिट्टी में मिला दी है। यह आधुनिक भारत की सच्ची नयी पीढ़ी है। जिसमें ठूठों को श्रीहीन कर ^{दिया है} ~~छोटी छोटी~~। डा० एन० रवीन्द्रनाथ ने इसे युवा वर्ग के संघर्ष का सफल कथा है—

"उपन्यास में इस समस्या का समाधान नई और पुरानी पीढ़ी के सक्रिय संघर्ष में, नई पीढ़ी की विषय के रूप में प्रस्तुत किया गया है।" ²

इन अनपेक्षित वर प्रथा की पीछे आर्थिक कारण है। वहेष उसी का परिणाम है। कन्या पक्ष को अपनी आर्थिक तंगी के कारण लड़कियों को

1- नई पीढ़ी- पृ० सं०- 140

2- डा० एन० रवीन्द्रनाथ: मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास- 1979 पृ०-240

अच्छा घर और अच्छा घर तलाश करने में कीठनाई होती है । इसी कारण उसे उग्र भर अनमेल घर बन्धन के आश्रय को भुगतना पड़ता है । परिवार में आशान्ति का सबसे बड़ा यही कारण है । "पारो" उपन्यास में इसका स्केत नागार्जुन ने किया है ---

"मगर उससे क्या ? ब्याही लड़की जब तक सुसराल न चली जाय, उसके माँ-बाप के लिए कुछ न कुछ परेशानी रहती ही है । कोजागरा के भार-दोर में कमी हुई तो समथी-समथिन नाराज । जड़ काले में भड़कदार रेपर या शाल न देने से दामाद मुँह फुलाकर तुम्हा कर ली, बात बात में उनके खूने का डर ।" ~~जबान से --- और, बेर-मर्द के कोई अनेक~~
~~अनेक विन्दुओं नहीं युक्त रहती है क्या~~"²-----

~~ऐसे सभी घर विधवाएँ अपने सुखी जीवन के लिए दूसरे सुखों से~~
~~अपनी कर कर समझ की दुनियाँ बनाती है ।~~

"उग्रतारा" उपन्यास के नायक कामेश्वर सिंह और नायिका उग्रतारा ने तो समाज को एक और नयी दिशा से परिचित कराया है । कामेश्वर, आज के समाज का एक आधुनिक व्यक्ति है जो गर्भवती विधवा को अपनी पत्नी बनाने में संकोच नहीं करता । उसे संपूर्ण स्थिति का ज्ञान होते हुए भी अपना ऐतिहासिक चरण आज के समाज के अगले सोपान पर रख देता है । कामेश्वर के माध्यम से नागार्जुन सीख देते हैं कि जब पचास-पचास, साठ-साठ साल के कुछ चार-चार, पाँच-पाँच संतानों के पिता अपनी धूम धाम से शांति करते हैं तो अनपढ़े घर को छोड़ने का नारी को भी पूर्ण अधिकार

हे वह अपने मन के माणिक युवक के साथ रहने में कदम उठाते तो कोई अपमान नहीं होना चाहिए । कामेश्वर उस नए आगामी समाज का सदस्य है जो इस तरह विवाहित और गर्भवती महिला को भी अपनी पत्नी बना लेने में उसे बराबरी का दर्जा देता है ---

"आज एक पुरुष ने गर्भिणी नारी के सीमंत में सिंदूर भरा था । धोखे में १ नहीं, जान बूझकर । उसके दोशो-हवास दुरुस्त थे, विवेक सजग था, आपे या आपे घेतना पर हावी नहीं था । सभी बातें उसे मालूम थीं ।" १

नागार्जुन अन्तर्जातीय विवाह की एक और क्रान्तिकारी शुरुआत करते हैं । वे जातिवाद के घिनौने घेरे को तोड़ कर उसमें नवीन घेतना का संचार करते हैं । निम्न वर्ग के लोगों के साथ बैठना, खाना, रहना जातिवाद को समाप्त करने में इतना सफल और कारगर नहीं है जितना कि अन्तर्जातीय विवाह । यद्यपि यह भारतीय पृष्ठभूमि में अभी इतना सफल नहीं हो रहा है और देहाती जीवन में तो यह और भी मुश्किल है । परन्तु फिर भी नागार्जुन यह सब जानते हुए भी इसकी शुरुआत चाहते हैं । आज नहीं तो कल अंतर्जातीय जातिवाद को निर्मूल करने में सफल सिद्ध होगा ।

नागार्जुन के अंतर्जातीय विवाह में सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि उसमें भावुकता नहीं है । उसमें प्रेमी और प्रेमिका का क्षणिक आपे नहीं है । वे जानते हैं कि यह भावुकता और क्षणिक आपे अस्थायी होते हैं । प्रारंभ

में इनका मानसिक दबाव इतना भारी और भयंकर होता है कि व्यक्ति की पैराना को दबा देता है । लेकिन धीरे-धीरे यह जब शान्त होता है तो परिवार में कलह और सम्बन्धों के बिखराव की स्थिति आती है । परन्तु नागार्जुन पारिवारिक बिखराव में नहीं अपितु जुड़ाव में विश्वास करते हैं । उनके अन्तर्जातीय वैवाहिक निर्णय परिस्थितियों की देन होते हैं । जीवन की विकसितियों से जूझकर ही वे नया मार्ग अपनाते हैं ।

"बलचनमा" की जय मंगला का दर्जी के लडके के साथ चली जाना, "अमि-नंदन" की मुकुला का अपने इन्टर क्ला के साथी के साथ निर्वोह के लिए गृह त्याग उसी झुंझला का परिणाम हैं । स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के साथ हुए होते हैं । "बलचनमा" में लहेरिया गंज का मुसलमान दर्जी और बाल विधवा जयमंगला वर्षों से एक दूसरे पर नजर रखकर ही एक दूसरे के साथी होते हैं —

"लहेरिया गंज का एक नौजवान दर्जी हवेली के सारे कपड़े सीता था । गठीला और खूबसूरत मुसलमान । उसका मामा मधुबनी बाजार में सिलाई की दुकान किए हुए था । बूढ़े मालिक उसी से अपने कपड़े सिलवाते थे । हुनर सीखकर जब भांजा तैयार हुआ तो जज्जानी कपड़ों का नाप लेने के लिए हवेली के अंदर आने जाने लगा । ----- नया दर्जी, सिलाई बड़ी अच्छी करता था, छोटा था तभी से मलिकाइन उसे जानती थीं । तो, बैठक में ही अलग एक कोठरी के अन्दर दर्जी को सिलाई करने का हुकूम मिला । चार-चार, छः छः रोज दो तीन बार वह मालिक के यहाँ रह चुका था । भस्तीन आती थी और जाती थी । दर्जी को मजदूरी भी

मिलती थी, डाना भी मिलता था और नाश्ता पानी भी---- इसी बीच दोनों की नजरें चार हो गईं। दो दिलों ने मिलने का अपना रास्ता भी निकाल लिया। बाहर किसी को कुछ मालूम नहीं, अंदर-अंदर कड़ाही में गुड़ पगता रहा। अबकी बार कहीं आया तो रुकू करने के बहाने यों ही आया, भस्तीन लाने की फिर ज़रूरत ही क्या थी 9 दो दिन रह के रात को गायब हो गया, जय मंगला भी गायब थी।¹

"अभिर्नक्ष" की विधवा मुकुला भी इसी तरह की स्त्रीपात्र है जोकि नामी, गिरामी अपार सम्पत्ति और सम्मान वाले माल मंत्री पिता श्री नरपत सिंह के धन को ठुकरा कर अपने दाम्पत्य जीवन के लिए अपने पुराने प्रेमी के साथ चली जाती है —

"कोठी के पिछवाड़े होकर नोकरों के क्वार्टर के बगल से वह निकली। हाथ में प्यड़े का छोटा सा सूटकेस था। सड़क के किनारे बिजली की धीमी रोशनी में मुकुला प्रगट हुई तो नीम की इटपुटी छांट में से साइकिल सवार एक युवक आगे बढ़ आया। सूटकेस को उसने आगे लटका लिया। मुकुला पीछे कैरियर पर बैठ गई।"²

नागार्जुन इस नवीन सामाजिक क्रांति को ओर आगे बढ़ाते हैं। उनकी नारियाँ मध्यकालीन बोधवासी- "मोहे न नारि नारि के त्या" वाली न होकर एक समाज सेविका के रूप में सामने आती हैं। वे अपने कर्ण पर होने वाले जुल्म और तन शोषण से परिचित हैं इसलिए शोषित और

1- बलधनमा पृ० सं०- 174

2- अभिर्नक्ष: पृ० सं०- 132-133

पीड़ित नारी को वे अपनी गोदी में लेकर संरक्षण देती हैं । उसे गन्दी और गलीब जिन्दगी से निकाल कर स्वस्थ और आधुनिक समाज के वातावरण में जीने के लिए सर्व प्रस्तुत करती हैं । "उग्रतारा" में कामेश्वर की भाभी इस आर्क्षा को प्रस्तुत करती है तो "कुंभीपाक" में कंठाउन्धर की बीबी ।

गर्भवती उग्रतारा की मांग में भुवनेश्वरी अकेले दंग की आधुनिक भाभी है जो कि अपने देवर कामेश्वर के हाथों समाज से टकराती हुई सिंदूर डलवाती है । वह जलन ईर्ष्या और सामाजिक दुराग्रह की जगह उन्हें मुँह भर-भर कर आशीर्वाद देती है वह समाज और उन रीति रीतियों पर अपनी नारी सत्ता को प्रदर्शित करती है —

"तुम्हें लगने अपना ही मुँह काला करते हैं । हमारा-तुम्हारा मुँह तो शीशे से भी ज्यादा साफ रहेगा"।

और वही महिला नए भारत के युवक को भी प्रस्तुति में लाती हुई कहती है —

"कामेश्वर तुम्हें लेने आया है, तुम जरूर उसके साथ चली जाओ । वह तुम्हें भी स्वीकार करेगा और तुम्हारे शिशु को भी स्वीकार करेगा । कामेश्वर नए भारत का नया युवक है, पुराने दंग का छिछोर नौजवान नहीं है वह"-----²

इसी तरह कृत्स्न वातावरण में रहने वाली "कुंभीपाक" की भुवनेश्वरी कंठाउन्धर की बीबी निर्मला अपना सक्रिय समर्थन देती है । वह नहीं

1- उग्रतारा- पृ० सं०- 42

2- वही- पृ० सं०- 42

चाहती कि भुवन का अब और शरीर विकस्य हो । वह भुवन को अपने घर में रखती हुई कहती है ---

“भुवनेसरी की कलाई पकड़कर क्वाउन्डर की बीबी ने वृद्धतापूर्वक कहा, अब तुझे कोई बेच नहीं सकता, न खरीद ही सकता है कोई । तू पर तो अब मेरा ही हुक है । मैंने तुझे अपना दिल देकर खरीद लिया लिया है । देखो कौन मेरी बहन का गला काटता है ।-----

क्वाउन्डर की बीबी निर्मला स्वयं ऐसे परिवार की रही है जिसमें शादी विवाह सामाजिक परंपराओं को तोड़ अंतर्जातीय विवाह के रूप में किया है ---

“स्वस्थ-सुन्दर युवती । लड़कियों के गैर सरकारी माध्यमिक स्कूल की अध्यापिका । स्व के बाड़े से बाहर निकल कर संघर्ष की भट्टी में तिल-तिल करके तपने वाले माँ-बाप की संतान । बी० ए०, बी०एटी० करके दो वर्ष अध्यापन । सदानंद से परिचय-----प्रोफेसर श्री सदानंद लाल । ब्राह्मण की लड़की और कायस्थ का लड़का----- दोनों में घनिष्ठता-वसाहावाद के आर्य समाज मंदिर में शादी-2-----

वह भुवन को अब और नारकीय जीवन नहीं बिताने देगी । उसके भाई और भाभी भी समाज से टकराकर एक नयी दिशा में अन्वेषण हैं । अतः भुवन को उनके पास संरक्षण के लिए पत्र लिखकर नाम बदलती हुई भेज देती है--

1- कुंभीपाठः पृ० सी०- 53

2- १४१ ख. सं.- 5४

“भैया के घरनों में निर्मला का प्रणाम । एक अनाथ लड़की आपकी शरण में जा रही है । मुझे पूरा भरोसा है कि आप और भाभी इस लड़की को अपने परिवार में शामिल कर लेंगे ।

भैया, आपने बहनों का उद्धार किया है । आपका दृश्य विचाल है----- मैं बचपन से ही आपके स्वभाव को जानती हूँ ।

इन्दिरा नाम है, उम्र है उन्नीस की । जिला मुगिर की किसी मशहूर बस्ती में पैदा हुई थी, घराना जूँपी नाक वालों का । पंद्रह की उम्र में शादी हुई । दुल्हा पायलट था, उसी वर्ष हवाई दुर्घटना में जान गवादी । इन्दिरा का फिर वही हाल हुआ, छुटी हुई तबियत के युवकों और आर्का-डीन अथेडों के बीच एक विधवा तरुणी का जो हाल होता है । गर्भ पार कराने का हुआ । एक अत्याचारी रिश्तेदार डाक्टरी इलाज के बहाने इन्दिरा को आसमन ले गया और धर्मशाला में अकेली छोड़कर जिसका आया । तब से दो वर्ष इन्दिरा के कैसे कटे हैं, यह बात धरती जानती होगी कि आसमान जानता होगा ----- हम आप तो अंदाज भी नहीं लगा सकते भैया ।

लड़कियों और औरतों की उरीद-बिक्री जिनका धन्धा था, ऐसे ही एक राक्षस के पंगुल से आपकी छोटी बहन इन्दिरा को छुड़ा लाई है-- झपट्टा मारकर पील की तरह छीन लाई----- आप मेरी पीठ ठोकी और भाभी मुझे इनाम देंगी ।”

और सदानंद वास्तव में सदानंद है अपने नाम का धनी है ।
इस प्रताड़ित और शोषित महिला को पूरा सम्मान और संरक्षण दोनों
पति-पत्नी की ओर से मिलता है —

"पत्र देखकर सदानंद ने इन्दिरा की पीठ पर हाथ रखा, बोले थे,
पिछली बातों को बिल्कुल भूल जाना सोचो कि फिर से जन्म हुआ है —
यहाँ आराम से रहो । पढ़ो और लिखो, बच्चों के साथ खेलो । बहुत सारी
सहेलियाँ मिल जायेंगी यहाँ तुम्हें----- और तभी से भाई साहब ने इन्दिरा
को ममता के दायरे में समेट लिया । और भाभी १ भाभी ने तो संजीवनी
और स्नेह का अनूठा परिचय दिया था पिछले कई दिनों के अंदर । रंजना ने
इन्दिरा को इस तरह अपना लिया जिस तरह गंगा यमुना को अपनाती है ।
पिछले जीवन के बारे में एक भी सवाल नहीं पूछा था उसने"-----

नागार्जुन का यह "कुंभीपाक" उपन्यास वास्तव में नारी जीवन के
अनेकों पहलुओं के संघर्ष को उद्घाटित करता है । उसमें तमाम शोषित और
प्रताड़ित महिलाएँ अपने गलीय जीवन से संघर्ष करने को उतार हैं । उपन्यास
की कथा के यह आदर्शवादी वाक्य कहने पर कि-----

"मर्द और औरत एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते । एक की
बोली दूसरे के लिए शब्द है । एक की पितृवन दूसरे के लिए बिजली है ।
उसकी ग्रंथ इसके लिए चकन है । यह छू देगी तो दूठ से दूसे निकल आयेगी ।"²

1- कुंभीपाक: पृ० सं०- 61

2- १६१ पृ सं० ४१.

कुन्ती नारी की गुजरती हुई जिन्की को ध्यान में रखकर वह समाज से प्रश्न करने लगती है —

"अगर ऐसी ही बात है तो क्यों ओरतें बिकती हैं ? क्यों उन पर डाक बोली जाती है ? मामूली भूत-पूक पर ओरतों को क्यों घर से निकाल देते हैं ? क्या बहन, हम क्या अच्छे घर की अच्छी बहूएँ नहीं होतीं ? मुझे और तुम्हें किसने बर्बाद किया"।

वह भुवन के निर्णय का स्वागत करती हुई ओरत के दलाल शर्मा को धुँकती हुई कहती है ।

"शाबास भुवन, शाबास । उस दूल्हे को तुमने बड़ी सफाई से अंगूठा दिखा दिया, बलिहारी है । शर्मा जी भी खुब छके । बड़े आये बाप और काया बनने वाले । ————— इस बहूटे की नाक में छत्ता डालकर, भुवन तुमने अपनी ही नहीं बल्कि सभी ओरतों की नाक रखली" 2-----

परन्तु क्याउन्डर की बीबी निर्मला में तो गजब का साहस है । उसमें समाज सुधार और नारी के प्रति अपार संवेदना है । वह अकेली भुवन इन्दिरा का ही कल्याण नहीं करती अपितु जैसा जोकि नारी शोषण के अनेकों मोड़ों से गुजरती है उसके प्रति भी वह सहानुभूति रखती है वह उनकी गलीब जिंदगी से उसे बाहर खाना चाहती है । वह इन्दिरा को पुबारा स्या हुआ से मिलाने की इतीतिश कोशिश करती है कि इन्दिरा की सँवरी हुई जिन्की को देख उसके मन में भी कृत्स्न समाज के प्रति घृणा पैदा हो वह भी अपने

1- कुंभीपाक: पृ० सं०- 87

2- वही: पृ० सं०- 88

जीवन को इन्दिरा के समान स्वाभिमान से जिस । अतः निर्मला को प्या
से इतने नीच और असामाजिक कार्य व्यापार किस जाने पर भी घृणा नहीं
होती अपितु संविदना है ----

“देखो भाभी, हुआ से मिलना इन्दिरा के लिए जरूरी नहीं है
मगर इन्दिरा का मिलना हुआ के लिए जरूरी है । इन्दिरा जिस नरक से
बाहर निकल आई है, हुआ अब तक उसी कुंभीपाक में गोते खा रही है ।
यह इन्दिरा को सामने देखेगी तो अपने अन्दर कुमुना साहस महसूस करेगी
भाभी, कलदल से बाहर निकलने का उसका संकल्प और भी तीव्र हो उठेगा,-
अधरे में भटकता मुसाफिर यदि दूर कहीं ज्योति का आभास भी पा जाता
है तो उसके पैरों में बिजली की छुर्ती आ जाती है ।”

उपन्यास में दानापूर के राय साहब भी इस गलीच विन्द्या से
छुटकारा पाने के लिए नारी को स्मृता और स्मानता के आधार पर उत्तम
जीवन बिताने और स्वाभिमान के साथ रहने की आधुनिक बात की पुष्टि
करते हैं जोकि नारी स्माज के लिए अनिवार्य है । उसके स्माज के उत्थान का
समय है ----

“बस यही आत्म विश्वास में स्त्रियों में देखा जा सकता है चम्पा ।
हम बड़ी जात वालों ने महिलाओं को मंगु बना रखा है । जीवन का सारा
रस निषोडकर सिद्धी बनाकर छोड़ दिया है ---- श्रम, पूजा, सहयोग
विषेक और कुरीति सभी आवश्यक हैं प्या । जीवन में इन पाँचों का समन्वय

करना होगा । पुस्तकों की ही बमोती नहीं है, स्त्रियों का भी साझा है इनमें ।¹

इस तरह नागार्जुन सहजता के साथ आधुनिक समाज की संरचना में संलग्न हैं जो कि अत्याचार, शोषण से मुक्त होकर समता और समानता के आधार पर टिका हो । डा० विजय बहादुर सिंह ने उसके उपन्यासों में अभिव्यक्त इसी दृष्टिकोण को एक नए समाज का संकेत माना है—

“कह सकते हैं कि नागार्जुन अधूरी दुनिया के लेखक नहीं हैं । अतः वे न तो कोरे आदर्शवादी [कल्पनावादी] हैं और न ही कोरे यथार्थवादी । उनके उपन्यास किसी निश्चित राजनीतिक या सामाजिक चिन्ता से जन्म लेते हैं और किसी स्पष्ट झगारे के साथ उत्पन्न होते हैं ।²

यह सच्ची बात है कि नागार्जुन ने वर्तमान पीढ़ी को अपनी कृतियों के माध्यम से झारा दिया है । वे ज़रूर समाज पर उपद्रव करते हैं उसे स्मृत नष्ट कर नयी व्यवस्था की आधारशिला रखना उनका उद्देश्य बनता जाता है ।

नई और पुरानी पीढ़ी का वैचारिक संघर्ष

नागार्जुन का चिन्तन उनके महान अनुभव का परिणाम है । आधुनिक शिक्षा और पश्चिमी सभ्यता के संपर्क के कारण उन्होंने वर्तमान समाज के बदलते हुए वैचारिक परिवेश को देखा है । पश्चिमी सभ्यता के संपर्क से आधुनिक समाज का प्रात्य कड़ी तेजी से बदल रहा है । आधुनिक शिक्षा ने

1- कृष्णीपाठः पृ० सं०-130

2- डा० विजय बहादुर सिंहः नागार्जुन और उनका रचना संसार पृ०सं०-125

युवा वर्ग के चिन्तन को नयी शिक्षा देकर पुरातनता के मूल्यों पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। इसी प्रश्न चिह्न के कारण नई और पुरानी पीढ़ी का पेशावरिक मतभेद उभर कर आ रहा है। प्रायः हर घर में छुट्टियों को बच्चों से यह शिकायत होना देखा जा सकता है कि वह बड़ों की बात नहीं मानते और बच्चों को यह कहते और मुँह पिटाते देखा जा सकता है कि अब वह जमाना लूट गया जिसमें आपको एक स्पर्श के एक मन गई मिलते थे।

अतः इस बदलाव को नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के दृष्ट में नई और पुरानी पीढ़ी का पेशावरिक संघर्ष माना है। वे इस पेशावरिक संघर्ष में पुरानी मानसिकता की धीधी मान्यताओं को नकारने वाले नई पेशावरिकता से सम्बन्ध युवा वर्ग का स्वागत करते हैं। नागार्जुन के युवक पुराने समाज की उन तमाम अन्ध परंपराओं, अंध विश्वासों और अंध मान्यताओं को एक आँख से भी देखना पसंद नहीं करते उनके लिए यह सभी निरर्थक हैं —

"सम्झा नहीं, हमारे गाँव में बाँधों का बड़ा सब बसा है। रात ही उन्हीं का था — अब मगर जमाना पलटा आ रहा है। बाँधों और मातियों के अपने ही घराने में यह सब नहीं पसन्दा। बाबा पूरब की ओर देखता है, पोता बिस्तुल पश्चिम की ओर खड़ा-खड़ा मूतता है। बूढ़े-बूढ़ियाँ मरते हैं, इतदीसन पर गाड़ी में उतरते समय पोते को अगर पता लग गया तो मुँह छुटाने के डर से सीधे पश्चिम की राह लेता है। लोटती गाड़ी से पटना मुकद्दर पुर पला जाता है।"

अतः इन नर मूखों के अनुपालन में युवा वर्ग सामाजिक समस्याओं को भी आधुनिक परिदृष्टि में देखता है। उनके हल को भी वह नये विचारों से प्रस्तुत करता है। परन्तु समाज की व्यवस्था पर तो वृद्ध समाज का साम्राज्य है। वे अपने इस अधिकार क्षेत्र में किसी के हस्तक्षेप को तो क्या दृष्टिपात को भी बुरा मानते हैं। हर बात की प्रतिष्ठा उनकी मुखों के बालों से संयुक्त है। इन्हीं जटिलताओं में युवा और वृद्ध मानसिकता का संघर्ष होता है। क्योंकि आज का हल आज के व्यक्ति के ही हाथ में है। अतः वृद्ध मानसिकता को आधुनिक परिदृष्टि में पछाड़ लगाना ही स्वाभाविक है।

नागार्जुन ने दाम्पत्य जीवन की अनमेल विवाह पद्धति को "नई पीढ़ी" और विधवा विवाह को "सुख मोचन" उपन्यासों में वृद्ध और युवा वर्ग की मानसिकता की टकराहट को प्रस्तुत किया है। वास्तव में समाज की ये दोनों ही स्थितियाँ बड़ी ही ज्वलंत हैं जिनमें नारी जीवन एक अभिवाप बन जाता है। और पुरानी मानसिकता इसे यथा स्थिति में रखती है। अतः इसके खिलाफ नई पीढ़ी का पेशावरिक संघर्ष मुखरित हो उठता है।

"नई पीढ़ी" में अनमेल विवाह में युवा वर्ग का संगठन है जो कि खोंखा पीठित के मनसुबे पर पानी फेर देता है। खोंखाई झा को अपनी कन्याओं को वृद्ध वरों के साथ बेचने का लम्बा अनुभव है। वह जब तक उस कन्याओं को बेचकर काफी रकम कटोर चुका है। और जीवन की अंतिम इच्छा अपनी नितानी विलेसरी को बेचने की है। युवा वर्ग यह अच्छी तरह समझता है कि इस अनमेल विवाह का परिणाम आधुनिक युग में बड़ा ही ब

भयानक होता है । कम उम्र की कन्या शरीरिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण अपने पिता वृद्ध्य पर के साथ सहवास में या तो अपने जीवन को समाप्त कर लेती है और नहीं तो पर महोदय दो चार वर्ष में परलोक वासी हो जाते हैं । और फिर प्रारंभ होता है उस बाल विधवा का अभावों और अभियोगों का भरा हुआ जीवन जिसमें वह अपने को न जाने-कहाँ-कहाँ समर्पित करती है । कहीं उसके अनैतिक गर्भ रह जाता है तो कहीं वह अर्धाभाव में पेशवा जैसा जीवन बिताती है उसे मँहगाई और सापारी में न जाने कितने घरों में प्रवेश करना पड़ता है । अतः किन्कर माहे और दुर्गानंदन जैसे युवक इसका जम कर विरोध करते हैं । वे अपने गाँव में अब इस तरह का विवाह सम्पन्न न होने देने का वचन लेकर खोंडाई झा के वृद्ध पर को गाँव से भगा देते हैं । खोंडाई झा पक्का और धिस्ता घाघ है । वह माहे पर गालियाँ देता हुआ बरस पड़ता है ---

“बाप पूल्हा फूँकते-फूँकते मर गया और तू हमारे घर में आग लगाने आया है ----- जाता है कि नहीं यहाँ से सुअर कहीं का ।”

लेकिन माहे अब इन बन्दर छुडीयों को मानने वाला है वह पैला सम्पन्न है अतः इन निरर्थक बातों पर कोई ध्यान नहीं देता । वह वृद्ध पर के भविष्य से कहता है ---

“आप तो छना है पढ़े लिखे हैं । क्यों न अपने मामा को समझाते हैं १ साठ सात की उमर, पंडीप-पंडीप जवान बेटों के बाप --- छी छी छी छी १²

1- नई पोथी : पृ० सं०- ५७

2- यही : पृ० सं०- ५७

छोटा पींडित माहे की इन तथ्यपूर्ण बातों को सुनकर आग बबूला होजाता है वह माहे पर अपने पैर की धूती उतार कर मात्ने को फेंकता है और गालियों की बोछार प्रारंभ हो जाती है ---

"पींडित वर्त पीस-पीस कर मुँह टेढ़ा कर-करके अनाप-सनाप बके जा रहे हैं, दाढ़ने हाथ की मुठिट मुद्रा बना-बनाकर और ^{बाँये} हाथ से उसकी हत्यह पकड़ पकड़ के वह माहे को कहे जा रहे हैं- केला लगा, केला 9 मौस और बाइनर 9 अपनी माँ के"-----

परन्तु इस युवा वर्ग में बेहद आक्रोश है इस अन्याय के प्रति । वे इस बूढ़े पींडित को घर के अंदर धकेल कर बन्द करके उस वृद्ध वर की हालत खराब करते हैं और उसे बिना विवाह के गाँव से जबरदस्ती विवाह मण्डप से उठाकर भगा देते हैं । और कुछ दिनों बाद विसेसरी का विवाह उसके समक्षस्थ पैतृक समबन्ध युवक वाचस्पति से कराकर अनमेल विवाह को समशील विवाह में बदलते हैं । गाँव का समूचा वृद्ध समाज वर पधू को आशीर्वाद देता है । वाचस्पति तथा विसेसरी के आदर्श साम्यत्व जीवन की शुरुआत हो जाती है । और इस तरह गाँव में नई पीढ़ी की नई पौध का रोपण हो जाता है ।

यह वास्तव है वृद्ध समाज की धोयी और कुत्सित परंपरा पर नयी पीढ़ी का प्रहार है जिसे उलने एक ही इटके में तोड़ कर फेंक दिया है । डा.0 नगीना बेन नागार्जुन की इस विविध भूमिका पर अपने विचार व्यक्त करती हैं ---

1 नई पीढ़ी: पृ. सं. 49.

"वापस्पात से पिसेसरी का विवाह कराकर लेखक पोथ घेतना की संभाषना की ओर संकेत करता है और इस प्रकार नई पोथ प्राचीन और नवीन मूल्यों का संघर्ष है ।"¹

"बुछमोपन" में भी विधवा के पुनर्विवाह को लेकर टमका कोयली के वृद्ध बड़ा बापेला मचाते हैं । वे इसे अधर्म होने की संज्ञा देते हैं । टेकनाथ और बाबू नित्यानंद बुछमोपन द्वारा उठाये गए इस कदम के सख्त विरोधी हैं । टेकनाथ समाज के चौधरी नित्यानंद को इसकी प्रथम सूचना देकर उनकी रात की नींद गायब कर देता है ———

"गर्भव की नाक बूट रही है, नित्या भाई देवी माधव की बहन का व्याह हो रहा है फिर से । ——— नित्या भाई, यह बुछ मोपन जो न करे सारी बुराफात अकेले उसी के विभाग की उपज है ।"²

समा के मरीज वृद्ध नित्यानंद यह सुनकर स्तब्ध पड़ जाते हैं वे इस विधवा के पुनर्विवाह को न जाने कौन सी देवी आपीत्त समझते हैं । वे घायल सपि की तरह अकड़ते हुए टेकनाथ से अपने भीतर की बात स्पष्ट करते हैं ———

"मैं तो बूढ़ा हूँ, मगर तुम लोग क्यों नहीं बुछ मोपन की नाक में नकेल डालते हो । उसे न किसी का लिहाज रह गया है, न डर । समूचा गाँव उसकी मुद्राही में है ।"³

1- डा० नगीना बेन: अस्पृश्यता और हिंसी उपन्यास-1976 पृ०- 140

2- बुछमोपन: पृ० सं०- 90

3- वही: पृ० सं०- 91

इसके बाव टेकनाथ के साथ बैठकर नित्यानन्द के विचारों की चक्की चलाने लगती है । कुछ मोक्ष द्वारा दिया जाने वाला यह कार्य कुछ नित्यानन्द के अस्तित्व को पुनर्जीव दे रहा है । वह अपनी अवस्था को आज खतरा मान रहे हैं —

“ हे राधेश्वर बम्बोले नाथ, यह कैसा जमाना आया है----
जात-परीत और धर्म-कर्म पर संकट ही संकट लड़ता पला आ रहा है ----
कल के छोकरे हम कुलों की नाक में कोड़ी बांध रहे हैं । पालीस मेंतालीस की उमर के बाद सिर्फ बाल ही पकने लगे जाते हों ऐसी बात नहीं, बल्कि अपमान और तिरस्कार भी शुरू हो जाता है घर के लड़के तक बात नहीं मानते हैं ----- अच्छा हो कुछ मोक्ष हमारा लगा घोंट दे”।-----

अकेले नित्यानन्द ही नहीं स्वयं केजीमाधव के ताउ इस विधवा विवाह के खिलाफ हैं । उनके कानों में जब यह शोक पहुँची है तो वे आग-बबूला हो उठते हैं । गुस्से में आकर घंठ से छड़ी लेकर कुछमोक्ष की पिटाई करने लगते हैं -----

“पाण्डित तोटे तो गुस्से के मारे धर-धर कपि रहे थे । पानी भरा लोटा वातान के बरामदे में पटक दिया और छड़ी लीलाकर अन्दर छपेली में आ गय ---- और कुछ मोक्ष पर अधातुय छड़ी चलाने लगे -----
पाण्डाल, पापी, विधर्मी छुट से यही तीन सम्बोधन निकल रहे थे ।”²

1- कुछ मोक्ष: पृष्ठ सं०- 92

2- वही: पृष्ठसं०- 98

लेकिन कुछ मोपन की स्वस्थ विचारधारा और पूरवर्धिता से विधवा माया का पुनर्विवाह असर्क कपिल के साथ आर्य समाजी पद्धति के अनुसार सम्पन्न होता है। वह वैधव्य को समाज की भ्रंशर बीमारी मानकर ही उसका निदान पुनर्विवाह में करता है।

कर्णिय संघर्ष और उसकी सामाजिक स्थिति

वर्तमान देहाती समाज अब शहर और आधुनिक शिक्षा से कुछ जाने के कारण नर रूप में बनते जा रहे हैं। उनमें कर्णिय चेतना उत्पन्न हो रही है। आधुनिक पूँजीवादी सभ्यता में जाति सत्ता का सत्ता के रूप में क्या शहर क्या देहात हर जगह फैलती जा रही। गरीब पाछे सवर्ण हो या असर्क उसका अपना एक का सर्वहारा का है तो कुतरी और निम्न जाति का व्यक्ति यदि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है तो वह उच्च का में गिना जाता है। इसका असली रूप हमें उसके यहाँ सम्पन्न होने वाले रीति-रिवाजों के बीच खड़ी आसानी से देखा जा सकता है। धनी का अपने तमाम सामाजिक उपक्रमों में अपने ही का के धनी व्यक्तियों को आमंत्रित करता है, पाछे वे किसी जाति किसी का अथवा किसी का को मानने करते हैं। वह जाति के लोगों को तो मात्र लोक लज्जा के कारण ही दो पार की संख्या में संघर्ष में लाता है। अतः वह का सत्ता आज समाज में वहाँ एक व्यवस्था को जन्म दे रही है जहाँ हमने संघर्ष का बीच भी बो दिया है।

आधुनिक शिक्षा के परिणाम स्वयं चेतना के प्रचार से प्रत्येक व्यक्ति इसी बीच रहकर शत्रु और मित्र के संघर्षों को पहचान रहा है। वह अगर उठे

के लिए अपने शत्रु से संधि करता है तो अपने समूह को मजबूत करने के लिए अपने मित्रों से सहयोग की अपील करता है ।

नागार्जुन समाजवादी चेतना के अनुयायी हैं अतः उनकी कृतियों में वर्गीय संघर्ष की भूमिका को प्राथमिकता के साथ लिया गया है ।

"बलघनमा" उपन्यास में बलघनमा इस वर्ग विभाजन को बड़ी सहजता के सामने प्रस्तुत करता हुआ अपने शोषित वर्ग और दूसरे शोषक वर्ग की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालता हुआ कहता है ---

"अच्छा तो भगवान करते ही हैं 9 बार परानी का परिवार छोड़कर मेरा बाप मर गया, यउ भी भगवान ने ठीक किया । भूख के मारे दादी और माँ आम की गुठलियों का गूदा घूर-घूर कर फाँकती थीं, यह भी भगवान ठीक करते थे । और मालिक लोग ककड़ीर, और तुलसीपूल के छुण्डवार भात, अरहर की दाल, परवल की तरकारी, घी, सब्जी और पत्नी खाते हैं तो यह भी भगवान की लीला थी ।"

बलघनमा की इसी पक्की चेतना को तब एक दिशा मिलती है जबकि उसकी बहिन रेबनी पर मातृत्व बलात्कार करते हैं । यद्यपि बलघनमा के दिम उन्हीं मातृत्वों की पूजन से बढते हैं लेकिन वह अपनी आँख पर दाग लगने के कारण तितलमिता जाता है । उसकी माँ उसे पहली बार संघर्ष के तहते पर उतारती हुई कहती है ---

बहुआ-कलपन । मर जाना लाख गुना अच्छा है मगर इज्जत का तोड़ा करना अच्छा नहीं ।¹ बलपनमा को अन्याय के खिलाफ ये शब्द पहली बार सुनने को मिलते हैं तो उसकी छाती बासों उठलने लगती है और वह सीना ठोक कर सामाजिक अन्याय के खिलाफ कहता है ---

"वाहे उजड़ जाना पड़े, वाहे जहल-दामुल हो, वाहे फाँसी पड़े मगर कभी जालिम के सामने सिर नहीं झुकाऊंगा ।"²

गरीब बलपनमा स्वाभिमान के लिए संघर्ष पर उतर आता है । अन्याय के खिलाफ लड़ाई उसके मन में बस जाती है । डा.0 कुंवरपाल सिंह उसकी इसी घेतना पर बड़ी सार गंभीर बात कहते हैं ---

"बलपनमा ने स्कूल में पढ़कर मार्क्सवाद नहीं सीखा । उसके जीवन की कई अनुभूतियों ने उसे मार्क्सवाद सिखाया । वह तप-तप कर सोना बना है ।"³

और वह अपने कर्णिय संगठन को मजबूत कर इस संघर्ष की युद्धिम को आगे बढ़ाने में लग जाता है । उसे ज्ञात है कि इन आतताइयों के पुत्त के किले को अकेले उस जैसे असहाय और निर्धन व्यक्ति नहीं तोड़ सकते । जिस तरह स्वार्थ के लिए ये बाबू लोग एक हो जाते हैं वैसे ही वह मजदूरों को एक होने की आवश्यकता मानता है ---

1- बलपनमा: पृ० सं०- 76

2- वही: पृ० सं०- 76

3- डा.0 कुंवरपाल सिंह: हिंदी उपन्यास सामाजिक घेतना-पृ०- 180

“जैसे अग्नि बहादुर से तोराज लेने के लिए बाबू भैया सब एक हो रहे हैं, बल्ला गुल्ला और बगड़ा ईश्वर मचा रहे हैं। उसी तरह जन बिनहार कुली, मजदूर और बहिया खास लोगों को अपने हक के लिए बाबू भैया से लड़ना पड़ेगा।”¹

बलघनमा अब जाति की नहीं कर्म की सत्ता का हिमायती है। उसके लिए अब समाज में दोही कर्म हैं शोषक और शोषित। अतः शोषक के विरुद्ध उसका यह पहला आग्रहान है जोकि उसने अपने कर्म शत्रु को पहचान कर किया है। डा.0 रमेश कुन्तल मेघ उसकी इसी भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं —

“इस तरह बलघनमा पहले तो शत्रुओं की पहचान करता है और फिर लड़ाई [संघर्ष] के रण कोशल को तय करता है।”²

“रतिनाथ की चाची” में गौरी चाची किसानों की संघर्ष पाठिनी के लिए मना करने पर एक कम्बल इसीलिए दे देती है कि—

“यह पस का काम है। पैसा का काम है। गरीबों का यह है। मेरे पास और है ही क्या, जो देती।”³

काम करने वाली घरेलू महिलाएँ “वृक्षमोक्ष” उपन्यास में अपनी मजदूरी बढ़ाने के लिए अंततः करती हैं। बढ़ती हुई मजदूरी से वे भी सुस्त हैं अतः अपनी मजदूरी को वे कम समझती हैं और अधिक पगार पाने

1- बलघनमा पृ० सं०- 93

2- डा.0 रमेश कुन्तल मेघ: क्योंकि समय एक शब्द है- पृ० सं०- 290

3- रतिनाथ की चाची: पृ० सं०- 93

के लिए उन्होंने अंततः व्यक्त करने का रास्ता अपना लेती हैं। इस बात को सुझोपन की मांगी स्पष्ट करती है—

"सिर्फ पानी भरने पर एक रूपया और बरतन वासन मांगने, झाड़ू छुहारी करने पर अठन्नी और ---- बहुआन शहर का हाल तो तुम्हें ही मालूम है, मगर देहात में भी अब पीज बस्त के दर-भाव यूँ उँच पढ़ गए हैं ----- इन्होंने भी अपनी मेहनत का रेट बढ़ाने का इरादा कर लिया है।"।

नागार्जुन पुजारी वर्ग पर भी दृष्टि रखते हैं। उनकी टोंग लीला को वे अच्छी तरह पहचान कर उनके वर्ग में उनके लोग ही आपस में बातों का बयान देते हैं। कल तक जो टोंग, आडम्बर और चमत्कार में हुआ बाबा था, "जन्मनिया" का बाबा" उपन्यास में उसके जीवन सञ्जाप्त करने की योजना वहीं के एक पुजारी बाबा कीतराम द्वारा बनाई जाती है। यह बाबा की नीच प्रवृत्तियों और गन्दी आदतों से विफ्रेड करता है—

"मैं देखूँगा जेल से छूटने के बाद यह बाबा किधर जाकर बैठता है। मैं देखूँगा किस तरह फिर से अपनी जटाओं के अंदर जू पासता है। मैं देखूँगा, किस तरह पाकिस्तानी और चीनी जातुस इस जटाधारी के इंगीन योगों की आड़ में पनाह पाते हैं।" 2

इस तरह नागार्जुन के उपन्यासों में उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग के मित्र और दुश्मन के रूप में वर्गों की आपसी टकरावट मिलती है। यह

1- सुझोपन: पृ० सं०- 76

2- जन्मनिया का बाबा: पृ० सं०- 84

टकरावट एक नये निर्माण के लिए अनिवार्य होकर आयी है । अतः समाज में संघर्ष के मुद्दों की शुरुआत कई स्तरों पर है । नागार्जुन ने बड़ी बारीकी से उन्हें पकड़ा है । उन्हें एक विषय की है । अपने इसी चिंतन पक्ष पर नागार्जुन प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं । समाज की दैनिक गति-विधियाँ, उनके बदलने और टूटने के साथ नए रूप में उभरने के क्रम को उन्होंने पहचाना है अपनी कला धर्मिता पर परखा है ज़ापा है । यह वह स्थिति है जहाँ नागार्जुन प्रेमचंद से आगे हैं । क्योंकि प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में वर्तमान पर दृष्टि रखी उन्होंने समाकालीन राजनीति के परिप्रेक्ष्य में समाज की व्याख्या की है । परन्तु नागार्जुन ने सामाजिक अध्ययन में नूतनता का परिष्कार दिया है । बाल विवाह, विधवा, दहेज, बहुपत्नी आदि जैसे समस्याएँ आज भी हैं और उस समय भी थीं परन्तु नागार्जुन इनकी व्याख्या आज के संदर्भ में वैज्ञानिक धरातल पर करते हैं । नागार्जुन प्रेमचंद की तरह सामाजिक समस्याओं का हल "सुधार" के रूप में न कर उसका स्थाई अंदोलन करते हैं । उदाहरण के लिए विधवा समस्या को देखा जा सकता है । प्रेमचंद की तमाम विधवाएँ अनमेल वर का शिकार हैं जोकि कम उम्र में शादी हो जाने के कारण पति की मृत्यु से जीवन भर कष्ट और सामाजिक प्रताड़ना झुगतती हैं । उन्हें सामाजिक सम्मान और स्वावलंबन जैसी चीज समाज से प्राप्त नहीं होती । यद्यपि प्रेमचंद की सहानुभूति इस कर्ष से बँधव रही और स्वयं ने एक विधवा से उसके सामाजिक सम्मान के लिए विवाह भी किया परन्तु वे उसे अपने पात्रों में सिद्धान्त के तौर पर लाने में असमर्थ रहे । उनके

नारी पात्रों ने भी उनकी न तो मक्य ही की और न ही सहयोग दिया ।
प्रेमचंद की विधवा अकेली समाज के एक कोने में सेवासकल खोल कर बैठी रही ।

परन्तु नागार्जुन ने अपनी विधवाओं को सम्मान और सहयोग दिया है । समाज के सामने उसे प्रतीकृता दी है जिसके फलस्वरूप पुरातन पंथी समाज को करारी मात देकर नवीन सामाजिक संरचना की आधारशिला रखी है । उनकी विधवाएँ येता सैन्य हैं वे राजनीति में सक्रिय हिस्सा लेती हैं । वे देश और समाज के मुद्दों की पहचान जानती हैं । "रीतनाथ की चाची" की गौरी यही सब समझकर किसानों के अधिकार के लिए तारापरण को अपनी गरीबी की हालत में भी सुत कातकर धँसा देती है । वह इसे देश का काम है दत्त का काम है" मानती है । वह समाज सेवा में सबसे आगे आने वाली महिला है । अन्य विधवा महिलाओं के जीवन का तो नागार्जुन ने क्रान्तिकारी समाधान "पुनर्विवाह" कराकर प्रस्तुत किया है । इस पुनर्विवाह में उन्होंने कई आधुनिक महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं जो प्रेमचंद में दृष्टिगोचर नहीं होते । नागार्जुन का पुनर्विवाह या तो अन्तर्जातीय है जैसा कि "दुखमोहन" में कपिल और माया का है । गवि की पुरानी पीढ़ी की घनघोर खिलाफत के बाद दुखमोहन जैसा पात्र मैथिल ब्राह्मणी विधवा की शायी भूमिहार से नित्यानंद और टेकनाथ जैसे समाज सर्वो के रहते टमका-कोयली मंडी में तरेआम कराता है । यह वह सुस्जात है जिससे कई पिछीन समाज की रचना संभव है साथ ही एक नारकीय जीवन की इति कर उसके स्थान पर स्वस्थ भावों का धन्य ।

नागार्जुन ने इस अभिषिक्त समाज को एक और क्रान्तिकारी द्वार "उग्रतारा" उपन्यास में खोला है जो कि हिन्दी उपन्यास में आज तक देखने को नहीं मिलता । उगनी जैसी बाल विधवा जो कि जीवन के एक मोड़ पर भभीखन सिंह से गर्भवती होकर भी अपने मनचाहे घर कामेश्वर को प्राप्त कर जाती है । और कामेश्वर भी --- "नए समाज का युवक है, पुराने ढंग का छिछोर नौजवान नहीं" गर्भवती उगनी को बिना किसी शिक्षक और समाज की परवाह किए उसकी सूनी माँग में सिंगूर ढालकर उसे धर्म पत्नी बना देता है । नागार्जुन वैधव्य से पूरी तरह परिचित हैं उसकी नारकीय जिन्दगी के गली गलियारे उन्होंने स्वयं जाकर देखे हैं । वे नहीं चाहते कि नारी निकेतन के मालिक लोग ओषध्य संहानुभूति देकर उनके साथ रंगीन रातें बिताते रहें वे नहीं चाहते कि वे समाज में उपेक्षित और नारकीय वातावरण में रहें । इसलिए वे विधवाओं के पुनर्विवाह से कृत्स्न समाज की कीचड़ तोड़ने का दृढ़ संकल्प लेते हैं ।

एक और बात इस लेखक में अपने समकालीन और पूर्ववर्ती लेखकों से भिन्न है वह है "नारी संगठन" की । उन्होंने नारी संगठन के माध्यम से समाज की घिनोनी कुरूपताओं का अन्त किया है । वे नारी के ईर्ष्या, जलन, डाह जैसे परंपरावादी दृष्टिकोण के शिकार नहीं हैं । ऐसी व्यूहकार करने वाली नायिका की उन्होंने बड़ी बख्शी उधड़ी है- "रतिनाथ की

चाची" की कर्मिणी, जनक विधोरी, शकुन्ता रामपुर वाली आदि का नागार्जुन ने उनके इन्हीं दीव्यानुत्ती विचारों" के कारण दूब ठिली उड़ाई है । परन्तु "उग्रतारा" हैं कामेश्वर की भाभी और कुंभीपाक में कम्पाउण्डर की बीबी निर्मला, प्रोफेसर सदानंद की बीबी रंजना आदि महिलाएँ स्वस्थ चिंतक और आधुनिक विचार संमन् हैं वे शोषित और और समाज द्वारा प्रताड़ित उग्रतारा और ईषिरा जैसी नारियों को संरक्षण ही नहीं देती बल्कि उनके मन चाहे संकल्पों को पूरा कराती हैं । नागार्जुन ने यहाँ आधुनिक नारी की इस भूमिका को आधुनिक समाज के स्वस्थ विकास में आदर का स्थान दिया है ।

धर्म का आधुनिक स्वल्प और उसकी विद्रुमताएँ

धर्म से जमींदार और पूँजीपति का लगाव आजकल आत्म श्रद्धा के लिए नहीं है । उसके धर्मात्मा बनने की प्रवृत्ति ईश्वर प्रेरित हो यह बात नितान्त अमूर्ध है । पूँजीपति भविष्य, मठ और धर्मशास्त्रों कई प्रणितियों से बनवा रहा है । सबसे पहला कार्य यह इस धर्मध्वजा की आड़ में छेड़ें डोकर

सामाजिक सम्मान अर्जित करता है । इस सामाजिक सम्मान की काली छाया वह जनता पर ऐसी डालता है कि वह कुछ भी नहीं देख पाती । और मंदिर में रखे भावान और बैठे पुजारी के साथ-साथ सेठ जी के भी चरण स्पर्श किए जाते हैं । दूसरे, धर्म के नाम पर वह बड़े-बड़े काले कारनामे करता है ।

काला बाजारी, तस्करी, लड़कियों की उरीद फरोखत वहाँ छुलेआम होती है जिसमें महंत का सबसे अधिक प्रीत्यात बंधा हुआ होता है । तीसरे मठ, मंदिरों आदि के बनवाने से उसे सरकार की ओर से भारी "इन्कम-टैक्स" में छूट मिलती है । अतः वह अपने काले धन को स्वेत मंदिर में लगाकर पुनः काले धन्ये में जुट जाता है । भारत के सबसे बड़े पूँजीपति बिड़ला इस बात का उदाहरण है । हर बड़े शहर में उनका एक मंदिर और धर्मशालाएँ तर्क इसीलिए हैं कि वे सरकार से धर्म पर मिलने वाली तमाम सुविधाएँ हासिल करें और उनका दुरुपयोग अपने उद्योगों में कर सकें । इसीलिए वह मठ पर ऐसे पंडे और पुजारियों को रखते हैं जो सबसे पहले उनके घर "प्रसाद" दे, उनकी उँगलियों पर नाच-नाचे मंदिर में भावान की मूर्ति के साथ उनके पूर्वजों की तस्वीर भी दीवारों पर लटकाए ।

यही स्थिति बड़े भू-स्वामी और जमींदार की है । जमींदारी उन्मूलन के बाद उन्होंने फाजिल जमीन को घेरने के उद्देश्य से मठ और मंदिरों का सुझन शुरू कर दिया है । गाँव की हजारों एकड़ परती जमीन पर एक मठ बनाकर उस पर हर रोज रामनामी कीर्तन होते हैं । शहरों में भी यही स्थिति बनी हुई है नए-नए देवालय चौराहों की फाजिल जमीन पर चार-चार ईंटों के लाल धक्का के साथ निर्मित हो जाते हैं ।

अतः आज धर्म एक नैतिक कार्य न होकर एक शक्ति के रूप में उभरा है । कर्म से जुड़कर जितना कुर्म और शोषण किया जा सकता है वह दुर्म्य है । भगवान के नाम पर किए गए सभी व्यवहार वहाँ दिन रात हो रहे हैं । भारत का शिक्षित और अशिक्षित समाज धर्मलीला में बहुत ही अंध विश्वासी है । धर्माधिकारी, मठाधीश, साधु सिंद अनेक जालसाज इस धर्म भीरु समाज को आज बीसवीं शती के अंतिम चरण में भी जहाँ मानव-सम्यक्ता भरती और आकाश को मिला चुकी है झाँसा दिए जा रहे हैं । अपनी अमानवीय एवं निर्लक्ष्य कर्तव्यों पर आध्यात्मिक छूटाली ओढ़कर इन मठाधीशों ने अपना बहुमुखी स्वास्थ्य लाभ किया है । आशीर्वाद के रूप में उन्होंने दोनों हाथ जनता के सिर पर न रखकर उसकी आँखों पर रख दिए हैं ।

नागार्जुन ने धर्म की इस उभरती हुई शक्ति और उसके साथ जुड़े हुए शोषण के अनेकों रूपों को देखा है । नागार्जुन ने ब्रह्मन से ही देववाणी संस्कृत का अध्ययन किया है, बौद्ध धर्म में वीक्षित होने से मठों की आंतरिक स्थिति को पटवाने हैं इसीलिए उन्होंने आधुनिक धर्म की भूमिका को भलीभाँति परखा है । अतः लोगों के अन्ध विश्वास और परंपरागत रूढ़िगत मान्यताओं के बीच में से नवीन चेतना का अंकुर निकाला है ।

"बलघनमा" के अन्तर्गत बाबू ज्योदानंदन का पुरोहित, धर्म की व्याख्या निरर्थाक स्वार्थ में निर्लिप्त होकर कर रहा है । पुरोहित जी उनके यहाँ दिन रात बैठक लगाते हैं । सुरती फाँक-फाँक कर पेट का हाजमा

धुरस्त कर रहे हैं । ये धर्म की व्याख्या धर्म के रूप में न कर मातलक और मजदूर के संदर्भ में करते हैं -----

"जो बीड्या [मुलाम] झट-तो [स्वामी] को प्रसन्न रहता है उसके लिए स्वर्ग में अमृत की धार बहती है । ओरे जसोधर बाबू, मिट्टी का ठहरा शरीर गिरता है तो धाक हो जाता है । समझदार वह है इस चोले को पाकर छुछ कर जाता है ।"

धर्म के आवरण में लपेट कर कड़ी गई यह बात कितनी विषय है । पण्डित जी केवल मजदूर को ही चोला पाने वाला समझ रहे हैं, उसका शरीर ही मिट्टी का है, केवल उसी के कर्मों के आधार पर स्वर्ग और नरक का निर्णय है । बाबू जसोदानंदन और स्वयं पण्डित जी को लग रहा है कि उनका चोला दूसरा है जिसके लिए हर प्रकार के कर्म कुकर्म करने पर भी स्वर्ग का दरवाजा खुला हुआ प्रतीक्षित है ।

वास्तव में यह पण्डित जी की अपनी बातें नहीं हैं । इसके पीछे उनकी स्वार्थपूर्ति छुड़ी हुई है । उन्हें ज्ञात है कि बलघनमा की तरफवारी करने से उन्हें कुछ भी पल्ले नहीं पड़ेगा, हानि ही हानि है । क्योंकि बलघनमा गरीब है उसके पास दान वक्षिणा देने के लिए कुछ नहीं है । उसकी रिक्त हस्तता उसे स्वयं ही भूखों मारे डाल रही है । इधर, बाबू जसोदानंदन गाँव के बड़े भू-स्वामी हैं, उनका आस पड़ोस में नाम है । अथवा सम्पत्ति के

नाम पर छपारों बीछे छेत, बाग, तालाब हैं और पत सम्पत्ति के छपारों का लहना लगाया, लगाया झुण्डा पत रहा है यों कहिये कि उनकी कुटिया में लक्ष्मी जी विग्राम कर रही हैं । अतः प्रीति जी को इस घर से थोड़ा नहीं बहुत कुछ प्राप्त होने की आशा हर दिन लगी रहती है । इसीलिए वे बलपनमा और उसकी विधवा दासी को धर्म का अमीमी नशा देकर स्वर्ग नरक के दरवाजे की बात करते हैं । साथ ही विधवा को लात और धूँत खाकर पीकर होने वाली जाति बताते हैं ---

"राहि सई पवित्र हूँ :-"

आजकल जहाँ तक स्वार्थ सिद्ध हो सकती हैं वहाँ बड़ी दूर तक धनवान व्यक्ति धर्म के प्रति बड़ी कठरी आस्था दिखाते हैं । उसका अक्षरशः पालन करने की कोशिश स्वयं तथा बच्चों तक से होती है । राधाबाबू की बहिन उन्हीं लोगों का प्रतिनिधित्व करती है । बलपनमा के कठरा सीखने पर उसे इसीलिए आपीत्त है कि एक तो वह उनका समकर्मि न होकर नोकर है, दूसरे निम्न जाति का है शूद्र है । अतः वह अपने व्योमूढ ससुर से यह धर्म में मतलब की बात अच्छी तरह सुनकर याद रखती है ---

"छोटी जाति वालों को जो एक आखर भी ज्ञान देता है उसका अपना तेज घटता है, और जो कोई शूद्र को समूची पोथी पढ़ा दे, उसके पित्तार स्वर्ग छोड़कर नरक में रहने को मजबूर होते हैं ।"²

1- बलपनमा: पृ० सं०-14

2- वही पृ० सं०- 127

उपन्यास में यह सामाजिक धर्म का दूसरा उद्घाटन है। यहाँ धर्म की आड़ में उच्च वर्ग की मानसिकता का परिचय है। उच्च वर्ग की यह कोशिश आजकल बड़े जोरों से निरंतर जारी है कि छोटा आदमी तब तक उनके नीचे पड़ा रहे। यद्यपि उस गरीब को शासकीय संरक्षण प्राप्त है परन्तु उसका सामाजिक ^{प्रद-ता} भक्षण दिन रात हो रहा है। वह बड़े लोगों के बराबर न आ सके इसलिए उसके विकास के तमाम रास्ते रोक दिए जाते हैं। आजकल हरिजननों, आदिवासियों, पिछड़े वर्ग के लोगों, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों को जिन्दा जलाने, घर फूँक देने के पीछे यही ईर्ष्या काम कर रही है। वे उनके पास रहते हैं बड़े घर के लोगों को यह अच्छा नहीं लगता। क्योंकि उससे उनकी शान घटती है, ये गरीब हैं अच्छा खा नहीं सकते, पहन नहीं सकते भूखे नीचे घोंगे तो उनकी शान में बूँटा लगेगा, गरीबों के मैले कपड़ों और पसीने से लथमथ शरीर की कुन्ध उनको सह्य नहीं है। अतः उन्हें अपनी आँखों की फिरात की किरकिरी न बना कर उखाड़ फेंक ही वे बेहतर समझते हैं। यदि वे शासकीय संरक्षण में पड़ रहे हैं तो उन्हें नौकरियों आदि में अच्छा स्थान न मिले इसलिए वे उनके विकास के तमाम रास्ते रोक देते हैं उन्हें दिग्भ्रमित करने के लिए उनके धूम-ध्वजों को भी रहते हैं।

नागार्जुन ने गाँव में धर्म को कृषि के साथ जोड़कर एक बड़ी शक्ति के रूप में माना है। धर्म गाँव के जमींदार का कवच के रूप में काम करता रहा है। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के बाद फायित्व जमीन को बँटवने

के लिए हर दृष्टिकोण अपनाते हुए धर्म के नाम पर यह भी भीतरा सेतरा वह गाँव में घुसा रहा है। यह भूस्वामी और पूँजीपति स्वयं ताम्रती की मिली जुली भूमिका का परिणाम है। नागार्जुन इस तथ्य का अनावरण अपने "जमनिया का बाबा" में करते हैं—

"जमनिया का मठ कोई परंपरागत मठ नहीं है। आज से दस बारह वर्ष पहले वहाँ कुछ नहीं था, वीरान था। जमींदारी, तालुकदारी प्रथा के उन्मूलन का कानून पास हुआ तो जमनिया और लखनौली के दो तीन भूस्वामियों ने मिलकर ज्यादा से ज्यादा जमीन हड़पने के लिए रातों-रात "जमनिया मठ" की स्थापना कर डाली। नारायणी नदी जहाँ नेपाल की तराई से नीचे उतरती है वहीं उत्तर प्रदेश और बिहार प्रान्त भी आपस में मिलते हैं, उस कठार भूमि से वे एक जटाधारी ओछे बाबा को लिया लाए। जमींदारों ने उसी विषम व्यक्ति को अपने मठ का महन्त घोषित किया।"

ताम्रती समाज भी इस पुण्य काम में पीछे नहीं है। वह भी धर्म के नाम पर अपने को कुर्बान कर रहा है। शिव नगर स्टेट की महारानी की जमनिया के मठ से संयुक्तता इस वर्ग का बानगी बतौर उदाहरण है। महारानी जमनिया के मठ पर होने वाले दोंग और आठम्बर को वहाँ रहकर संवन्न कराती हैं।—

“मैं भी सत्याग्रह करूँगी । ठाना तो छोड़ ही दूँगी, पानी भी नहीं दूँगी----- आप समाधि पर पाहे महीनों बैठें, लेकिन कम से कम फलाहार तो अवश्य हैं । असाढ़ का मेला भी जमने दें । बाजार वालों से मेले की तैयारी या हवन-पूजन-लंगर आदि के लिए एक दाना न लिया जायगा, न एक पाई । कुछ ज़रूरी इस बार शिव नगर स्टेट देगा, बस, अब आपकी कृपा चाहिए ----- यह मठ की अतिथिवाला के उस छास हिस्से में ठहराई गई थीं जो श्रीमती के लिए ही तैयार हुआ था। टोकरी भर मोसंबी साथ लाई थीं । छुद से उन्होंने रस निकाला था ।”

प्रत्येक धर्म मठ से स्वार्थी लोगों का जुड़ाव स्वाभाविक होता है । पूँजीपति, सेठ, साहूकार, अपने कालेधन को स्फेद कराने के चक्कर में धर्म ध्वजा की झीलझाया में करवटें बदलते रहते हैं । आजकल आयकर और बिछीकर से बचने के लिए दान लीला का यह स्वार्थी रचाया जाता है परन्तु मठों से चढ़ाये के तौर पर होने वाली आमदनी का कोई हिसाब-किताब नहीं । जमानिया के मठ से होने वाली आमदनी और लोगों की बढ़ती ओ-कात तथा परिवार के पनपने का भण्डाफोड नागार्जुन ओयड बाबा के आत्म विश्लेषण से कराते हैं ---

“यह क्या मेरी पटाओं का ही जादू नहीं था कि भोती ने अपनी चारों लड़कियों की शादी में साखी स्पस छर्प किस । लालता ने अपने

क्यों को डाक्टर इन्जीनियर कैसे बनाया, सेठ विधीरुद की तौंद तिलुनी किस तरह हुई ? ठाकुर शिखरूजन सिंह ने ट्रेक्टर क्यों से खरीदा ? रामजनम आ और सुखदेव की क्या हेतिस्यत थी दस वर्ष पहले ?"।

यह तो सामाजिक स्वार्थों से जुड़े लोगों की स्थिति है । वर्तमान राजनीति भी यहाँ से सीधा संपर्क साधे हुए है । बड़े-बड़े प्रशासक और राज-नेता बाबाओं की चरण रज एवं चरणामृत को प्राप्त करने के लिए दिन रात इन नवोदित आचार्यों, भगवानों, परमहंसों, ईश्वरों और महाप्रभुओं की आराधना में लगे रहते हैं । इन बाबाओं का वर्तमान राजनीति में तो इतना दखल है कि उनके झ्वारे से उनके शिष्यों को बेधक बिना प्रतीक्षा और श्रम के मनोनुकूल पदों की प्राप्ति हो रही है । "जमनिया का बाबा" में इसका संकेत साफ-साफ दिखाई दे रहा है ---

"तिरंगा वाले तो मठ वालों को मिलाकर ही चलते हैं । उन्हें मदद मिलती है । मठ से ।" 2

धर्म-मठों पर होने वाली तस्करी और हेराफेरी आज आम व्यवहार में आ गई है । महंत तमाम पिकेसी मास को अपनी जूटाओं के माध्यम से इधर-उधर कराते रहते हैं । नार्मार्जुन ने इस तथ्य पर बड़ी सटीक टिप्पणी की है ।

1- जमनिया का बाबा पृ० सं०- 143

2- पछी- पृ० सं०- 14

“हमारे समाज के अंदर ठोर-ठोर पर कूड़ों के अम्बर इकट्ठे हैं—
इस तरह के छै इस बाबा लोग वहीं अपना आसन जमाते हैं और रातों
रात नर-नर मठ छिड़े हो जाते हैं। फिर वहाँ टाका काठमांडू होकर
गुपगुप कीमती माल पहुँचाने लगते हैं—----- छोकरियाँ आती हैं छेले आते
हैं, उनके साथ टेप रिकार्डिंग मशीन होती, ट्रान्स्मीटर होता है।”¹

परन्तु नागार्जुन यथा स्थितिवादी नहीं हैं। वे धर्म मठों की
इस अधी गद्दी को ध्वस्त करने में दिन रात अपनी लेखनी से लगे हुए हैं।
उनका अध्यानंद स्वामी, बाबा की शान्त बुला देता है। उसके तमाम
अत्याचारों के कारण उसकी जेल कराता है। नागार्जुन अपने कर्षक स्वर
में कहते हैं —

“जमनिया का मठ भारत माता की पीठ पर पक्षाघात का
जहरीला फोड़ा है। इसे हम कब तक बर्दाश्त करेंगे ?”² इस तरह का
प्रश्न पिछन लगाकर वह जनता में नवीन चेतना के माध्यम से अधी विस्थापनों
को स्मूल नष्ट करने के लिए दृढ़ संकल्प हैं।

इस तरह यह साफ जाहिर है कि नागार्जुन का सामाजिक मिशन
अपने समकालीन और पूर्ववर्ती लेखकों से अधिक आधुनिक है। वे समाज की
समस्याओं के मूल पर घोट करके आधुनिक परविष के अनुकूल उन्हें स्मूल नष्ट
करते हैं। वे वर्गीकृत समाज के पक्षमाती हैं। उनके तमाम उठाव गर
कम इसका प्रमाण हैं।

1- जमनिया का बाबा: पृष्ठ- 139

2- वही: पृष्ठ- 104

चतुर्थ अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित राजनीतिक संघर्ष

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित राजनीतिक संघर्ष

भारतीय स्वतंत्रता लम्बे संघर्षों, बलिदानों और यातनाओं के फलस्वरूप जन-जीवन के संपूर्ण सहयोग से प्राप्त हुई थी । स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए भारत का बालिग-नाबालिग प्रत्येक व्यक्ति लड़ा था किसी का बेटा जेल गया था, किसी को फाँसी हुई थी किसी को काला पानी और जन्म कैद लेकिन आजादी के सपने के लिए सभी ने उसे ब्रह्म विश्वास के साथ झेला और वह दिन भी देखा जबकि उनकी कुर्बानियाँ सफल हो गईं । आजाद भारत में स्थानीय शासन के अन्तर्गत उसने सर्वप्रथम अपनी जमीन से छुड़ने की बात देखी थी, परन्तु सत्ता के स्वार्थ में वे तमाम आर्क्ष और मर्यादाएँ उन रहनुमाओं के हाथों से जाती रहीं जिन्होंने यह शपथ ली थी कि देश देश वालों का होगा । गरीब मजदूर छोटा मझोला आदमी जो अपना सब कुछ त्याग कर देश प्रेम के नाम पर स्वतंत्रता के अडाहे की लड़ाई में निकला था वह फिर पिछा गया है । धनजय वर्मा का यह मत उस पूरी व्यवस्था का सही मूल्यांकन करता है जिसमें आजादी से पहले और बाद का निरन्तर विद्यमान है ---

“भारतीय संघर्ष में स्वतंत्रता पूरी तरह पारिभाषित हो, इसके पहले ही उसका अक्षुत्पन हो गया । जिसे हम भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन कहते हैं उसका मकसद राजनीतिक स्वतंत्रता था और वह भी एक सपने की

हास्त में स्वतंत्रता मिली और हमें स्वर्ग मिल जायेगा ——— उसके मिलते ही पोंतरफा मोह भंग का जो तिलतिला झूह हुआ, उसने साबित कर दिया कि वह तर्क सत्ता का हस्तांतरण था। उसमें विदेशी पूँजीपति के बड़े देशों पूँजीपति बैठ गया और विलायती गोरी नौकरशाही की जगह देशी काली नौकरशाही ने ले ली।¹

इस बात की पुष्टि हमें पं० जवाहरलाल नेहरू के उस कथन से भी मिलती है जब उन्होंने देश की आजादी का लक्ष्य स्पष्ट किया था—

“हम केवल राजनीतिक आजादी प्राप्त कर सके हैं। सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता के लिए अभी संघर्ष की आवश्यकता है।”²

वास्तव में आजादी मिलने के बाद देश में जो संक्रमण की स्थिति पैदा हुई उसके तीन बड़े कारण हैं। प्रथम देश में लोकतंत्रीय शासन प्रणाली, द्वितीय धर्मद्वारी उन्मूलन और तृतीय भारत का ओषणा परक विकास। लोकतंत्रीय शासन प्रणाली का देश में आना उस बात का संकेत था कि देश के शासन में प्रत्येक व्यक्ति का हिस्सा हो। वह भी अपने काम का उत्तरदायी बने। इस तरह उसे सरकार बनाने और गिराने का तैद्वान्तिक अधिकार मिल गया।

धर्मद्वारी उन्मूलन उस साम्रती परंपरा का अंत था जिसकी नींव शोषण के आधार पर टिकी थी। आम आदमी को शोषण से मुक्ति दिलाने

1- धर्मद्वय वर्मा: कथना- अंक-3 मार्च- 1965

2- पं० जवाहरलाल नेहरू के भाषणों का संग्रह [1943-53] प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय [भारत सरकार]

का यह दूसरा कदम कहा जा सकता है । छोटे-बड़े जागीरदारों के विहंगों से निकालकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व किसान और मजदूर को बनाए रख सकने की दिशा में यह शासन का दूसरा और मुख्य संवैधानिक कदम था ।

स्वतंत्र भारत की तीसरी दिशा जो कि योजनापरक विकास 'प्लानिंग डेवलपमेंट' की थी । पचासवाँ वर्ष के अन्तराल से समूचे भारत की बहुमंडी जरूरतों को पूरा करने के लिए निर्धारित हुई । उद्योग, शिक्षा, उद्योग आदि के योजनाबद्ध विकास से भारत का आधुनिकीकरण इसी पद्धति पर आधारित किया गया ।

लेकिन वस्तु स्थिति यह रही कि यह सब परिवर्तन एकदम नया था । देश में सामंती शासन की जगह लोकतंत्र, जमींदारों की जगह सामान्य प्रशासन तो लागू हो गया परन्तु इसका परिणाम बहुत ही भयानक रहा । श्रीक सामंती और जमींदारी व्यवस्था की अवधि सौ-सौ डेढ़ सौ वर्ष की हो चुकी थी । भारतीय जनता में इनके संघर्षकों की जड़ें पुष्ट कर पुष्ट गहरा गई थीं । अतः इतना बड़ा परिवर्तन इन सत्ता प्रेमियों को स्वीकार नहीं हो पा रहा है । जमींदार की जमींदारी तो पत्ती गई लेकिन उसका खीस्थानापन जो गाँव और देहात में रंग ला रहा है वह दूसरी ही किस्म का है । अपने छोटे हुए अस्तित्व के लिए उसने समकालीन राजनीति में पुनः सक्रियता दिखाई है । शासन तंत्र में वह भागीदार बनकर अपनी पुरानी ताकत आज भी बनाने में जी जान से जुट गया है । डा.0 कुंवरपाल सिंह ने इस बदलते हुए वर्ग की घोरिनीक कल्प पर ठीक ही कहा है ---

“इस नए उभरे हुए वर्ग में भूस्वामियों और पूँजीपति दोनों के सम्मिलित गुण दृष्टिगोचर होते हैं, जिसमें पुराने जमींदार की कुटिलता और पूँजीपति वर्ग की चतुराई और निर्ममता का सम्मिश्रण है। अपना काम निकालने में सिद्धहस्त यह वर्ग देश की राजनीति और सामाजिक जीवन को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है। -”

दूसरी ओर देश का वह तीन चौथाई वर्ग जिसने सदियों से कठोर यातायातों का जीवन जिया है। आज उसे दिखने वाली आशा की किरण आजादी ने उसके लिए अधिकार का रास्ता तैयार कर दिया है। यह माना कि स्वतंत्रता अब भी बड़े लोगों की चौपालों पर पैर पसारे हुए बैठी हुई है, बड़े-बड़े बाबू लोग ही उसके भागीदार हुए। लेकिन गरीब मजदूर देहाती अनपढ़ देख सुनकर स्वतंत्रता का अर्थ समझने लगे हैं। इस तरह स्वतंत्रता के लिए देश में वर्गीय संघर्ष का नया जिहाद छिड़ रहा है। गाँव बड़ी तेजी से इसी बकाय की लपेट में आ रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति, उसका लड़का आज अपने सपने को साकार करने के लिए अधिकार का प्रयोग कर रहा है।

भारत का मुख्य व्यवसाय खेती है। देश का बहुत बड़ा भाग अपनी जीविका के लिए खेती पर ही निर्भर है। अतः आजाद भारत का मुकाबला खेती के सर्वांगीण विकास की ओर हुआ। सहकारी खेती, सहकारी बीज भण्डार, षवा, छाव, हरित क्रांति आदि योजनाओं के माध्यम से कृषि की क्षमता सुधारने का बराबर प्रयत्न किया जा रहा है। जमींदारी उन्मूलन

इस क्रांति को सुधारने का ही परिणाम रहा है। बलाक, तहसील स्तर पर कृषि के लिए अनेक कार्यक्रम घोषित किए जाते हैं। और अब तो स्थिति यह है कि कृषि आधुनिक आविष्कारों के द्वारा एक उद्योग के रूप में परिवर्तित हो रही है। अतः इस अत्यधिक परिवर्तन के कारण अनेक विकृतियाँ भी उत्पन्न हो रही हैं। डा० कुंवरपाल सिंह ने इस बदलती हुई व्यवस्था की विसंगति का संकेत करते हुए कहा है ---

"कृषि के आधुनिकीकरण तथा औद्योगिकीकरण ने ग्रामीण जीवन में भी व्यक्ति परक दृष्टि को उभारा तथा व्यक्तिवादी जीवन पद्धति को जन्म दिया। यहाँ शताब्दियों पुरानी परंपरागत सामयिक भावना समाप्त होने लगी है। हरित क्रान्ति ने निर्धनता और सम्पन्नता की दीवारें और ऊँची कर दी और इस स्थिति ने वहाँ नए तनावों और शिक्षा के प्रसार और शिक्षा संबंधी व्यापक राजकीय सुविधाओं से उत्पन्न वर्ग-घेतना ने नए संघर्षों को जन्म दिया है। एक ओर शताब्दियों की अमानवीय स्थिति और शोषण को बदलने का संघर्ष है तो दूसरी ओर प्रभाष्याली धनिक वर्ग और भूस्वामियों द्वारा यथास्थिति को बनाए रखने और वास्तविक वर्ग संघर्ष को भ्रमित और किंवा छीन करने का भरपूर प्रयास।"

इस तरह ग्रामीण जीवन का सामुदायिक प्रास्य व्यापक परिवर्तन की ओर अग्रसर है। उनके रहने सहने सोचने-समझने के तौर-तरीके बदल रहे हैं। जो व्यक्ति कल तक आज के बारे में सोचता था वह अब कल आज और

कल तीनों स्थितियों पर विचार कर रहा है । उसके अन्दर एक विशिष्ट नवीनता का अंकुर पैदा हो गया है जिसे आधुनिक परिस्थितियों बचा देकर उसे पुष्पित और फलित कर रही हैं ।

इस प्रकार हम कह सकें कि स्वतंत्रता की लड़ाई बड़ी लड़ाई थी जिसमें प्रत्येक भारतवासी ने देश के कोने-कोने से संग्राम छेड़ा था । जो जिस योग्य था उसने फेसा ही बलिदान दिया । अतः स्वाभाविक था कि वर्षों के संघर्ष के फल में उसका भी हिस्सा हो । सत्ता के सुखद परिवर्तन के सुखद परिणाम का वह भी भागीदार बने । परन्तु व्यावहारिक स्तर पर यह सब नहीं हो सका । आजादी पंद पाताक लोगों की चौपाल तक ही आई । स्वतंत्रता के नाम पर उन समस्त सुविधाओं को बड़ी जमींदार और पूँजीपति वर्ग लपक कर ले गया जो समस्त जन-समुदाय के लिए थीं । अपने इसी अधिकार बोध के लिए मजदूर और किसान को फिर संघर्षों, लड़ाइयों और आन्दोलनों का सहारा लेना पड़ रहा है । ग्राम जीवन के चारों ओर फैलने वाली विभिन्न योजनाओं ने उसे तोपों के लिए बाध्य किया है । उसकी राजनीतिक चेतना पर लगातार अनेक प्रश्न घुमड़ घुमड़ कर उसे आन्दोलित कर रहे हैं । जमींदारी उन्मूलन पंचायती राज, सामंती विप्लव, चुनाव, राजनीतिक दल, और उनकी जातीय पद्धति, समाजवादी चेतना का विकास आदि अनेक वैचारिक मंच उसे कुछ कर गुजरने की ओर खिंच रहे हैं ।

यद्यपि यह राजनीतिक संघर्ष प्रेमचंद के उपन्यासों में आजादी से पहले भी विद्यमान हुआ है। प्रेमचंद ने राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक संघर्ष की बड़ी विषय व्याख्या प्रस्तुत की है। किसान पर जमींदार तथा उससे लगे लिपटे लोगों की शोषण की भूमिका प्रेमचंद के उपन्यासों में देखने को मिलती है। सहकारी संरक्षण में पतने वाला जमींदार अपने गाँव और इलाके के किसानों को अपने निजी कर्मचारियों, पटवारी, कारिन्दा आदि के माध्यम से घुस-घुस कर उन्हें बेजान कर रहा है। वह अपनी अमलदारी में भ्रम और अश्रम की बिना परवाह किए जो वह ठीक समझता है इन्हे के जोर से करता है। प्रेमचंद ने इसे कर्ण परिव कहा है जोकि प्रत्येक जमींदार को जानवानी विरासत के तौर पर हासिल है। उनके उपन्यासों में इस कर्ण की कई महत्वपूर्ण भूमिकारें हैं। धर्म और राजनीति से लेकर उसने समाज और राष्ट्र तक को अपने प्रभुत्व से प्रभावित किया है। वह साम्राज्यवाद का मुख्योत्तर समर्थक है। अंग्रेज अल्पबरदार उसके यहाँ दावतों पर आमंत्रित होते रहते हैं। डा.0 कमला गुप्ता ने प्रेमचंद के उपन्यासों में जमींदार की इसी स्थिति को बताते हुए कहा है।

“प्रेमचंद ने इस विभीषिका को बहुत स्पष्ट रूप से पहचाना है। किसानों की शोषक शक्तियाँ अमरबेल की तरह उनसे लिपटी हैं, जिनके पास में वह निरंतर कसता जा रहा है। जमींदारों के दावन हाथ हो जाते हैं। उनका कर्ण किसी न किसी बहाने किसानों को फँसाने की सामर्थ्य रखता है।

पुलिस, न्यायालय, सरकारी अधिकारी, कर्मचारी सभी की उन पर बड़ी कुमा होती है क्योंकि किसान की लुट में इन सभी का हाथ रहता है ।¹ प्रेमचंद का किसान और मजदूर जहाज के पंछी की तरह छमड़-छमड़ कर छुट-छुटकर न चाहते हुए भी इन्हीं राय बहादुरों और साहब बहादुरों की शरण में आता है । किसान और मजदूर को बेमार करना, खून पसवाना ही पड़ता है क्योंकि प्रेमचंद के युग तक जन आन्दोलनों का इतना उभार नहीं था । उनके यहाँ स्वतंत्रता की राष्ट्रीय समस्या थी । उनके यहाँ किसानों और मजदूरों का शोषण इसीलिए होता है कि वे दबे रहें उन्हें जितना दबाया जाय दबाते जाना होगा । क्योंकि ये जमींदार अंग्रेजी सरकार के कवच थे । और अंग्रेजों को रुस और फ्रांस की क्रान्तियों से लग चुका था कि जिस समय यह देश का बहुलांश उड़ा हो जायेगा उनके पैर दो-दिन हिन्दुस्तान की जमीन पर नहीं टिके रह सकते । अतः तमाम अत्याचार और शोषण महज किसानों और मजदूरों को दबाने और उन्हें शक्तिहीन करने के लिए इसी पण्ड से किए जाते हैं जिनको हिन्दुस्तान के ये क्रीत दास मूर्खों पर ताव देकर अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान समझकर बेसोस करते रहते हैं ।

दूसरे प्रेमचंद के जमाने में किसानों का कोई इतना मजबूत संगठन नहीं था जिसे उन्हें प्रेरणा मिलती और वे अपनी बेहतर हालत के लिए जमींदार के सामने आते । यद्यपि "गोदान" तक आते आते प्रेमचंद अपने किसान को तो नहीं, किसान के छे को संघर्ष के वरषाभे पर ला खड़ा कर देते हैं परन्तु वह भी अकेला है ।

1. डॉ. कमला गुप्ता: हिन्दी उपन्यासों में सामंतवाद-1974; पृ.सं.2727

लेकिन नागार्जुन के किसान और मजदूर प्रेमचंद के किसान और मजदूरों से वो कदम आगे हैं। प्रेमचंद के जमाने में जमींदारी अमल कायम था- अपनी चरम सीमा पर था परन्तु नागार्जुन में उसकी जड़ें हिल गईं वह स्मृत उखड़ गया। किसान-सभा और मजदूर संगठनों से नागार्जुन के किसान और मजदूर शक्ति अर्जित करते हैं। वे जमींदार और बड़े भूस्वामी के खिलाफ सामने आकर "जमीन किसकी- जोते बोए उसकी"- और "इन्कलाब जिंदाबाद" जैसे नारे लगाकर उसकी नाक में कौड़ी बांधते हैं। दूसरे नागार्जुन के किसान आजाद भारत के किसान हैं वे धैर्य सम्पन्न हैं उन्होंने अपनी शक्ति का परीक्षण स्वतंत्रता आन्दोलन में फाँसी, जेल, कालापानी झुगतकर देखा लिया है। उन्हें अपनी अकूत शक्ति का परिचय है तभी उनके कर्ण के बलघनमा, तारावरण, क्यानाथ कपिल और वीरभद्र जैसे युवक सीना तानकर चलते हैं। उन्होंने बदलते हुए परिदृश्य से शक्ति अर्जित की है। यह धैर्य सम्पन्न युवा कर्ण जमींदार और भूस्वामी से टक्कर लेकर उनकी जातिघाना हरकतों को हमेशा हमेशा के लिए नीचा दिखा देते हैं और "स्वाधीनता" "शक्ति" और "प्रगति" जैसे सिंदूरी अक्षरों से देश के भविष्य का संकेत कर रहे हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों में यह राजनीतिक संघर्ष बड़ा ही विवाध और व्यापक है। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद की स्थिति को जन आन्दोलनों और जन संघर्षों के माध्यम से प्रस्तुत किया है जो निम्नवत् है ---

॥ क ॥ भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन

1857 के बाद देश में राष्ट्रीय चेतना हर घर में अपना स्थान बनाने लगी । देश आजाद होना है और उसे हमें आजाद कराना है । इस तरह की भावना भारत के उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम के समूचे प्रान्तों, अंगलों से व्यक्त होने लगी । अतः राष्ट्रीय भावना के देशव्यापी वातावरण का जन जीवन से व्यापक तौर पर संपर्क जुड़ रहा था उसमें शहर और देहात दोनों का भरपूर सहयोग था । देहात का व्यक्ति अस्पृह होते हुए भी अपनी शारीरिक शक्ति देश के लिए जेल, यातना और संघर्ष में दे रहा था । जैसा कि डा० ज्ञानचन्द्र गुप्त ने कहा है ---

“स्वतंत्रता के पूर्ववर्ती-काल में ही यदि हम अपने राष्ट्रीय वातावरण को देखें तो असहयोग-आन्दोलन, सामाजिक बहिष्कार आन्दोलन, विभिन्न सत्याग्रह, भारत छोड़ो आन्दोलन आदि ऐसे अनेक राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के कार्यक्रम थे जिन्हें ग्रामीणों ने अपनी यथाशक्ति सहायता देकर अधिक गति-शील किया ।”¹

इस तरह गाँव का वह व्यक्ति जोकि नितान्त अस्पृह या मामूली पढ़ा लिखा था संघर्ष की पहली प्रीति में देश के लिए आकर खड़ा हो गया । परन्तु सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात यह रही कि उसका नेतृत्व मध्य वर्ग और उच्च वर्ग के लोगों के हाथ में रहा जिन्होंने आन्दोलन और संघर्ष की दिशा

1- डा० ज्ञान चन्द्र गुप्तः स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना
पृ० सं०- 38

को सदैव विदेशी शासन के समझौतों के अंतर्गत अपने वर्ग के मुनाफे के लिए मोड़ते रहे । उस समय स्वतंत्रता संग्राम के किसी देश में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही सबसे बड़ी पार्टी थी परन्तु उसका नेतृत्व उच्च वर्ग के लोगों के हाथ में था जो कि घनघोर सुविधा भोगी थे । वे देश के युवा वर्ग को समझौतों संशोधनों का निरंतर अंकुश लगा-लगाकर उनके उत्साह को ठन्डा कर अपने को नेतृत्व में महत्वपूर्ण मानने और वर्ग लाभ करने के सिवाय उन्होंने और कुछ नहीं किया ।

"जब सारी दुनिया में क्रान्ति की लहर फैली हुई थी और पराधीन देशों की जनता आगे बढ़कर साम्राज्यी छुट्टियों पर धार कर रही थी, भारतीय जनता भी राष्ट्रीय मुक्ति की क्रान्ति का रास्ता अपना रही थी । उसे एक क्रान्तिकारी नेतृत्व की आवश्यकता थी, उसे लेनिन जैसे एक नेता की जरूरत थी । गाँधी समेत कांग्रेस के नेता ऐसा नेतृत्व देने में बुरी तरह असफल रहे । अपने व्यवहार से उन्होंने दिखा दिया कि वे क्रान्तिकारी नहीं, महज सुधारवादी हैं ।"

नागार्जुन ने इस स्वतंत्रतापीठिका का अपने उपन्यास "बलपनमा" और "राजनाथ की बापी" में विस्तार से उल्लेख किया । सन् 1920 से लेकर 1936 तक पूरा का पूरा भारतीय आन्दोलन टूट-टूट कर बिखर-बिखर कर इन्हीं दीक्यानूसी लोगों के आस-पास आता रहा और लोगों को विशेष रूप से आम जनता को यह आशा बंधी रही कि देश हित के लिए लड़ने वाला यह संग्राम आम आदमी के लिए है । परन्तु यह भ्रम था । नागार्जुन का बलपनमा इसी राजनीतिक भ्रम का अनावरण करता हुआ कहता है —

1- अधोध्या सिंह: भारत का मुक्ति संग्राम- पृष्ठ 415

“काग्रेस के बारे में सोचने लगा कि स्वराज्य मिलने पर बाबू भैया लोग आपस में ही वही मट्ठी भी बाँट लेंगे, जो लोग आज मालिक बने बैठे हैं, आगे भी तरमाल वही उड़ाएंगे। हम लोगों के बिस्से सीठी ही सीठी पड़ेगी।”

मालिक लोगों की यह तरमाल उड़ाने की बात बड़े गहरे अनुभव की बात है। गहराई से देखने पर पता चलता कि काग्रेस की रकनुमाई करने वाले तमाम लोग बड़े घरानों के थे। काग्रेस में शामिल होने से उनको बड़े फायदे थे। प्रथम देश में नेतृत्व का दायित्व अर्थात् इज्जत और सम्मान की लालसा पूरी हो रही थी दूसरे देश आजाद होने पर उनका तथा उनके कर्म का बहुत बड़ा हित साधन निश्चित था।

इधर मजदूर और आम जनता को स्वतंत्रता आन्दोलन में छुट्टी मार पड़ रही थी। प्रथमतः शासन का कोप भाजन तो वे ही ही रहे थे दूसरे स्थानीय प्रशासन के लोग जोकि विदेशी सत्ता में राय बहादुर, सरकार बहादुर कहलाने का जिन्हें ठक हासिल था उनकी स्वार्थ लिप्सा मजदूर को पीस रही थी और तीसरे उनके जोश और भविष्य को काग्रेस का नेतृत्व समझौतों और तंजोघनों आदि के माध्यम से धूमिल कर रहे थे। 1936 के स्थानीय प्रशासन ने तो इस दिशा में और अधिक पार पांव लगा दिए। नागार्जुन ने इस पूरी स्थिति को “रतिनाथ की चाची” में संक्षिप्त देकर स्पष्ट कर दिया है —

"बार-बार आगे-पीछे सोचकर कांग्रेस ने जब प्रान्तों के शासन में हाथ बटाना स्वीकार कर लिया तो जनता ने युग की ओर नयी आशा से देखा। मिनिस्टरी कुबूल कर लेने पर नेताओं का उत्तर दायित्व बेहद बढ़ गया। चुनाव के समय उन्होंने जनता से बड़े बड़े वायदे किए थे। --- मंत्रियों ने अपनी पीठ कर दी किसानों की ओर, मुँह कर दिया जमींदारों की ओर। दुनिया भर में बकनाभी फैल गई कि बिहार की कांग्रेस पर जमींदारों का असर है। जवाहर लाल तक ने यह बात दुल्लम दुल्ला बोल बखी।"

यह बात अकेले बिहार प्रान्त की न होकर समूचे भारत के अंचलों की थी बड़े घर के लोग अपने को और बड़ा बनाने में कोई कसर नहीं उठा रहे थे।

परन्तु इधर देश का नौजवान अपना सब कुछ मिटाता हुआ अपने घर परिवार की विन्ता किए खीर देश को आजाद कराने में जुटा था। वह आजादी का दीवाना मात्र पिड़िया की आँख का लक्ष्य आजादी को बनाए हुए था, परन्तु जमींदार घराने के लोग पिड़िया की आँख के साथ-साथ लूचे पेड़ और उसके आसपास के वातावरण पर भी दृष्टि रख रहे थे। "पारो" उपन्यास के लाल भैया अपना सब कुछ इसी आशा में दौव पर लगा रहे थे कि उन्हें केवल भारत माँ को आजाद करना है --

“साल भइया को जहाँ ये कोई बातें समझाने लगता तो दाँत से जीभ को कुपलते हुए कहते— पराधीन भारत माँ को स्वतंत्र करने के क्रम में यदि हम लोग ऐसी छोटी छोटी बातों पर ध्यान देने लें तब हो हुआ । अपने-अपने सर्वस्व का माया मोह छोड़ जब तक हम आप स्वतंत्रता की बलि देदी पर जाकर नहीं खड़े होंगे, तब तक देश की यही हालत रहेगी ।”

वास्तव में स्वतंत्रता आन्दोलन सब का आन्दोलन था सबके त्याग का आन्दोलन था । भारतवासी तन-मन और धन से इसे सफल बनाने में, देश को आजाद कराने में सभी प्रयत्नशील थे । अतः उन्होंने एक सपना अपने देश के बारे में देखा था । क्योंकि भारत की अधिकांश जनता गरीब और अशिक्षित थी इसलिए वह कुर्बानी तो देना जानती थी और दे रही थी परन्तु वह रणनीति से अनभिज्ञ थी उसकी तमाम आशाएँ उच्च नेतृत्व वाले बाबू लोगों के साथ जुड़ी थीं । अतः अपनी भलाई की कामना वह उनकी कृपा पर ही सोच रहा था ।

“बलघनमा” में यह बात बहुत साफ तरीके से नागार्जुन के प्रस्तुत की है । गरीब बलघनमा बड़े लोगों की बात सुनकर अपने देश की आजादी की कल्पना करते हुए अपनी छा छाती पर पूसा नहीं समाता । वह दिन रात इसी कल्पना में समय गुजार देता है कि देश आजाद होने पर सबके भाग कौकी । —

“मैंने सोचा मुलुक से अग्रिम बहादुर चला जायेगा, फिर यही बाबू भइया लोग अफसर बनें और तब इस बाबा जी महाराज का भी उद्धार हो जायेगा इसके हाँठों पर माँस चढ़ेगा । चेहरे पर चिकनाई आवेगी । बूढ़ा सुगम होगा, हो जाने पर पद गुन तो क्या सकेगा मगर बाकी आराम सुभिस्ता इस रसोइया को भी मिलेगा । सोराज होने पर क्या होगा ? यह बात मैंने एक बार पटना में महेन बाबू से पूछा था । उन्होंने क्या जबाब दिया था भैया, क्या बताऊँ ? महेन बाबू ने यही कहा कि सोराज होने पर सबके दिन लौटेंगे, सब का भाग चमकेगा । हमारा भी, तुम्हारा भी ।”

लेकिन बलघनमा और उसके भाई बान्धवों का तो भाग नहीं चमका सही माइने में भाग चमका फूल बाबू और महेन बाबू के भाई बान्धवों का उनकी जाति विरादरी का ।

यह बात आज तक चली आ रही है । जिन लोगों ने स्वतंत्रता आन्दोलन में हुलकर हिस्सा लिया था, फाँसी चढ़े थे, काला पानी हुआ था, सापता हो गए थे उनके तथा उनके परिवार के नाम पर आज तक किसी ने कुछ-बर्ब की बात नहीं पूरी । क्रांतिकारियों के परिवार उजड़ गए परन्तु किसी ने उनकी कभी परवाह नहीं की इन्हीं कारणों पर काँग्रेस पार्टी जो कि राष्ट्र की सबसे बड़ी पार्टी थी समय-समय पर विभाजित होती गई । उसमें प्रगतिवादी तत्व धीरे-धीरे बटता गया ।

नागार्जुन ने "बलाघनमा" में कगित और उसके कर्णिय स्वार्थों के कुडाव को बड़ी गहरी दृष्टि से प्रस्तुत किया है । फूलबाबू जोकि घनघोर कगिती है । सुबह से शाम तक गांधीवाद की हर बात में बाँग देता है । उसे गांधी महात्मा से अपार श्रद्धा और उनके कार्यों से अपार स्नेह है । इन सबके पीछे वह घर और पढ़ाई सब छोड़कर गांधीवाद के पीछे पैरागी हो चला है । यह उसकी सैद्धान्तिक भूमिका है । परन्तु यथार्थ इससे कोसों दूर है । पता जब चलता है कि बलाघनमा अपनी बहिन के साथ मझले मालिक द्वारा किस गर बलात्कार और उसे झूठा फसाने के आरोप में थाना में रपट के संबंध में फूल बाबू से इसी आशा के साथ आता है कि ----

"सुझे यह भी भरौसा था कि फूल बाबू जब गांधी महात्मा के पैला बन गर हैं तो हमारे मालिक को इस जोर जुलुम के लिए दो बात वह जरूर कहेंगे । गांधी महात्मा न बड़े लाट से डरते हैं, न छोटे लाट से, न सरकार से, न अपला से । गरीबों का पच्छ । फूल बाबू उन्हीं गांधी महात्मा के पैला होकर मेरे लिए क्या इतना भी नहीं कहेंगे कि अपने फूफा फूफी को जरा समझा दें¹ परन्तु यह उस गरीब की कोरी भापुक्ता है । उसे इसका बिबल्कुल भी भान नहीं है कि इस छुटे घाघ की तबियत में कोई अन्तर नहीं है ।

फूल बाबू बलाघनमा की बात सुनकर उनसे साफ कह देते हैं । उनका आदर्श यथार्थ में बदल कर अपना सही रूप प्रस्तुत करता है --

"मगर फूल बाबू ने यह कह कर तभी बात उत्तम कर दी कि तुम्हारा तो आपस का झगडा है, बहिषा-महतो का । इसका निबटारा भी तुम्हीं

दोनों कर लगे । इसमें मेरी कोई जरूरत नहीं । जा, जाकर अपने मालिक के ही पैर पकड़ । वह तुझे माफ कर देगा ।¹

यह उस कृषिसे का वास्तविक परिव्र है जो देश सेवा का स्वर्णिग दिन रात करता है परन्तु कर्म पर जरा भी घोट आती है वह उसकी हृमदकी करता है । डा० कुँवरपाल सिंह ने इन कर्मियपक्षधरों के बारे में कहा है --

"उसकी लड़ाई कर्म-हित के लिए है कर्म विरोध के लिए नहीं । चाहे रेयनी जैसी कितनी ही निरीह नाशियों का सतीत्व खण्डित हो, अपराधी मालिक रेयनी की जैसी माताओं को इसलिए कितना ही मारे कि उसकी हिम्मत इतनी हो गई कि उसके बलात्कार करने के क्रुद्ध आवाज उठाने लगी । चाहे बलघनमा जैसे कितने ही खेत मजदूरों को, उसकी बहिन के साथ बलात्कार करने के बाद उसकी जीभ को सी देने के लिए, जमींदारों द्वारा जेल भेजा जाकर रहे, पर फूल बाबू जैसे कर्म सहयोगी बगुला भात नेता कुछ नहीं बोलेंगे । यदि उनकी स्वर्ण की बहिन के साथ बलात्कार हुआ होता तो आकाश पाताल एक करने को तैयार हो जाते । ऐसे कर्मिय पक्षधर भारत के कर्मधार को और भारत की जनता के शोषण की मुहिम को और आगे बढ़ा दिया ।"²

अतः बलघनमा की इन राष्ट्र भक्तों से अप्रदा होजाती है । वह दो पंक्तियों में इन सुराजियों के बारे में बड़ा सटीक निष्कर्ष देता है --

1- बलघनमा पृ० सं०- 94-

2- डा० कुँवरपाल सिंह: हिंदी उपन्यास सामाजिक चेतना-पृ०-160

"कैसे थोड़े में मैं पढ़ा हुआ था । मेरा सारा मोह क्षण भर में फट गया । साफ-साफ दीखने लगा कि बाबू-भैया लोग वहीं तक हमारा पक्ष लेंगे, जहाँ तक उनका अपना मतलब रहेगा ----- तोराजी हो गए थे तो क्या, ये तो आखिर बाबू भइया ही न । गरीब गुरबा का कुछ ये लोग क्या जानें ।"

साफ जाहिर था कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई बड़ी पेचीदी लड़ाई थी । कांग्रेस का कई वर्गों से अपने को लोकप्रिय बनाने के लिए समझौता रहा । उसके वर्ग के लोग चन्दों, और नकली गिरफ्तारियों के माध्यम से स्वतंत्रता में इसीलिए भाग ले रहे थे कि उनके स्वार्थ सलासत रहें । पूँजीपति वर्ग भी कांग्रेस के साथ था । राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में "नमक आन्दोलन" और "स्वदेशी आन्दोलन" के अन्तर्गत इस वर्ग की बड़ी स्वार्थी भूमिका रही है । इन राष्ट्रीय आन्दोलनों में वह क्यों कर भाग लेता रहा । नागार्जुन ने उसे स्पष्ट किया ---

"सरकार बहापुर की ओर से कानून है कि नमक सब नहीं बना सकते । गांधी महात्मा सरकार को झुकाना चाहते थे । चाहते थे कि दो पार बाँटें उनकी मान ले सरकार । गौरी सरकार अपनी जिद पर अड़ी थी । कलकत्ता, बम्बई के सेठ साबूकार भी भीतर ही भीतर गांधीजी का पक्ष ले रहे थे । उनको साफ-साफ लोका था कि स्वराज होने से सबसे जास्ती भलाई उन्हीं की होगी । ये देख रहे थे सरकार झुकती है तो सुराज मिलता है।

सुराज मिलता है, तो अधिक से अधिक कल कारखाने वे खड़ा कर सकते हैं ।
अभी जो पैसा को कुछ कर सारी धन-सम्पदा अंग्रेज ले जाते हैं, स्वराज्य हो
जाने पर वह सब सीधे उनके खजाने में आने लगेगी-।-----

यह वह दुस्मिणी मार वाला घातक सम्झौता कांग्रेस ने सहर्ष स्वीकार
कर लिया था । उसे जनहित से कितना प्यार और लगाव हो सकता है
यह उन कार्यकर्ताओं उनकी नीतियों, नीयतों से साफ-साफ झलकता है ।
कांग्रेस की सदस्यता में बहुत बड़ी तादात में सामंतों और जमींदारों के बेटे,
धनी पूँजीपति और कारखाने वाले सेठ शामिल थे । अतः वे स्वतंत्रता की
लड़ाई को इसलिए और भी जी जान से लड़ रहे थे, लड़ा रहे थे कि दोनों
तरफ से उन्हीं की दाँदी है । यह उनके छुले परिणाम वाला प्रयत्न था ।

क्योंकि बलचनमा सुनी हुई बात पाठक से नहीं कर रहा है । उसने
कांग्रेसी आश्रम में रहकर कांग्रेसियों को खूब खिखड़ी छिलाई है उनकी जमकर
तेल मालिश की है । अतः उसे उनके साथ रहने, बैठने, उठने, उनकी बातें
सुनने और उनके पीछे और कारनामे देखने को खूब मिले हैं । इसीलिए
उसकी बातों के निष्कर्ष प्रामाणिक और तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य पर
खरे उतर रहे हैं । बाबू भयों का नाटक उसने रात में ही नहीं दिन में भी
खूब जी भर देखा है —

“यह जो कल-कल पपि-पपि आदमी कर्ता धोती, टोपी पहनकर
गले में कालाडाले पद्मजा [बलि वाले] बक्रे की तरह नमक खाने जाते थे

तो मुझे बाबू लोगों का एक जिलावाड ही लगता था ।¹

अतः कांग्रेस में अपनी इन्हीं शिथिलताओं के कारण पिछड़ा आता है । और उसके नेतृत्व को सबसे बड़ा धक्का जब लगता है जबकि उसके अन्दर से ही कई प्रगतिशील विचारों के नेता उससे जलग हो गए ---

"कांग्रेस के सुधारवादी नेतृत्व ने राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जो गहवारी की थी, उससे स्वयं कांग्रेस को बड़ा धक्का लगा था । उसकी सदस्य संख्या घटकर पाँच लाख से कम अर्थात् 457000 हो गई थी ।"²

इस तरह स्वाधीनता संघर्ष में अनेकों उत्साहों और गैर जरूरी प्राथिक्यताओं ने देश की जनता को सही रास्ते से लहने नहीं दिया । यदि देश की आजादी जिसे क्रान्तिकारियों ने अपने लक्ष्य से दूँग कर तैयार किया था उस रूप में होती तो देश की स्थिति आज यह नहीं होती । आज वही बाबू भ्रष्टाचार के ग्राहक है । बलघनमा और उस जैसे करोड़ों लोग फिर इन्हीं लोगों के मोहताज हैं । परन्तु वह फिर भी घुम नहीं बैठने वाले । उन्हें अपना हक लेना है तो लेकर ही रहेंगे । नागार्जुन जैसा प्रगतिशील लेखक उन्हें दिखाकर छोड़ेगा । वे नागार्जुन के पात्रों के इस अव्यय साहस को देखकर ही यह बात कही है —

"इसके अलावा एक और चीज मुझे जनता को लेकर नागार्जुन में दिखाई देती है और वह यह कि उनके यहाँ जनता सिर्फ कर्मोत्पादक, लाचार, असहाय

1- बलघनमा- पृष्ठ सं०- 59

2- अध्याय छिहः भारत का सुक्ति संग्राम- पृष्ठ सं०- 609

शोषित नहीं है। सामान्य जन की भयावह हालत का चित्रण करना इसी बात नहीं है लेकिन भारतीय जनता में जिनका रहने के लिए लड़ने का फायदा भी जबरदस्त है ----- नागार्जुन के यहाँ जनता सिर्फ कृष्ण तथा स्या उपजाने वाली स्थिर, जड़ "वहाँ रखी हुई" चीज नहीं है, बल्कि झुकाव होती हुई, समूह बनती बनाती चलती, कभी थककर बैठती लेकिन फिर उठकर आगे बढ़ती, हमला करती, हन्टों गोलियों के आगे तितर बितर होती, नारे लगाती, घेराव तथा हड़ताल करती, जेल जाती और कभी-कभी जान देती जनता है।¹

अतः नागार्जुन की कृतियाँ पूर्ण रूपेण समाज संप्रकृता हैं। देश में घटने वाली घटनाओं से आम जनता पर जो प्रभाव पड़ता है उसके स्वभाव को नागार्जुन अपने लेखन में प्रथम स्थान देते हैं। उनकी समूची कृतियाँ सामाजिक गतिविधियों की सबसे बड़ी यही प्रामाणिकता है कि पूरा सामाजिकीय ढाँचा कृतियों में प्रतिबिम्बित होता है। नागार्जुन अपने विषयों के अकेले लेखक हैं।

सामाजिक राजनीतिक घटनाएँ

स्वतंत्रता आन्दोलनों ने जनता के दिलों विभाग को झकझोर कर रख दिया था। सत्याग्रह, नमक, कानून, असहयोग आन्दोलन आदि से समूचा भारत परिचित हो चुका था। संघर्ष की मुहिम को तेज करने के लिए पश्चिमी समाजवादी श्रितकों के विचार भी भारतीय जनता में अपना स्थान

1- किशु खरे: आलोचना-संग्रह 36-57 [नागार्जुन विवेचन] 1981

घना चुके थे । अतः नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में समसामयिक घटनाओं का उल्लेख राष्ट्रीय संदर्भ में किया है । स्वयं नागार्जुन भी राजनीतिक कार्यकर्ता रहे हैं देश के स्वतंत्रता आन्दोलन में उन्होंने भी जेल काटी है यातनाएं सही हैं । इसीलिए उनके लेखन में एक तल्खी है रवानगी है । वे कभी भी न तो आप्त्ता का शिकार हुए हैं और न कभी भावुकता में बहकर अपने सिद्धान्तों का सौदा किया है । इस तरह की पूरी छवि उनके उपन्यासों के पात्रों में प्रति-पादित होती है । अतः अपने राजनीतिक अनुभवों के आधार पर उन्होंने बड़े ही प्रामाणिक निष्कर्ष दिए हैं ।

स्पष्ट है कि नागार्जुन के उपन्यासों में स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद की समसामयिक घटनाओं का चित्रण है जिसमें उन्होंने राजनीतिक संघर्षों के माध्यम से देहाती अंगल का सम्बन्ध स्थापित किया । यद्यपि उनके पात्र विप्लव देहाती हैं लेकिन नागार्जुन उन्हें किसी न किसी ब्रह्मणे से झट्टी हवा खिलाकर वस्तु स्थिति से परिचय देते हैं । वह स्वतंत्रता आन्दोलन-कारियों की स्थिति भी बड़ी निकट से जानते हैं ।

"बलपन्ना" के अंतर्गत नागार्जुन ने बलपन्ना^{के} कश्मिरी नेता फूल बाबू के साथ रखकर उसके कार्य चरित्र और योजनाओं को अच्छी तरह पहचाना है । उसने उन सुराणियों को अच्छी तरह पहचाना है, उनकी चाल को साथ रखकर देखा है जो सदैव घुंगी रही है । वह बलपन्ना^{के} स्थिति कश्मिरी आश्रम और सुराजी लोगों को देखता है । वहाँ के इन लोकमोक्ष लोगों के बारे में उसकी उक्ति बड़ी ही सारगर्भित है । वह इन देश प्रेमियों के बारे में

सह्यता से कहता है---

"राधा बाबू राजा खानदान के थे । पढ़ाई करते समय स्टेट का पैसा फूँकते रहे और अब पब्लिक का । चंदा आसरम में काफी आता था । कोई उनसे हिसाब लेने वाला नहीं था जैसी मरजी आई वैसे खर्च किया।"

इन देश प्रेमियों के दूसरे शरीर सुखवाले लोग पर भी नागार्जुन ने दृष्टिपात किया है । घनघोर सुविधा भोगी वर्ग के थे रहनुमा कभी भी तकलीफ में नहीं रह सकते । सेवा टहल करवाना इनके लिए किसी न किसी रूप में अनिवार्य है । बात बात में गांधीवाद की छुड़ाई देकर शरीर लाभ करना ये कभी नहीं भूले । आश्रम में गांधी जी के घोर विरोध के बाद भी इन जमींदार पुत्रों ने उन्हें ^(नौकर) रखा परन्तु उनका ^{नाम} बदल दिया । जिससे कि छुसी तोर पर उनकी बदनामी न हो ---

"महात्मन जी का हुक्म नहीं था कि सोराजी लोग आसरम में किसी को नोकर याकर के तोर पर रखें । फिर भी हम आश्रम में चार जने थे । कदने को ओलीटियर कह लो, सेपक कहलो, लेकिन ये तो हम नोकर ही । एक का नाम था रूप लाल, दूसरे का नाम था छद्दू, तीसरा था मंगल, चौथा मैं था ।"

वास्तव में बलपनमा गाँव से शहर आने वाला अन्मद व्यक्ति है लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित है । यह शहर की राजनीति में गाँव का सपना देख रहा है । लोगों में समकालीन राजनीति और राजनीतिज्ञों से प्रेरणा

1- बलपनमा: पृष्ठ सं०- 103

2- वही पृ० सं० 102/103

लेकर अपने अस्तित्व की रक्षा और अधिकारों की माँग को जी जान से पूरा कराने में संलग्न है। गांधी महात्मा के हुक्म से स्वदेशी आन्दोलन को तेज करने के लिए खदर और चरखे का प्रचार भी बलचनमा ने रसोइस का काम करते हुए देखा है।

सन् 1932 के आते-आते कांग्रेस में प्रगतिशील तत्व अलग हो गए थे और उन्होंने अपनी समाजवादी पार्टी का गठन विधीवत् कर लिया था। नागार्जुन ने बलचनमा में दोनों के सिद्धान्तों का अलग अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। बलचनमा कांग्रेस के इसी परित्र को लेकर अलग हो जाता है। बलचनमा ने कांग्रेस के मूलभूत सिद्धान्तों, गांधी जी के आदर्शों को कांग्रेसी संगठन की चारित्रिक कमजोरी मानता है। सोशलिस्ट और कांग्रेस की मूलभूत धारणाओं का उल्लेख करते हुए अपने जीवन के मोड़ की ओर संकेत दिया --

“गांधी महात्मा से जिस बात में सोशलिस्टों का मेल नहीं खाता है, श्रीजी राज न कांग्रेस चाहती है न सोशलिस्ट ही चाहते हैं। लेकिन गांधी महात्मा कल कारखाना के खिलाफ है। यह इसके भी खिलाफ है कि सेवों, जमींदारों, राजाओं, महाराजाओं से जमीन जायदाद और धन संपदा छीन कर उसे लोगों में बाँट दिया जाय ----- उनका कहना है कि एक न एक दिन श्रीजों की मीत फिर जायेगी तब वे अपने आप यह मुलुक छोड़कर पलें और उनको जबरवस्ती परेशान मत करो।”²

1- बलचनमा पृ० सं०- 112

2- वही पृ० सं०- 156

दूसरी ओर वह सोशलिस्ट पार्टी के सिद्धान्तों को भी समझता है । उसे अच्छी तरह याद है कि स्वाभिमान और आत्म विश्वास के लिए संघर्ष कांग्रेस में न होकर सोशलिस्टों में है ।---

। "सोशलिस्टों का क्या कहना था उनका कहना यही था कि दो चार साधू महात्मा के गिड़गिड़ाने से अँग्रेजों का दिल नहीं बदलेगा । समूची जनता आपस के भेद भाव भुलाकर उठ खड़ी होगी तभी अँग्रेज भागेगा----- लोगों को जब विश्वास हो जायेगा कि जमींदार महाजन की फाँसिल धन सैदा उन्हीं में बँट जायेगी, रोजी रोटी का सवाल हल होगा, बच्चों की पढ़ाई लिखाई----- बुढ़ापे की बेफिक्री-खान-पान और रहन-सहन का ठौर ठिकाना----- दवा दारु पथ पानी का ईतजाम----- यह सभी के लिए सुलभ होगा, दरभंगा के महाराज हों चाहे पटना के लाट साहब मुफ्त में खाना किसी को नहीं मिलेगा----- सब काम करेगा, सब दाम पायेगा----- लूट, अगम, बूढ़-बेकार सबकी जिम्मेदारी सरकार को उठानी पड़ेगी, पैसे के चल पर कोई किसी को बंधुआ गुलाम नहीं बना सकेगा ।-।

इस तरह कांग्रेसी और सोशलिस्ट विचारों से बलपनमा में अपना रास्ता तय करने की विज्ञा तैयार की । वह पहली बार व्यक्ति के अस्तित्व को सोशलिस्टों के संघर्ष में आने पर पहचानता है । वह सोशलिस्ट

विचारधारा से प्रभावित होकर अपने मन को पक्का करते हुए अपने ऊपर पैदा होने वाली भावना को अभिव्यक्त करता है --

"ठीक कहते हैं सोशलिस्ट भाई, जिसका हरफार उसकी धरती ।
जिसका हुनर और जिन का हाथ उसी का कल कारखाना ।" 1/

इस तरह बलचनमा का धीरे-धीरे मोह भंग होता है । उसे समाजवादी धारा से उसके सिद्धान्तों में व्यावहारिक समता होने के कारण लगाव बढ़ने लगता है । उसके राजनीतिक जीवन को बदलने वाली तीन नई घटनाओं से भूयाल का आना, महात्मा गांधी का इलाकाई दौरा और राधा बाबू का सोशलिस्ट होना है जिससे उसने नया अध्याय सीखा है । भूयाल के रिलीफ-फण्ड में उसने कृत्रिमी अलम बरदार की बेईमानी को छेड़े-छेड़े देखा है । महात्मा गांधी के पेले फूल बाबू को नमक कानून में पिटते देखा है । कृत्रिमी और देवी प्रूजीपीत के स्वदेशी आन्दोलन में गठबन्धन उसके सामने होते हैं । अतः अब उसे पूर्ण विश्वास हो जाता है कि इस बे-इयाई से जीवन की सार्थकता नहीं है । वह सोशलिस्ट पार्टी का मेंबर बनकर राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगता है । वह अपने लोगों, अपने वर्ग के हित और अधिकारों के लिए ग्रामीण स्तर पर संघर्ष करता है ।

"बाबा बेटरनाथ" में बाबा बेटरनाथ जयकिशन को स्वाधीनता संग्राम और उसके आन्दोलनों की घटनाएँ तथा भारतीयों की होने वाली प्रतिक्रिया को बड़े विस्तार से सुनाता है । 1905 का बंग-भंग आन्दोलन,

स्वदेशी आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन असहयोग आन्दोलन आदि की पूरी पंथीरपत बाबा के पास है वह एक एक करके जेक्सुन को मात्र इसी सुना रहा है कि इस युवक के हृदय में शत्रु और मित्र पक्ष की अच्छी तरह पहचान हो सके । बाबा 1905 के बंगाल आन्दोलन का जिक्र करते हुए उन आक्रोश का डवाला देते हुए कहता है ---

“बंगाल के नौजवान महात्मा गांधी की असहयोग और सत्य-अहिंसा की बातों में आस्था नहीं रखते थे । कमनों को पछाड़ने में जितने भी तरीके हो सकते हैं वे उन्हें आजमाने के पक्ष में थे । ईस्ट इण्डिया कंपनी के जमाने से ही गौरी हकूमत के खिलाफ बंगालियों का सशस्त्र प्रतिरोध शुरू हो गया था । कर्न जब बड़ा लाट होकर आया तो उसने बंगाल को दो हिस्सों में बांटना चाहा । वहाँ की शिक्षित और अशिक्षित समूची जनता ने अंग्रेज शासकों की उस कुटिल नीति का विरोध किया । नौजवानों ने कई गोरे अप्सरों को मार डाला और क्रान्ति की एक नई परंपरा हिन्दुस्तान में शुरू हुई । साम्राज्य शाही बोखला उठी तो कमन का एक ओर जोरों से चलने लगा । अंग्रेज कुटनीतिक मोखले और गांधी जैसे नेताओं की उत्तनी परवाह नहीं करते थे, क्रान्तिकारियों के गुप्त संगठनों की उभार तो ब्रिटिश प्रभुओं की नींव हलक कर रही थी ।”-----

वास्तव में अंग्रेजों ने देश को दबाने के लिए जो उनके मन में आया वह किया । भारत के भले लोरे की उन्हें तनिक परवाह नहीं थी ।

देश में तेजी से बढ़ते हुए विदेशी माल की स्थिति को बाबा बटेसरनाथ बड़ी गंभीरता से कह रहा है । वह जेकिन्सन को आगाह कर रहा है कि भारत में अंग्रेजों का कमन का प्राप्त मात्र शासकीय ही नहीं था आर्थिक भी था । देशी छुट्टीर उद्योग धन्यों के नष्ट होने और विदेशी माल की मँहगी ने भारत के प्रत्येक नागरिक की कमर तोड़ डाली थी पर बाबा इसे संविदनात्मक भाषा में स्पष्ट कर रहा है ---

"कमार जूते बनाना भूल गए थे । मोमिनों के पाँच करघे थे तो अब एक ही रह गया । चीनी की आमद ने गुड़ के व्यापार को चौपट कर दिया । बदन, छई, आइना, कंजी, उस्तरा और कैदी----- कपड़े, छेती के ओजार----- बाहरी माल आ-आकर स्थानीय उद्योग धन्यों का गला खाने लगे । तेजी और मंदी के दो पाटों में पड़कर अनाज का एक-एक दाना कराह उठा बेटा । अनाज का एक एक दाना ही नहीं, गाँव का एक एक आदमी कराह उठा । बेटा बर्तन में पानी तो पड़ले ही जितना आता था, सोझ छेप उसमें एक के बदले अनेक हो गए थे ।"

आजादी के लिए सभी लड़ रहे थे । उसमें सभी की छुट्टाली का स्वप्न रिया था । बाबा बटेसरनाथ झुठली गाँव के अन्दर व्याप्त पैतना को जन सामान्य की पैतना से संयुक्त बताते हैं । और यह तय है कि आजादी की लड़ाई में जो जिस योग्य था उसने पैता ही बलिदान दिया । अभीब समा था देश को स्वतंत्र कराने का ---

"बबुआ, यह कोई चोरी छिन्तारी की गिरफ्तारी तो नहीं थी, यह स्वाधीनता संग्राम की गौरवमय परंपरा का एक सामान्य प्रदर्शन था। गिरफ्तार होना, जेल के अंदर कैद काटना, लाठीचार्ज की घोट बरदाश्त करना, पुलिस और मिलिटरी के फौजी बूटों से कुचला जाना—इन बातों से जस भी नहीं घबराते थे लोग। सत्याग्रह और पिकेटींग त्योहार बन गए थे। पुलिस एक को गिरफ्तार करती तो एक उस एक को जगह दस आदमी आ बटते, दस गिरफ्तार कर लिए जाते तो उन दस की जगहों पर सौ जवान जड़े हो लेते। घर वाले सत्याग्रह या पिकेटींग के लिए जाते हुए अपने आदमी को माला पहनाकर और टोका लगाकर विदा करते, मानो वह शादी करने जा रहा हो। जब का जोश था बेटा, वह उत्साह का अपूर्व वातावरण था।"

राष्ट्रीय आन्दोलन में मण्डलो गवि से दयानाथ, वीरभद्र आदि लोग जेल जाते हैं। बाबा उनके माध्यम से जेकिस्तु को रास्ता बताना चाहते हैं। वे कांग्रेस की नीतियों की कड़ी की ओर भी इसीलिए संकेत कर रहे हैं कि जेकिस्तु अपने हित साधने वाली पार्टी के साथ ही एक जुड़े, पिछलग्गू बनने से निरर्थकता ही जीवन में और समाज में आती है। वह दयानाथ की छलिवानी भूमिका की प्रशंसा करते हैं —

"-----धानेदार ओर जिला के अधिकारी^{यों} ही छूटकर यदि परते रहे तो भारतमाता की इज्जत आबरू हूट जायेगी-----किस्त उमंग से दयानाथ नागपुर गया था इण्डा सत्याग्रह में शामिल होने। किस्त उत्साह

से उसने नमक कानून तोड़ा था । उछलता हुआ केसा दिल लेकर वह दोनों बार जेल के अंदर पहुँचा था ।। छ्पारों और लाखों आदमी उसी की तरह जेल गए । तेकड़ों फाँसी पर झूले । छ्पारों के परिवार टूटे-----तब जाकर यह आजादी हासिल हुई है-----

परन्तु यह आजादी कैसी और किसके लिए थी । यह आजादी हरगाँव के बड़े लोगों शहर के अप्सरों और खाते पीते घराने के लोगों के लिए थी । उन्हें ही पैन से रहने देने के लिए यह इतना बड़ा कांग्रेस की ओर से तमाशा हुआ था । बाबा बटेसरनाथ समझाता है ---

"आजादी । ठि । आजादी मिली है हमारे उग्रमोहन बाबू को, कुलानंद दास को----- कांग्रेस की टिकट पर जो भी चुने गए हैं उन्हें मिली है आजादी । मिनिस्ट्रों को तो ऊँचे दर्जे की आजादी मिली है सेक्रेटेरियट के बड़े साहबों को भी आजादी को फायदा पहुँचा है ।"²

इन घटित घटनाओं के माध्यम से बाबा बटेसरनाथ ने स्पष्टली गाँव में स्मत्तामयिक परिस्थिति का बड़े ही विस्तार के साथ वर्णन किया है । उन्होंने गाँव के युवा प्रतिनिधि जेकिस्न को संबंधित बातों से अवगत कराकर उसे अधिकार बोध के लिए प्रेरित किया । डा० विजय बहादुर सिंह इस पूरी पुच्छभूमि में संघर्ष के सूत्र की तलाश मानते हैं ---

1- बाबा बटेसरनाथ: पृ० सं०- 110

2- वही: पृ० सं०- 110

"इतिहास और राजनीति या राजनीतिक इतिहास को प्रस्तुत करने हुए लेखक नयी पीढ़ी को वह पृष्ठभूमि देना चाहता है जिसके सहारे हमारी समकालीन राजनीतिक चेतना का विकास हुआ है। यही वह बिन्दु है जहाँ वह नए युग के व्याख्याकार के रूप में हमारे सामने है। सत्युग की व्याख्या करते हुए वह इतिहास के उन पक्षों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है जिन पर अब तक निगाह ही नहीं गई थी हमारी। और फिर यह उसका कथन कि असली स्वर्ण युग [सत्युग] तो अभी आने वाला है। वस्तुतः हमारी जातीय दृष्टि को अतीत से मुक्त कर भविष्य से जोड़ने का काम करती है।"

नागार्जुन भूदान आन्दोलन की नाटकीयता से भी परिचित हैं। बड़े-बड़े जमींदार और भूस्वामी निरर्थक जमीन को दान में देकर इलाके में प्रथमतः नाम कमाकर नयी सुविधाओं की तलाश करते हैं। उनका नाम अखबारों और पत्र पत्रिकाओं में छपता है। परन्तु गरीब को वह जमीन मिल जाने पर वह उसे जब अपने श्रम से समतल और उपजाऊ बना लेता है तो उनकी तार उसे हड़पने के लिये टपकने लगती है। इससे और अधिक नीचता का काम संभवतः दूसरा नहीं हो सकता। परन्तु दानी मिली जमीन को आसानी से वापस नहीं करता वह उसके लिये हीथियार उठा लेता है। और सत्तात्र लक्ष्य करता है। "उग्रतारा" उपन्यास में भीमसेन सिंह की जेल के अन्तर्गत इसी प्रकार का एक जेली सजा काट रहा है --

"इस अछे केवी को भूमिजन सिंह बहुत मानते थे। जमीन की बेवजाली के खिलाफ उसने जमकर लड़ाई लड़ी थी। भूदान में मिली हुई उबड़ खाबड़ जंगली जमीन को उसने खेती लायक बना लिया तो पुराने भूदानी की तार टपकने लगी। फिर से कहीं रदवी जमीन देकर वे उससे अच्छी जमीन छीनना चाहते थे। मार पीट हुई, गड़ासा चल गया। भूदानी बाबू के आदीमियों में से एक को इतना घाव लगा कि अस्पताल तक पहुँचते पहुँचते बेघारे के प्राण पछे उड़ गए। मुकदमा चला इसे नौ वर्ष की सजा हुई।"।

यह दुर्घटना आज तक चली आ रही है। भूमिहीनों को सरकार द्वारा दी जाने वाली जमीन का नाटक आज भी दूसरे स्तर पर जारी है। लोगों को असंतोष से गाँव में फौजदारियों का फिर एक अन्य सिलसिला शुरू हुआ है। बेघारा गरीब हर तरफ से पिटाता है। एक ओर गाँव का खाता पीता आदमी उसकी अस्मत् लूटता है तो दूसरी ओर पुलिस का जुल्म उसे घेन से नहीं बेठने देता। भूमिजन सिंह इस स्थिति की निन्दा करता है —

"एक नहीं मानेगा। जरूरत पड़ी तो फिर गड़ासा उठा लेगा। भला यह भी कोई कायदे की बात हुई? आपने जमीन रदवी फदवी जानकर किनोबा बाबा को दान कर दी और भूदान कमेटी ने उस जमीन को जीतन के हवाले किया। लिखा पट्टी पक्की हुई। जीतन ने हड़डी तोड़ मेहनत की और उस जमीन को सोने का टुकड़ा बना लिया। तो अब आपके मुँह से तार क्यों टपकती है? यह आपत बहुत खराब है बाबू साहब, रदवी फदवी ओरों के लिए मास टास अपने लिए"२-----

1- उग्रतारा: पृ० सं०- 22

2- पत्नी: पृ० सं०- 22

इस तरह नागार्जुन ने राजनीतिक गतिविधियों से देहाती जीवनमें उभरने वाले राजनीतिक संघर्ष को उसकी खास पृष्ठभूमि में बनाने दिया है। उनके पात्र अपनी समतामयिक घटनाओं से भी प्रेरणा लेकर अपने अधिकार और विश्वास की सुरक्षा के लिए आगे आते हैं। वे अब अपनी जान पर खेलने से भी नहीं हटते। क्योंकि आगत भविष्य उन्हें अधिकार दे रहा है, अतः वे उसके लिए कपूर बख्तर छोड़ रहे हैं।

जमींदारी उन्मूलन-किस्तान और जमींदार संघर्ष

आजादी से पहले भारत में साम्राज्यवादी अग्रिम, पूँजीपति और जमींदारों के त्रिकोणात्मक शोषण में जनता का निर्वहण हो रहा था। इन्हीं तीनों के मिले जुले आक्रांति से समाज के अंदर विविध स्तरों पर नैतिकता, अनैतिकता को बढ़ावा मिल रहा था। लम्बे संघर्षों और जन आन्दोलनों के बाद देश आजाद हुआ। साम्राज्यवादी शोषण से मुक्ति मिली, पूँजीपति और जमींदार अभी बरकरार थे।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय नेताओं ने देश के विकास के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम निर्धारित किए जिसमें कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। किस्तानों और मजदूरों को सामंतों और जमींदारों के शोषण से मुक्त करने के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत ही 'जमींदारी उन्मूलन' किया गया। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद कृषक और मजदूर की जिन्दगी में सुधार लाने का पहला प्रयास था। डा० पूरनचंद जोशी ने जमींदारी उन्मूलन के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है ---

“भारतीय कृषि और भूमि व्यवस्था के पुनर्गठन की खा में समान उपजीवी जमींदार और जागीरदार वर्ग के अधिकारों और आधिपत्य को किसी हद तक घटाकर कृषि विकास की पूर्व स्थितियाँ पैदा की।”¹

वास्तव में किसानों और मजदूरों की खा सुधारों में यह पहला राजनीतिक कदम था जिसके माध्यम से कृषि को बेहतर बनाने का उद्देश्य था। डा० रामबिहारी सिंह तोमर ने इसे राजनीतिक घोषणा बताते हुए इसके मूलभूत उद्देश्यों की स्थिति स्पष्ट की है —

“जमींदारी उन्मूलन का एक आधार, आर्थिक कारण नहीं राजनीतिक कारण था और वह था जमींदार और जनता के बीच सदैव से चला आया संघर्ष। उसी के परिणाम स्वरूप जमींदारी उन्मूलन हुआ”²

जमींदारी उन्मूलन के बाद गाँवों के अन्दर बड़ी ही विषम परिस्थिति ने जन्म ले लिया। गाँव वैचारिक स्तर पर दो हिस्सों में बँटने लगे। एक ओर गाँव का जमींदार और उसके कर्मचारी दूसरी ओर किसान बेतुल मजदूर और नीचे वर्ग के लोग जो खेती पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अपनी जीविका चला रहे थे।

यद्यपि जमींदारी उन्मूलन एक तरफा नहीं था। एक ओर उनसे उनकी मध्यस्थ सत्ता को लिया गया था तो दूसरे उन्हें मुआवजे के रूप में शासन की ओर से लाखों रुपये की धनराशि वार्षिक आय के रूप में बिना हाथ पेर दिए ही मिलने लगी। फिर भी उन्हें इतने भर से संतोख नहीं था। वर्षों

1- डा० पूरनचंद जोशी: भारतीय ग्राम-संस्थानिक परिवर्तन और आर्थिक विकास, 1966 पृ०- 44

2- डा० रामबिहारी सिंह तोमर: ग्रामीण समाज शास्त्र स०-4।3

से निरीह जनता का धून घूस-घूस कर उसे बेदम करने उसके ऊपर जुल्म करने का उन्हें जो शौक लग चुका था अब यह सकारात्मक समाप्त होने पर वे तिलमिला उठे ।

जमींदारी उन्मूलन के साथ-साथ सरकार ने बड़े-बड़े भूस्वामियों की ज़ेती की सीमा की भी हद बंदी कर दी थी । फिर भी बहुत सारी जमीन को खंजर, ~~खंजर~~, पोखर, बाग, चरागाह आदि घोषितकर उन्होंने उसे अपने कब्जे में ले लिया था और उन्हें अपने बालीम-नाबालीम परिवारी सदस्यों के नाम लिखाकर फिर घेन की बंशी बजाने लगे । डेनियल थार्नर ने इस सत्य को अपनी पुस्तक में स्पष्ट किया है ---

"बिहार और जमींदारी उन्मूलन के बाद भी पचास या सात सौ ही नहीं एक हजार एकड़ की जमींदारीयाँ साधारणतः है । इस सब में अब भी जमींदारों के पास काफी जमीन है ।"

इस तरह जमींदार उन्मूलन ने भारत के गाँवों में एक अजुबा वाता-वर्ण पैदा कर दिया । यह व्यवस्था हुई तो आम जनता को सहूलियत देने के लिए थी लेकिन इसका फलपरिणाम ही सामने आया । सरकार में उन्हीं जमींदारों के नाते निरक्षर थे, सरकारी कार्यालयों और ऊँच-ऊँच ओहदों पर इन्हीं के सम्बन्धी थे । अतः कानून के छोटे छेद में हाथी निकालने की बात इन्हीं लोगों ने सिद्ध कर दिखा दी । इसीलिए आज फिर गाँव में संघर्ष का वातावरण बना हुआ है । छोटा, मझोला आदमी अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहा है । डा० नीरन्मोहन इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं--

1- डेनियल थार्नर: फ्लोरियन प्रोस्पेक्ट इन इंडिया, 1956 पृ०-34

"स्वतंत्रता प्राप्ति महज एक घटना नहीं होती । यह उस देश के लोगों की अदम्य शक्ति कामना, संघर्ष और सामूहिक चेतना का प्रतीक होती है । स्वतंत्रता के पीछे एक लम्बे संघर्ष का इतिहास खता है और यह संघर्ष उस देश की मानसिकता को एक नया अर्थ और आभास देता है।"¹

इसी लिए स्वतंत्रता के बाद दबे पिछे लोगों में एक आत्म विकास और अपने अधिकार के लिए अत्याचार के खिलाफ सिर उठाने की प्रवृत्ति का नूतन जन्म हुआ है । अतः राजनीतिक चेतना से छुड़कर ग्रामीण लोग अपने इन शोषकों के खिलाफ संगठित होकर खड़े होते हैं । वे अपनी व्यक्तिगत छायादी के लिए उनसे लड़ रहे हैं । आजादी के बाद का साहित्य इसका प्रामाणिक दस्तावेज है—

"स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासकारों ने इस सर्वतोमुखी जागरणकाल में गाँव और समस्याओं से जुड़ रहे किसानों को देखा, उनकी जिन्गी के अभावों के डेर, पीढ़ियों के संकट को अनुभूत किया और सचिकनियों के स्तर पर उन्हें अभिव्यक्त की । नागार्जुन के उपन्यासों ने इस क्षेत्र में पहल की है।"²

नागार्जुन ने "रतिनाथ की चाची" में जमींदारों के जातिमाना कर्मों का सचिकन के स्तर पर चित्रण किया है । जमींदार वास्तव में पैदाइश से ही शोषण के नए तरीके सोचता रहता है । उसके चारित्र्य विरासत में यही सीखते हैं इस्ते इतर कुछ नहीं । अतः जमींदारी उन्मूलन के बाद जब जमींदारों के

1- डा० नरेन्द्र मोहन: "आपकल" [मासिक] अगस्त 1972 पृ०- 14

2- डा० शानमन्द गुप्त: स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना पृष्ठ संख्या- 50

अधिकारों उनकी सम्पत्ति आदि को सीमित किया गया तो वे तिलमिलाने लगे । वे अपनी सत्ता और सम्पत्ति के रख-रखाव के लिए काजिल जमीन बेचने लगे । परन्तु किसान जिसे आजादी की रोशनी ने अधिकार का रास्ता दिखा दिया वह खड़ा हो गया । क्योंकि वह वर्षों से उस जमीन को जोतता चला आया था उसे उसके इस पुत्रेनी हक से जालिम जमींदार कैसे वंचित कर सकता है वह संघर्ष के लिए उतारू है --

"अभी कुछ दिन पहले उसकी जमींदारी के किसी दूसरे मोजे में किसान आन्दोलन ने जोर पकड़ा, रैयतों ने अपनी जोत की तीस बीघा जमीन छोड़ने से साफ इन्कार कर दिया । मालिक उसे पड़ोस के किसानों के हाथ बँदोस्त कर देना चाहता था । जो पच्चीसों वर्षों से उस जमीन को जोतते बोते और फसल काटते आ रहे थे, वे लोग डट गए- इस पर हमारा हक है । --- तनातनी बढ़ी । सरकार ने एक सौ चौवालीस क्का लगाकर जमीन को लाल साफे और लम्बी लाठी की अपनी निगरानी में ले लिया । किसानों ने सत्याग्रह आरंभ किया मालिक को लठेत और पुलिस वाले मिल गए । उमर कगिरी मंत्रिमंडल था, नीचे धरती माता थी । सत्याग्रही घुट्टी-घुन जब पिटने लगे तो कून से तिलंगा लाल हो उठा । इस छोटे से महामारत में दो कुर्मियों और एक ब्राह्मण की जान गई ।"

ताराचरण आधुनिक चेतना से सम्पन्न युवक है । वह ग्रामीण चेतना के लिए "आज" पत्र को संग्रह लोगों को उनकी समस्याओं के बारे में बतलाता है । वह जमींदारों के खिलाफ गाँव में किसान कूटी बनाता है--

"किसान संगठित होने लगे । उनका नारा था- कमाने वाला
 खारेगा, इसके पलते जो कुछ हो ।----- गाँव में से दो तीन लीडर निकल
 आए । बहुआठा पोखर के भिँडे पर किसान-कुटी बन गई । घर-घर से
 मुठिया वसूल होने लगी । किसान कुटी के लिए किसी ने लोटा दिया,
 किसी ने धाली दी । कुम्हार ने छड़े दिए, तोला दिया, कड़ाही दी ।
 उमानाथ की माँ ने अपना दो साल का पुराना कंबल दे दिया ।-----
 आन्दोलन की बातें इस तरह बढ़ा फटाकर राजा बहादुर के कानों में डाली
 गई कि वे बहुत हवासे हो गए । बढिया से बढिया धनहर खेत से या पचास
 रुपए की बीघा लुटाने लगे । "आग लगते झोंपड़ी जो आवे सो हाथ ।"
 किसान बिट्ठा भर भी जमीन छोड़ने को तैयार नहीं थे । उनमें गजब का
 जोश था । उनके लीडर दरभंगा और पटना तक दौड़ लगा रहे थे-----
 सभा, जुलूस क्या सब सो चवालीस, गिरफ्तारी, सजा, जेल, भूख हड़ताल,
 रिहार्ड- यह सिलसिला किसानों को ठन्डा नहीं कर सका ।"

उपन्यास का ताराचरम अब जमींदार के खिलाफ हुलस सामने आता
 है । वह उसके किसी भी काम को सहयोग देने के लिए तैयार नहीं है ।
 उसकी भूमिका से वह अच्छी तरह पारिक्त है । इसलिए वह सीना तान कर
 मातृक स्वारा हुताई गई नाटक कंपनी पर कहता है ----

"जमाना बदल गया है, जब हम अंग्रेजों की नाक में कोड़ी बाँधते हैं तो राजा बहादुर की क्या पितात १ उनका सामाज सुव आकर हमें सिवा ले जाय, तब खोंगि । अन्त में हुआ यही कि दो एक बूंदों को छोड़कर और कोई नहीं गया ।"¹

यह किसान आन्दोलन जन-चेतना के साथ जुड़ा हुआ था । अतः उसमें किसानों और मजदूरों का बहुत बड़ा र्क इस आन्दोलन के साथ-साथ चल रहा था ।

नागार्जुन किसानों और मजदूरों के लेखक हैं । अतः उन्होंने किसानों और मजदूरों की समस्या को गंभीरता से लिया है । किसानों का जमींदारों से संघर्ष उसके स्वल्प की एक स्पष्ट स्थिति है । डा० स्न० रवीन्द्रनाथ ने नागार्जुन के इसी दृकाव की प्रशंसा की है —

"रतिनाथ की पापी" का कर्ण किष्क भिन्न होते हुए भी विविष्ट उपेक्षय से प्रेरित होकर नागार्जुन ने इसमें सन् 1937-39 ई० के लगभग विचार प्रान्त में किसानों का जो सशक्त आन्दोलन चला था, उसका चित्रण किया है ।----- उनका उपेक्षय किसानों को यह दिखा देता है कि संघर्ष में उनका सहयोग कौन करेगा और कौन-कौन प्रीतिप्रियापायी शक्तिधों का समर्थन करते हुए किष्क में लड़े होंगे । इसीतर नागार्जुन ने जयदेव जैसे समाज के कोदियें तथा जिला किसान समा के प्रमुख नेता की लालची मनोवृत्ति र्क अपसर पापिता को दिखाकर उन्हें किसान संघर्ष के हत्यारों के रूप में चित्रण किया और किसानों को ऐसे नेताओं के प्रति जागरूक रहने का आह्वान किया ।²

1- रतिनाथ की पापी: पृ०- 159

2- स्न० रवीन्द्रनाथ- मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास-पृ०- 182-83

वास्तव में नागार्जुन को कुछ कर्ष से बड़ी समझौदा है । दिन रात हाड़ तोड़ मेहनत करके वह साबूकार और सेठ का पेट भरकर बड़े बड़े सड़े-गले अनाज से अपना और अपने परिवार का पानवलों की तरह भरण-पोषण करता है । इसीलिए उसके शत्रु और मित्र को नागार्जुन पर्दे के बाहर इसीलिए नहीं रखते कि दूसरे लोग देखकर उससे प्रेरणा ले सकें । अपने ही बीच के आस्तीन के साप को देख सकें ।

"बलघनमा" तो किसान और मजदूर जिन्दगी का प्रामाणिक दस्तावेज है । वह जमींदार के यहाँ गुलामी करता हुआ धीरे-धीरे पिटकर, भूखा रहकर सरक-सरक कर एक दिन सूर्य के दरवाजे पर आ खड़ा होता है । हाठ मेघ की उसके जीवन की गीत पर टिप्पणी महत्वपूर्ण है --

"बलघनमा अनेक शोषण और अन्यायों को भोगता हुआ अपने नंगे भूखे श्रम के बलबूते पर दरवाजे से बाँधिया ॥ पुष्टिनी गुलाम ॥ बाँधिया से काँटिनी भोलेटियर त्वर्य सेवक नोकर से छेत मजदूर, छेत मजदूर से किसान और किसान से किसान नेता बनता है । उसका ऐसा स्वान्तरण सीमित जीवन के तमाम खण्डश्यों को भोगने के साथ-साथ ही होता है । साथ ही साथ वह तबी और गलत सम्बन्धों की पहचान करता है । यह पहचान ही उसकी राजनीतिक सांस्कृतिक चेतना को जन्म देती है-।

जमींदारी उन्मूलन के बाद जमींदार फाजिल जमीन को अपने अधिकार में लेने साजिश कुके-कुके करने लगे । छेतिहर मजदूरों और बटाईदारों से उन्होंने चोरी चूपे अंगूठा टीप लिया । यह पूरा का जमींदार छान बहाहर

सापुस्ता खई आठ फस मोये की मात गुजारी के मालिक हैं । टाई-तीन तो की छप की कायतकारी है । इसके साथ ही छपारों वीधा जमीन मनका लगी हुई है । लेकिन नीयत साफ न होने के कारण यह सब कुछ भी थोड़ा है । ये गरीब की दो-चार बीघे जमीन को भी आँख की किराकरी मानने लगे और उनकी इस जीविका को छड़पने के लिए जी तोड़ घोरी छिमे कोशिश करने लगे उनकी इस साजिश में छोटे मझोले किसान भी शामिल हो जाते हैं । ये गरीबों के शोषण^{का परिणाम} अपनी छड़प नीति से होते हैं । —

“मगर खान बहादुर नहीं बैठे रहे, भीतर ही भीतर उनका जमींदारी दाँव पेंच बढ़ता ही गया । गरीब किसानों की यह जमीन अपने अपने नाम छुपाप लिखा कौन रहे ये ? बड़े मझोले किसान जो अक्सर हमारी तरफ के बराहमन, मुइहार, शेख और सुँडी महाजन होते हैं— यह छड़पना चाहते थे गरीबों के मुदती दो मुदतीभस्तको ।”¹

किसान और मजदूर इस भारतीय डलहौजी की शोषण की नीति का मोतबन्द होकर मुकाबला करते हैं । ये समाजवादी चेतना से सम्पन्न डा० रहमान से मिलकर अपने संघर्ष का पैतरा तैयार करते हैं । ये अच्छी तरह समझते हैं कि जमींदार बहुत बड़ा जालिम है । उसके पक्ष में बड़े-बड़े लोग हैं लेकिन फिर भी ये सामूहिक रूप से अपने हक की लड़ाई के लिए लड़ते हैं । डा० रहमान का नेतृत्व उन्हें आशा बंधा रहा है । यह कगिती का कपन नहीं जोकि शान्ति और अहिंसा का पाठ पढ़ाकर फेन से अपनी ही बात से मुकर

पाय यह एक सोशलिस्ट का दिया हुआ बपन है जिसमें सर्वोच्च की एक विशिष्ट नीति है --

“उन दिनों सोशलिस्टों में बड़ी गर्मी थी भैया । वे जो कुछ कहते उसे करने की भी कोशिश उन्हीं की ओर से होती थी । मजदूरों की हड़ताल हो पाहे किसानों का आन्दोलन-सोशलिस्ट भाई उसमें आगे बढ़कर हिस्सा लेते थे----- खान बहादुर के खिलाफ लड़ाई छेड़ने का रास्ता बता दिया । किसानों का संगठन, अखबारों से जमींदार की जातिमाना हरकतों का प्रचार कम-कम से कम पचास भोलेटियरों की बहाली, बीस, पच्चीस मन अनाज और सौठो स्पेया इलाके भर के किसानों की एक मीटिंग”।-----

अतः सर्वोच्च का आह्वान सामूहिक तौर पर खेती की लड़ाई के लिए होता है । यह पूरा के किसान जातिमान जमींदार के खिलाफ अपना साहस बटोर कर मैदान में उतर आते हैं --

“उस जातिमान जमींदार का मुकाबला अकेले तो कोई नहीं कर सकता था ? उसकी पीठ पर धाने के दरोगा साहब थे, दरभंगा के कसबदार साहब थे, इलाके भर के जमींदार, पण्डित और मौलवी सब खान बहादुर के पक्ष में थे । पश्चिम के कस लूत जवान, नेपाल के पाँच छुजरी बहादुर----- बड़ा ताकतवर था खान बहादुर । अकेले कौन उससे भिड़ता ? लेकिन सो ठो

ताली लाठी एक जगह हो जायें तो उनका एक भारी बोझ बन जाता है । अपनी अपनी धरती के लिए किसान एक होने लगे----- रैयत लोगों ने तय कर लिया था कि लाख गिरे तो गिरे मगर अपने खेत दूसरों के पखल में नहीं जाने देंगे ।¹

किसान सभा का आयोजन डा० रहमान रहपूरा में किसान संघर्ष के लिए करते हैं । किसानों के ऊपर होने वाले जुल्म को वे सोशलिस्ट भाइयों के विचारों से स्पष्ट करते हैं --

"कग्रेसी आपका दुख दर्द क्या समझेगी वह छापी पहनकर और गले में माला डालकर जमींदारों को जेल भेजने का नाटक करती है । पीछे जेल से निकले वही जमींदार कग्रेसी आप लोगों को शान्ति और संतोष का सबक सिखाते फिरते हैं ----- उबरदार । भाइयो----- आप अकेले नहीं हैं करोड़ों की तादात है आपकी । आप जब उठ खड़े होंगे और एक कण्ट हो कर हुंकार करेंगे तो जातिम जमींदारों का कलेजा चटलने लगेगा । वे हैं वही कितने साल में नमक के बराबर ----- संगठित होकर एक हो जाइए, जान जाइ तो जाइ मगर जमीन नहीं छोड़िए, ----- जान बहापुर हो पाहे ^{और अदालत कचहरी के ईर्-पिर्द अभी मत जाइये} ईर्-पिर्द के महाराज बहापुर कोई आपका हक नहीं छीन पायेगा । आप अपनी ताकत को पहचानिए । बोलिए सब मिलकर इन्कलाब ।"²

1- बलपनमा पृ०- 152-153

2- वही- पृ०- 158

महपुरा में होने वाली इस किसान सभा ने फूस में चिन्गारी का काम किया। आस-पास के गाँव और किसान अपने गिरहवान में झुंकिर अपना अस्तित्व पहचानने लगे। आस-पास के मालिक लोग जो किसानों से अनाज का हथौटा-सपाया यमराज की तरह वसूलते थे अब उनके पेरों की भी मिट्टी सरकने लगी। बलवनमा भी अपने गाँव रामपुरा में महपुरा जमींदार की खिलाफत के देखी-देखी संघर्ष के लिए उठ खड़ा हुआ। बलवनमा का खेत उसकी नाबातिली में मझिले मालिक ने अपने कलमी बाग के लिए पहले ही छहप लिया था। अन्य छोटे-छोटे किसानों की किस्मई को भी वे अब निगलने लगे थे। क्योंकि महपुरा गाँव इलाके भर के किसानों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन रहा था। गाँव के तमाम लोग अब संघर्ष के लिए उतारु हो गए थे। उन्होंने तय कर लिया था कि अब आगे बिदता भर भी जमोन मालिकों को नहीं छहपने दी जायेगी। और उसका विस्फोट हुआ उस नब्बे बीघा जमीन पर जिस पर सेक्कों परतों से गाँव के तीस किसान [मुसलमान, ग्वाला और केवट] बंछेती करते पले आ रहे हैं। मालिक के परदावा ने पालाकी से अपने नाम पड़ा लिया था। तीसों किसानों के नाम अधानक अदालत का सम्मन पार साल की मालमुजारी बकाया वसूल होने के कारण आ जाता है।¹ यह मझिले मालिक की हृदि की उपज थी। स्थिति यह थी कि किसान प्रति वर्ष मालमुजारी चुकाते पले आ रहे थे। सम्मन से किसानों को भय का वातावरण नहीं बनता बल्कि महपुरा के गाँव का समूचा खूब सामने आता है जिसमें किसानों और जमींदारों की फसल की छीना झपटी में एक किसान ने जान दे दी थी।

कम 144 तोड़ने पर दो टाई वर्न किसानों की गिरफ्तारी होने पर भी फसल किसानों को ही मिली थी ।

अब क्या था- पूरा गाँव किसान सभा की सदस्यता लेकर संघर्ष को आगे बढ़ाता है । घेतला से आत्मीय जुड़ाव होने के कारण ही वे मनियर घाघा से लेकर शेख अब्दुल तक, तारारचंद बाबू से लेकर तीरी आखात तक और फूदन मिसिर की पिथवा मुसम्मात से लेकर हमीदा, कुन्ती आदि तक किसान सभा के इकीनियर्स मेंबर बन जाते हैं । यह सब मालिक लोगों के शोषण का ही परिणाम है जिनके सूब-दर सूब की ल्येट में सारे गाँव की जनता तबाह हो जाती थी । एक स्मेया साल भर में डेढ़ स्मेया और एक मन धान डेढ़ मन हो जाता था । अतः वे बड़े धैर्य और साहस से काम लेते हैं । संघर्ष की रणनीति बलपनमा के नेतृत्व में तय होती है । डाऊ रहमान मठपुरा से आ जाते हैं । रामपुरा के सभी किसान जमीन न छोड़ने की कसम लेते हैं और मठपुरा आन्दोलन की कमजोरी आदि को गुरस्त करते हुए यह कहता है--

"जमींदार और सरकारी अप्पर पुलिस ठहरे, उनको पुलिस ठहरे नहीं परस्त कर सकते थे । पिटाई पर पिटाई खाना और भेड़ बकरी की तरह पकड़ा कर घेत बले जाना बहापुरी नहीं है । ऐसी सिथाई से पूजा तुम्हारी हो तो जमीन हर्ष की नौक भर भी नहीं मिलने की छी ।"

इधर मालिक लोगों के साथ प्रलोभनों और दबावों के बावजूद भी किसानों में फूट नहीं पड़ सकी । बल्ली बाबू जैसे बड़े किसान भी जमींदार का साथ दे रहे थे । इसीलिए मालिक ने सरकारी अफसरों की छत्रछाया में मलेटरी वालों से झगड़े वाली जमीन कटवाली ।

बलचनमा को बार-बार उसके जान माल की ^{रामची} जाती है । स्वयं छोटी मलिकाइन बलचनमा की माँ और पत्नी को छलाकर सीधे-सीधे कह देती है—‘बलचनमा अपनी हरकतों से बाण नहीं आया तो घर फूँकवा देंगी’ । यद्यपि बलचनमा की अब घर गिरस्ती है । अठारह महीने की बिटिया, बूढ़ा माँ, जवान पत्नी । परन्तु वह छुसकर तमाशा देख रहा था । वह धमकियों और पुनोत्थियों से और अधिक उग्र हो जाता है । उसकी गति विधियाँ दिनों दिन बढ़ती जाती हैं । पार्टी के आश्रम में आवा जायी और सोना बेचना बढ़ता चल गया । और अन्त में एक दिन उसकी मौत का कारण यही गाँव की राजनीति में सक्रिय भाग लेना होता है । जमींदार के पालतू गुण्डे रात में उसका कत्ल कर देते हैं ।

परन्तु बलचनमा अपनी पीछे पसीयत के नाम पर कुछ छोड़कर जाता है जो आध की पीढ़ी का विकास निर्यात करते हैं ---

“कमाने वाला जायेगा, इसके पल्ले जो कुछ हो---- धरती कितनी जोते बोये उसकी । किसान की आजादी आत्मान से उतर कर नहीं आयेगी वह परगट होगी नीचे-पुती धरती के गुर गुरे टेलों को फोड़कर”।-----

बलघनमा का यह किसान संघर्ष आजादी से पूर्व की अवस्था का है जब कि वह हर तरफ से अकेला है। आन्दोलन में बड़े लोग, सरकार में जमींदार ^{और} अफसरों में बड़े घरों के बेटे हैं जो कि उस और उसकी बिरादरी के लोगों की परछाई तक से घुणा करते हैं। परन्तु बलघनमा अपने साहस और विश्वास के साथ किसान समा का आश्रय लेकर वह कर गुजरता है। जो आज तक नहीं हो पाया था। डा.0 सुष्मा धवन इसे नागार्जुन का क्रान्तिकारी कदम स्वीकार करती हैं —

लेखक का उद्देश्य बलघनमा के जीवन संघर्ष के चित्रण द्वारा उस समाजवादी चेतना की ओर निर्देश करना है जो साधनहीन एवं स्वाधिकार वंचित किसान के अन्तर में अन्याय तथा अत्याचार के प्रति विद्रोह की भावना को जन्म दे रही है।¹

वास्तविकता भी यही है कि साधनहीन व्यक्ति को हर व्यक्ति दबाना चाहता है/ वह गुलाम होता नहीं है होने के लिए बाध्य किया जाता है। उसका शोषण पैदा होने से लेकर मरने तक होता ही रहता है। नागार्जुन इस वर्ग के स्वागत सिमायती हैं। अतः उन्होंने इन पर होने वाले व्युत्पन्न को कदापि छान नहीं किया —

नागार्जुन ने बलघनमा में भारत की पीड़ित गरीब और शोषित जनता की भावनाओं को वाणी प्रदान करने का उद्देश्य बनाया है। नागार्जुन समाजवादी यथार्थवाद के प्रबल समर्थक हैं, उनके मन में निम्न समझे जाने वाले समाज के लिए जो उच्च वर्ग द्वारा शोषित किया जाता रहा है बड़ा दर्द है। लेखक

ने इस उपन्यास के माध्यम से उन्हें संतुष्ट किया है और अपने अधिकारों के प्रति सजग होने के लिए कानून का विज्ञान बताया है ।¹

नागार्जुन ने जमींदारी उन्मूलन के बाद किसान और जमींदार का संबंध "बाबा जेसरनाथ" में बड़ी गहराई से चित्रित किया है । जमींदारी प्रथा समाप्त होने पर सरकार ने जमींदारों को जोत और किसानों की हड़बंदी कर दी थी । उनके तमाम शासकीय अधिकार समाप्त कर प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता का असली जामा पहनाया गया । भारतीय संविधान ने आम आदमी को न्याय के लिए अदालतों और सुरक्षा के लिए पुलिस बल का संरक्षण देकर उसके अस्तित्व की रक्षा का प्रावधान किया । परन्तु जमींदार जिसे सधियों से पराया माल छाने और रक्त चूसने का चस्का लगा गया था वह कब चैन से बैठने वाला था । रस्ती चलने के बाद रैल का श्रेष्ठ रहना स्वाभाविक होता है जमींदारों की आजाद भारत में यही भूमिका रही है । हड़बंदी हो जाने पर भी उनकी कई इस तरह की छूट और सहूलियतें दी गई जिसके आधार पर उनका कर्म पुनः शुरू हो गया । जमींदारी उन्मूलन में जमींदारी प्रथा उठाई गई । कृषि का भारी बहुमत सरकार में था । और इस कमिश्नी सरकार में जमींदारों, और रईसों के घराने के वे ही लोग थे जो कि इस कानून से प्रभावित होने वाले थे । अतः उन्होंने अपने इस कर्म की रक्षा प्रीवीयर्स से पूरी की । उन्हें साताना बीबी हुई रकम सरकार देनी इस तरह की व्यवस्था कमिश्नी की बृहत्तर सरकार के कानूनन करार देकर उन्हें फिर छुटा छोड़ दिया ।

नागार्जुन ने इस बात को बड़ी गंभीरता से लिया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि सुई की नोक के छेव में हाथी कानून के द्वार से प्रवेश पा जाता है। जमींदारों का यही हाल था। उनके अधिकार गिराए नहीं जा रहे थे अपितु मजिद ताफ किए जा रहे थे। "बाबा बटेसरनाथ" में जैकिस्न को यह कल्प कहानी धीरे-धीरे सुनाकर उसे पूरी स्थिति से परिचित कराया जाता है—

"और तेरी यह आजाद सरकार इन सामंती श्रीमंतों को ज्यादा से ज्यादा हरजाना देने की तिकड़ में भिड़ा रही है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के पाणिब हकों का दायरा बेहद बढ़ाकर जमींदारी प्रथा का यह जो नक्सी श्राद्ध कगिरी लोग कर रहे हैं, क्या नतीजा निकलेगा इसका ?"

इसलिए जमींदार वर्ग कभी घाटे में नहीं रहा। उसके राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने का उद्देश्य ही यही था। यही कारण था कि उसने नाटक के नाम पर विदेशी सत्ता की तमाम यातनाएँ सह्यीं। और मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग के लोगों को महज संघर्ष के लिए यह कह कर कि 'आजाद भारत में सबका भाग्य समझे' जैसी स्लीपिंग पिल्ल देकर उनकी कुर्बानी देता गया। अतः सरकार बनी तो वह फिर शासक बना और उसने तमाम व्यवस्थायें अपने घर और वर्ग के लोगों के अनुकूल थीं।

जमींदारी उन्मूलन में फाजिल जमीन जो कि जमींदारों के नाम बाग, परागाह, पोखर आदि के नाम थी अब वह सार्वजनिक करार दी गई। परन्तु जमींदार अब झुप बैठता उसकी सूनी निगाह इन्हीं उपयोग की जमीनों पर आकर टिक गई— बाबा सुनाते हैं—

“भागते भूत की लंगोटी भली । जाते-जाते ये जमींदार सार्वजनिक उपयोग की इस भूमि को भी बेचे जा रहे थे । पता है उसे १ इस जमीन की कितनी कीमत मिली है उन्हें १ दो तो स्वर ।”

अतः यह वह सिसिली है जिसने ग्रामीणों को अपने लुटेरे हुए अधिकारों के प्रति सचेत किया है । ये इस जमींदार के ^{नियन्त्रक} ~~नियन्त्रक~~ सिर उठाते हैं जिसका स्वतंत्रता पूर्व बहुत भारी आतंक था । यातनाएँ कितने तरह से दी जाती हैं दिन रात उनकी उल्ल इसी में लगी रहती थी ।

नागार्जुन के चिंतन का व्यापक फलक है । वे संघर्ष के मुद्दों का बुनियादी सूत्र तलाश करते हैं । उन्होंने किसान के शोषकों की बड़ी गहराई से पहिचान की है । उन्होंने किसानों के ज़मानों की देख-देख कर फहिरत तैयार की है । गाँव में जमींदार के साथ-साथ उभरने वाला बड़ा भू-स्वामी भी छोटे किसानों और मजदूरों का घातक शत्रु है । वह जमा भू-स्वामी मध्यम वर्ग की ओकात को अच्छल वर्ग की बनाने के लिए वह जमींदारों से साँठ-गाँठ कर किसानों के शोषक के रूप में उसकी बड़ी घातक भूमिका है । बाबा बटेसरनाथ में स्पष्टता गाँव के अन्दर जेनरायण झा और दुनाई पाठक इसी वर्ग के प्रतिनिधि हैं । बड़ा जमींदार इन्हें ही कवच के रूप में इस्तेमाल करता है । और जनता ^{के} तिहरे शोषक की नीति ओर तेज होती है । इस वर्ग की बढ़ती हुई स्थिति पर नागार्जुन ने कहा है --

दुनाई मैट्रिक फेल कर गया तब से कहीं बाहर नहीं गया। लोगोंने में फूट डालकर वह नया-नया प्रपंच रचने लगा। यह व्यवसाय उसके लिए बड़ा ही लाभकारी सिद्ध हुआ।----- पिछली कफा कितानों में उभार आई और जमींदार घबरा उठे। कश्चित्त वालों की पहली मिनस्ट्री का जमाना था। मगर उस संघर्ष से ज्यादा फाइदा किसे उठाया? इसी स्थिति ने उस आन्दोलन का सर्वाधिक लाभ हासिल किया। सोने के टुकड़ों-से पाँच बीघा धन हर छेत्त सिर्फ़ टाई सो नगद देकर दुनाई पाठक ने राजा बहादुर से लिखवा लिए। तीन पुरत की अपनी सारी कमाई लगाकर भी ऐसी जायदाद उसकी जितनी मामूली है-स्थित वाला भला कहीं पा सकेगा? ऐसा है यह जालिम। जैनारायन की भी जीभ अब काफी निकल आई है ----- चार वर्ष जमालपुर, छः वर्ष मोगलसराय और पच्चीस वर्ष इलाहाबाद रहकर जैनारायन ने रेलवे में काफी रकम बनाई। अब पेंशन क्या पारहा है। दुनाई पाठक की शार्गिरी कर रहा है। दोनों सुखी हैं, दोनों सम्पन्न हैं, दोनों के लहके स्पया पीट रहे हैं, पर छुँवर का पिल पाया है गधों ने। देख ली डीउठा है बेटा, ऐसी कुर्बाना करा रहे हैं अपनी, इनका नाम ले-लेकर लोग कितना धुंकेते हैं -।-----

डा० कुँवरपाल सिंह ने इस उभरते हुए ^{मुखामी-की} ग्रामीण भूमिका को कड़ी गहराई से प्रस्तुत किया है --

1- बाबा बटेसनाथ: पृ० १०- 13

"इस आधुनिकीकरण के फलस्वरूप देहातों में एक ऐसे वर्ग का विकास हुआ है जिसका परित्र कई दृष्टियों से नया है। इस नए उभरे वर्ग में भू-स्वामियों और पूँजीपति दोनों के सम्मिलित गुण दृष्टिगोचर होते हैं जिसमें पुराने जमींदारों की कुटिलता और पूँजीपति वर्ग की चतुराई और निर्भयता का मिश्रण है।"-1

अतः यह वर्ग जमींदारों का पिछलग्गू बनकर उनसे अपना मतलब निकालता रहा। ग्राम विकास की ओर इसका कोई ध्यान नहीं था। वह जमींदार के शोषण और स्वार्थ में सदैव साथ रहा। बाबा बटेसरनाथ के जैनरायन और दुनाई भी उन्हीं के परिवारी हैं ---

"पिछले वर्ष की बात है। जमींदारी उन्मूलन शुरू किया सरकार ने। जमींदार तो पहले से ही चौकस थे। अब उन्होंने सार्कजनिक उपयोग की भूमियों को छुके-छुके बेचना आरम्भ कर दिया। तालपी किसान दो-चार दस-पाँच किस गाँव में नहीं होते। दुनाई पाठक और जैनरायन झा ने राजा बडापुर से बरगद वाली यह जमीन और उधर वाली पुरानी पोखर कुवाप बन्दोबस्त में ले ली। गाँव वालों को मालूम हुआ तो वे क्रोध और घृणा से सुलगने लगे ----- गाँव के दो तीन जवान थाना-अदालत कचहरी से लेकर काग्रेस कमेटी असेम्बली पार्लियामेण्ट के प्रभुओं तक दौड़ धूम करने लगे।"-2

1- डा० कुँवरपास सिंह: हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना: ५०- 155

2- बाबा बटेसरनाथ: ५० सौ०- 7

बाबा बट इस अन्याय को संघर्ष के माध्यम से दृष्टत करना चाहते हैं । ये आगामी भविष्य का संकेत देते हुए जैकसुन से कहते हैं ---

"भविष्य तेरे जैसे लकड़ों के हाथों में है--- आज के ये राजा बहादुर सार्वजनिक उपयोग की भूमि पोखर, परागाह, शमशान कौरह घोरों की तरह घुमके-घुमके बेच रहे हैं । इतना बड़ा अन्याय अब दुनिया यों ही बरदाश्त कर लेगी बेटा । नहीं रे हरगिज नहीं"।

अतः बटेश्वर की प्रेरणा से जैकसुन और जीवनाथ आदि स्पष्टली के युवक जैनरायन झा और दुनाई पाठक के खिलाफ जिहाद छेड़ देते हैं । यद्यपि इन पर एक बीडम चमार को जिसे इन्हीं हत्यारों ने मारा था बूठा मुकद्दमा चलकर जेल भेज देते हैं परन्तु उससे ग्रामीण घेतना पर कोई असर नहीं पड़ता । एक ओर उनकी ^{जमानत} जमानत की तैयारी है तो दूसरी ओर बट वृक्ष को बचाने के लिए प्रयत्नशील युवा वर्ग तैयार हो रहा है --

"मर्द छु नहीं बैठे थे । एक तरफ हाजतियों की जमानत के लिए दोड़ छूट गयी थी, दूसरी तरफ बेवजली के खिलाफ प्रतिरोध- आन्दोलन संगठित हो रहा था । ऊपर ऊपर मामला ठन्डा दीखता था मगर अन्दर ही अन्दर दोनों ओर संघर्ष की तैयारियाँ पाहु थी ।" 2

अन्त में ज्ञानाथ जैनरायन और पाठक को पोखरवाली जमीन पर हल ही नहीं चलने देता जहाँ पूरे गाँव के दबे हुए लोग उसे समर्थन देते हैं । सभी लोग उसका समर्थन करते हैं --

1- बाबा बटेश्वरनाथ: पृष्ठ सं०- 143

2- वही पृ० सं०- 113

"जोरों की आवाज आयी उसी भीड़ के अन्दर से । क्यानाथ ने देखा : सभी तरह के लोग हैं इनमें पण्डित शास्त्रिणाथ ठाकुर हैं, हाजी करीम बक्श हैं, मोसम्मात बुनिया है, अहीरों की बिरादरी के गोन्ड महतो और सहदेव राजत हैं, भुदू पासवान है, किशय बहादुर सिंह तिसोदिया है, जहद अली जोलहा है" टोलिया है अचक्यमिन मोसम्मात है— कौन नहीं है ।"

इस तरह किसानों को पहली सफलता जालिम जमींदार के खिलाफ संघर्ष से मिलती है । वे पोखर को उनके कुंजल से निकलवाकर गाँव की सार्वजनिक सम्पत्ति बना देते हैं ।

वे गाँव में किसान सभा और नौजवान संघ बनाकर गाँव की छुआछाली बढ़ा देते हैं । और गाँवों में रजबांध पर नयी पेतना के रूप में बरगद का नया पोथा ला कर लगा दिया जाता है । ग्राम सभाज की छुआछाली के प्रतीक के रूप में पताका के ऊपर सिंदूरी अक्षरों में—

स्वाधीनता

क्रान्ति

प्रगति

लिखकर किसानों का नया जीवन प्रारंभ होता है ।

"कृष के डेटे" उपन्यास में मसुओं के जीवन में क्रान्ति का समवेत स्वर है । देपुरा के मेथिल जमींदार मलाही गौड़ियारी पर शासन करते आये हैं । परन्तु जमींदारी खत्म होने पर अब वे लान या मात गुजारी फसल से प्रथक कर दिये जाते हैं । प्राप्त विरासत में उन्हें कुछ मिलता है —

“व्यक्तिगत जोर की जमीन, बाग बगीचे, कुआँ चमचा और पोखर देवी देवता के नाम चादी हुई जायदाद, चरगाएँ फरती फरती नदियों के पाट और तटवर्ती भूमि जैसी कुछेक अच्छे सम्पत्तियों के मामले में जमींदारी उन्मूलन कानून ने ब्रह्मविषों को खुली दृष्ट दे दी। नतीजा यह हुआ कि पोखरों और चरगाहों को वे छुपके-छुपके बचने लगे - अगले महीने खोपड़ी जो निकले सो लाभ”।

गढ़पोखर मछुओं के छुट्टे का कोर है। मछली व्यवसाय से वे अपनी जिन्दगी बसर करते हैं। उसका पूरा भविष्य गरोखर के साथ ही जुड़ा हुआ है। मोहन माझी की तमाम आगामी आशाएँ और ग्राम विकास की योजनाएँ गरोखर से जुड़ी हैं वह यहाँ खेती-गोदियारी में अपनी कत्तना को साकार करना चाहता है।

“मोहन माझी के स्वप्न थे कि गढ़ पोखर का जीर्णोद्धार होना आगे चलकर और तब मलाही गोदियारी के ये ग्रामांचल मछली पालन व्यवसाय का आधुनिकतम केन्द्र हो जायेंगे। वैज्ञानिक प्रणाली से यहाँ मछलियाँ पाली जायेंगी। पूत से लेकर जेठ तक प्रति वर्ष अच्छी से अच्छी मछलियाँ अधिक से अधिक परिमाण में हम निकाल सकेंगे। एक-एक सीजन में पचास-पचास हजार रुपये तक की आय होगी। मलाही गोदियारी का एक-एक परिवार गरोखर की बखीलत छुटी सम्पन्न हो जायेगा। विद्यालय जलाशय की इन कछारों में हम किस्म-किस्म के कमलों और कृषिपौधों की खेती करेंगे। पक्की ऊँची भिंडों पर इकतला से नटोरियम बेगा फिर पूरपास के विद्यार्थी आ आकर यहाँ छुट्टियाँ मनाया करेंगे।”

परन्तु दूर क्षुरा में बैठा जमींदार मोहन माझी के इस सपने पर पानी फेर देता है वह गरोखर बेचकर उसकी रकम खजम कर जाता है। जब इसकी खबर मछुआ टोले में लगती है तो वे क्रोध से तूफान उठते हैं। उनके जीवन और मरण का प्रश्न गरोखर ही बल करता आया है। अतः गरोखर का बिकना वे कभी भी स्वीकार नहीं करते वे संघर्ष के लिए उतारु हैं —

1- कृष्ण के छे: पृ० सं०- ३१ 29

2. पृ० सं० 30

“यह पानी सब से हमारा रहा है, किसी भी हासत में हम इसे छोड़ नहीं सकते । पानी और माटी न कभी बिके हैं, न कभी बिकीं । गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं, वह तो हमारे शरीर का लहू है । जिन्दगी का निषोड है ।”

वास्तव में उनकी पूरी जिन्दगी इसी गरोखर पर आधारित थी जाड़े गरमी और बरसात तथा ठिठुरती सर्दी के दिन इसी गरोखर से कटते थे । महुस अपनी रोजी पर घोट आती देखकर तिलमिला उठते हैं । वे समवेत स्वर में गरोखर को न छोड़ने का निर्णय लेते हैं ।

मोहन मंझी स्वतंत्रता आन्दोलन में कई बार जेल जा चुका है । वह संघर्ष के माध्यम से अन्याय का विरोध करना जानता है । अतः वह किसी भी कीमत पर गरोखर को मछरों के हाथ से नहीं निकलने देना चाहता है । वह किसान सभा का भी समर्थन मछुआ संघ को दिलाता है । वह अनावश्यक तकरार न लेकर कानूनी और अधिकारिक बातें कर गढ़पोखर पर मछरों का हुक्मती हक मानते हैं किसान सभा का अधिवेशन बुलाकर मछरों की पीठ पकता कर दी जाती है —

“एक कूरे प्रस्ताव द्वारा गढ़पोखर के तथाकथित नए मालिकों को यानी सतधरा के जमींदारों को सम्मेलन में आगाह किया था वे युग की आवाज को अनसुनी न करें, मत्ताही गोंदियारी के मछुओं को गरोखर से मछीतपों निकालने के हुक्मती हक से सीपित करने की कोश उनकी सापिण्ड कामयाब नहीं

होगी । रोणी रोटी के अपने साधनों की रक्षा के लिए संघर्ष करने वाले मधुर असहाय नहीं हैं, उन्हें आम किसानों और खेत मजदूरों का सक्रिय समर्थन प्राप्त होगा।-----

यद्यपि जालिम जमींदार की जड़े छड़ी गहरी थी उनके साथ शासक वर्ग का पुराना नेताश्रुपटना, दिल्ली और पिला केन्द्र लहेरिया सराय के बड़े अधिकारियों से उनकी मिली भात थी, पुलिस इन्स्पेक्टर और अंपला-धिकारी को उन्होंने जमकर लालच दिया था । परन्तु जन आक्रोश के सामने सब कुछ धराशायी हो जाता है । मछरे अब आजाद भारत के मछरे हैं वे जमींदार के नाम तक से भी घिड़ते हैं ---

गढ़पोखर के वास्तविक नर मालिक तो हमारी सरकार थी-----
जमींदारी उन्मूलन के बाद देपुरा वालों का कोई हक नहीं रह गया था मछपोखर पर । यह विधाल जन सम्पत्ति अब जनता की थी ।²

ये शासन के आतंक से घिड़ते हैं । मिलिटरी के डराने धमकाने तक से नहीं मानते । मधुरी सुरकुन की बेटी, ^{बेटी} ~~बेटी~~ नहीं बेटा है वह भी मछरों के इस संघर्ष में बूझ पड़ती है । वह आगे बढ़कर गिरफ्तारी देती है परन्तु अपना गढ़-पोखर छोड़ने के लिए तैयार नहीं मछुआ संगठन अब किसी की परवाह नहीं करेगा--

1- कृष्ण के बेटे: पृ० सं०- 107

2- बही: पृ० सं०- 113-114

“मधुओं का समूह तय कर चुका था कि किसी भी स्थिति में छुटने नहीं देंगे। तत्परा पालों का नया प्रभुत्व गैर कानूनी है, सर्वथा गलत है, वे गढ़पोखर की सीमाओं के अन्दर उन्हें घुसने नहीं देंगे।”¹

और पूरा का पूरा मधुआ संघ मधुरी के साथ गिरफ्तारी देता है---

“मधुरी ने आगे बढ़कर नकछेदी का हाथ पकड़ा और खींचती हुई बोली— काका देखते क्या हो ? चलो, हम ट्रक पर सवार हो जायें आप ही चलकर----- पल भर की देर नहीं हुई कि कुर्ती से जाकर वह पुलिस-वान पर सवार हो गई ----- मंगल उछलकर चढ़ गया फिर जलेसर और कन्हार्य।”²

मधुरी संघर्ष की घेतापनी देती हुई बैच से उठकर खड़ी हो जाती है और पुलिस वान की लटकती जंजीर पकड़कर हाथ घुमाती हुई जनक्रान्ति का नारा लगाती हुई।

----- इन्क़लाब जिन्दाबाद

मधुआ संघ जिन्दाबाद----- एक की लड़ाई----- जीतेगी। जीतेगी। गढ़पोखर हमारा है हमारा है।----- मजदूरों को एक रिखा देती है। डाठ मेघ उसकी इसी भूमिका को नारी चेतना का क्रान्तिकारी तोपान मानते हैं ---

1- कृष्ण के डेटे : पृ० सं०- 114

2- वही पृ० सं०- 115

“वह सच्ची क्रांति की होती है और सुरक्षा के लिए तो वह लड़की न होकर लड़का है— नैतिकता की जंग लगी जमीनों को तोड़ देने के बाद उसका सामाजिक व्यक्तित्व उभरता है। वह बाद पीढ़ित केम्य में लड़कियों के साथ जन सेवा करती है। छद्मा संघ की सर्वाधिक साहसी होकर सबसे पहले हँसते हुए गिरफ्तार होती है।”

इस तरह मछुआ संगठन अपने गरीबों के लिए जमींदार के सामने खिंच नहीं डालता। वह गिडगिडाकर रिरियाकर नहीं अपितु सीना तानकर गिरफ्तार होता हुआ उस पर अपना पुष्टी हक कायम करता है। यह स्वतंत्र भारत के निम्नकर्मीय समाज में आई अभूतपूर्व घटना है। उन्होंने अपने अधिकार और साहस को पहचान कर यह कदम रखा है।

पूँजीपति और मजदूर संघर्ष

पूँजीपति का आर्थिक स्तर मजदूर की खून पसीने की कमाई पर फलता फूलता है। मजदूर दिन रात कड़ी मेहनत करके उसके कल-कारखानों और उद्योगों तथा क्षेत्रों में काम करता हुआ वो खून की रोटी के लिए हर रोज खटता रहता है। लेकिन संयोग है कि उसके साथ प्रतिदिन अमानवीय घटनाएँ घटती रहती हैं। मालिक लोगों की फटकार से उसकी जिन्दगी की परिवारवा होती है। कर्ष, मछुआ और बेकारी उसकी कमर तोड़ तोड़कर उसे अधरार कर देती है।

परन्तु स्वतंत्रता के बाद देश में उन्हें एक वैपारिक मंडल मजदूर यूनियन के नाम से मिला है । ये मालिक अथवा पूँजीपति के श्रासकीय हथकण्डे का मुकाबला करने के लिए अपने संगठन का सहारा लेते हैं । छड़ताल, अमान और धरनों के माध्यम से वे अपनी मजदूरी और बेहतर हालत के अधिकार से वे अपनी मजदूरी के लिए कल-कारखाने-दारों से लड़ते हैं । मार्क्स और लेनिन आज उनके लिए अंधे में दीपक की तरह हैं जिनके माध्यम से वे अपना रास्ता तय करते हैं ।

नागार्जुन^१ मजदूरों के झोझ की ज़हानी केत और बाजारों में अधिक दिखार् है । ऊँच और गुलामी की लोटे में लगा मजदूर गाँव में बड़े भू-स्वामी और जमींदार के यहाँ जाता है तथा मँछवाई और बेकारी की मार खाकर वह शहर में कारखाने अथवा दुकानों पर मारा मारा फिरता है ।

केत मजदूर अपने मालिक के यहाँ होती ज़िस्ती का काम कर अपनी दरगुजर करते हैं ।

“बसफनमा” उपन्यास के सभी मजदूर केत मजदूर, भूमिहीन और ऊँच की लोटे से मारे हुए हैं । वे अपना पेट भरने के लिए मालिक लोगों की हथोड़ियों में पीटी-पर पीटी से लगे होते जा रहे हैं । उन्हें दिन रात अमानवीय यातनाएँ मिलते हुए भी वे उसी परिवार से संयुक्त हैं उससे अलग होकर रहने में उनकी घर गुजर नहीं है । बसफनमा स्वयं कहता है —

“लेकिन मैं तो तिरु परवाहा ही नहीं था उनका बीछा [पुरतनी गुलाम] भी थी । मेरी छड़ी नत-नत और रोस-रोस पर उनका मोल्ती हक था । पोले पालने, सहाने गलाने और मारे पीटने का भी उन्हें पूरा हक था ।”^१

अन्य मजदूर, तीरीअम्मात, पूरुमिगिर, करीम बक्क, रामखिलोना
 त्यलात, मोसम्मात हमीदा बेस अखुस हूदु फमार, कुन्ती, मनिधर पाधा
 आदि ऐसे ही मजदूर हैं जोकि मालिक लोगों के यहाँ मजदूरी कर पेट भरते
 हैं । क्योंकि बलवनमा के गाँव में कल-कारखाने नहीं है इसीलिए उनका श्रम
 खेती पर आधारित है । वे यहाँ अपनी बेहतर जिन्दगी के लिए किसान सभा
 का सँघा देकर जमींदारों के खिलाफ संघर्ष करते हैं । उनकी असल समस्या
 भूमिहीनत्व है । अतः वे इस चेतना के साथ "जमीन किसी जोते बोस उसकी"
 आगे आते हैं ।

मजदूर के श्रम^{प्र}श्रम में शोषण कैसे होता है यह बात "कृष्ण के बेटे"
 में अपने मुँह से आप बीती सुनाता है —

"भूमा फरही की पोटली बांधकर कोसी किनारे गया मैं इसीलिए
 कि वस रोज बांध की मजदूरी कर्गा, खाना खेवा निकल कर कम से कम अठारह
 आना-बीस आना रोज तो बचा ही लूँगा । पार छे घूम साथ के दाने पका
 चक्कर भूख को छगता रहा, फिर उष्क की छिपड़ी पलने लगी । पहली बार
 पित बाबू ने नाम लिखा, यह दूसरी बार नहीं मिला । दूसरे दिन जो मार्व
 काम करने आस दो रोज बाव उनका भी पता नहीं । मिट्टी काटते दोते बारह
 दिन बीत गय छवाम का भी करलन नहीं हुआ । उधार खाते पावल-वाल-नमक-
 हल्दी-मिर्ची ईधन केे वाला दूकानदार भला क्यों छोड़ने लका १ कुवात
 रखती, टोकरा रख लिया, धोती तक उतरवा ली । कमर में गमछा लपेटे दो दिन
 दो रात का भूखा मैं घर लोट आया हूँ।"

इस तरह के तमाम मजदूर नागार्जुन के यहाँ अपना स्वतंत्र संगठन न बनाकर किसान-सभा से जुड़कर अपने अधिकारों की माँग करते हैं वे समपेक्ष स्तर में अपने शोषकों की भर्त्सना कर अपनी बेहतर जिन्दगी के लिए आवाज उठाते हैं ।

"जमनिया का बाबा" के अन्दर कारखानेदार पूँजीपति और मजदूरों का सीधा टकराव देखने को मिलता है । चीनी के कारखाने में काम करने वाले मजदूर अपनी माँग तिरंगे झण्डे की बजाय लाल झण्डे के साथ मनवाते हैं ---

लाल झण्डा वाले जिद्दी होते हैं । झण्डा उठा ली तो परेशान कर दी, मिल वालों की नाक का पानी निकाल दी ।"

जमनिया मठ का बाबा चीनी के कारखाने के इन मजदूरों के संघर्ष को दाद देता है । वह देखता है कि संघर्ष के माध्यम से यह जेल में भी अपनी माँगें सरकार तक से मनवा लेते हैं । यह मजदूर सकृता का परिणाम है --

"चीनी के कारखाने में लाल झण्डा वालों ने हड़ताल कर दी है । पचास-पचास मजदूर पकड़े गए हैं । पिछली रात बड़ी देर तक नारे लगाते रहे । जेलर से लेकर मिनिस्टर तक को सुर्वा बनाया जाता रहा । नौजवानों के गले में जोर बहुत था, जेलर को आखिर झुकना पड़ा । हड़ताली हवालातियों की माँग जेलर को मंजूर करनी पड़ी । जमात में बड़ी ताकत होती है न ? और कहीं उसके पीछे पड़े लिखे समझदार लोगों की सूझ-बूझ भी हुई तो फिर क्या कहना ।"

1- जमनिया का बाबा: पृ०- 14

2- वही- पृ०- 14

वास्तव में मजदूर वर्ग को स्वस्थ दिशा सकित पाठिए वह इस पंद मुनाफाखोरों, शोषकों और ठगों की नाक में नक्का डाल दे । उसकी सक्ता को यदि छिण्डत न किया जाय तो मजदूर के बराबर दुनिया में किसी भी वर्ग की शक्ति नहीं है । जिस दिन यह ठर स्तर पर काम करना बन्द कर देगा दुनिया में बेकरी पैदा हो जायेगी । इसलिये उसे समस्त नेतृत्व की अभिलाषा है जोकि धीरे-धीरे उसके वर्ग में यह बात पनप रही है ।

राजनेता और उनकी अवसरवादिता

नागार्जुन ने वर्तमान राजनीति पर बड़े ही करारे वार किए हैं । सत्ता से पिपके लोगों को उन्होंने बड़े निष्क से देखा है । देश सेवा के नाम पर ये लोग सदैव ही परिवार की सेवा करते रहे । इनके लिए राष्ट्र इनकी विरादरी, प्रान्त इनका परिवार और देश इनका अपना घर बना है । आम आदमी और गरीब इनसे जिस आशा में अपना मत देकर आगे भ्रमता है ये उससे कभी लोटकर भी नहीं देखते ।

आजकल की राजनीति एक नाटक के रूप में बदल गई है । वह एक भेसा तीर्थराज प्रयाग है कि उससे छुडते ही सभी पाप झुल जाते हैं । जातिवाद और भाई भतीजावाद ने इसे और अधिक लोक प्रिय बनाया है ।

आजादी के पूर्व की स्थिति पर कलचनमा पूलवाह के अस्मबली पुनाय पर वह टिप्पणी करता है जोकि ऐतिहासिक है । नागार्जुन की यह दूरदर्शिता आज वास्तव में खरी उतरी है । जातिवाद में सिर से पैर तक डूबा हुआ

फूलबाबू असेम्बली का मेम्बर बन्ने के लिए कग्रेस का प्रत्याशी है । ^{इस स्थिति पर} बलधनमा क्षेत्र के भाविष्य के बारे में अपनी भाविष्यवाणी पहले ही कर देता है —

"फूलबाबू भी मेम्बरी के लिए छड़े होंगे, कग्रेस इसी इलाके के लोगों से भोट दिलवाकर फूल बाबू को असेम्बली का मेम्बर बनाना चाहती है ।

----- मेम्बर बन चुकने पर हमारी छोटी मलिकाइन के यही भतीजाबाबू मिनिस्टर भी हो जाएँ तब तो हुआ। भूपाल के बाप रिलीफ फण्ड का स्पेया लेकर यह बाबू साहब हमारी बस्ती में जैसी खेरात बाँट गए थे, तीसरे साल तो तुम्हें बता ही चुका हूँ भयन, मेरे मेम्बर से तो हमारे इलाके का बंटाधार हो जायेगा, पानी में आग लग जायेगी"।-----

यह वह कग्रेसी परिवार है जिसे कोई भी रेब नहीं छूटा । गरीब मजदूरों का रहस्य यह उन्हीं का गता रेतता रहा ।

"कुंभीपाठ" में मिनिस्टर के क्परासी का कथन मंत्रियों के तमाम कुकर्मों का उद्घाटन एक ही सत्र में करता है । क्परासी दिन रात अपनी अंखों से बंगले में होने वाले अनेक कार्यों की जानकारी रखकर ही यह बात कहता है —

"अभी तुम बच्चा हो, क्परासी मुस्कराया, "अरे इन्हीं कोठियों के अंदर तो अन्याय पनाह लेता है आकर । सरकार अभी इन्हीं कोठियों और बंगलों में केव है, उसे तुम तक पहुँचने में दस बीस वर्ष लग जायेंगे अभी ।"-2

1 - बलधनमा- पृ० सं०- 181

2 - कुंभीपाठ पृ० सं०- 38

नागार्जुन ने आजादी से पहले और आजादी के बाद की नेताओं की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने राजनीति के खिलाड़ियों की भावना को बड़े करीने से अभिव्यक्त किया है ---

"15 अगस्त" 47 से पहले का वह राजनीतिक मैदान बहुत बदल गया है । दायरे बदल गए हैं । बोली बदल गई है । क़ूबारा बदल गया है । खिलाड़ियों की नीयत बदल गई है ----- पहले वाला वह लक्ष्य जाने किधर ओझल हो गया ? ----- उन दिनों राजनीतिक मैदान बिल्कुल खाली था ----- और आज ? खाइयाँ हैं, टीले हैं, बालू हैं, दल दल है, दरारें हैं, ज़हरीली घास है, कटीली झाड़ू झाड़ू हैं" ----- महा-पुरुषों का साथ देते रहोगे तो भौतिक लाभ जरूर होगा ।"

नागार्जुन का "अभिर्भक्" उपन्यास तो आधुनिक राजनीति का प्रमाणिक वस्तुत्व है । भ्रष्ट मंत्री सत्ता से प्यार के लिए क्या नहीं करता, भ्रष्ट मंत्री से प्यार के लिए चापलूस कौन सी कसर बाकी नहीं छोड़ते यह इस उपन्यास में देखा जा सकता है । मास मंत्री बाबू नत्थीति सिंह की हीरक पर्यती में उन्हें अभिर्भक् ग्रन्थ में करने वाली समिति के तमाम मेंबर छटे हुए घाघ हैं जिन्होंने भ्रष्टाचार करने में कोई भी कसर उठाकर नहीं छोड़ी है । सभी व्यक्ति नैतिक अनीतिक ~~सब तत्त्वज्ञान~~ ~~इसुओं~~ के कर्मों में लिप्त हैं ।

अतः आम आदमी इन तत्त्वज्ञान डाकूओं की गिरफ्त में ही है उसे कहीं भी पैर नहीं मिल रहा है । "बाबा बटेसरनाथ" में क्यानाथ के आजादी और नेताओं के बारे में सब कहता है ---

"आजादी "छि" आजादी मिली है हमारे उग्रमोहन बाबू को,
 कुलानंद दास को----- कांग्रेस की टिकट पर जो भी चुने गए हैं उन्हें मिली
 है आजादी । मिनिस्टर्स को तो और जीव कर्ष की आजादी मिली है ।
 ----- राजनीति गरीबों और मूर्खों के लिए नहीं हुआ करती वह तो
 खाते पीते स्थानों की चोपड़ है ।"

इस प्रकार साफ जाहिर होता है कि राजनीति का आधार दिन
 पर दिन बदलता जा रहा है । आज की राजनीति वास्तव में ही बड़े लोगों
 की रज्ज की तरह है । नेता लोग जनता को झ्र में डालने के लिए चुनावों
 के समय बड़े जोर शोर से कार्यक्रम और योजनाएँ पेश करते हैं । लेकिन उनके
 वर्षात चुनाव जीत जाने के बाद फिर शायद कभी नहीं होते । भारतीय राज-
 नीति पर अवसरवादिता पूरी तरह हावी है ।

सरकारी कर्मचारी और उनकी सार्वजनिक भूमिका

प्रशासनिक कार्यों में सरकारी कर्मचारियों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका
 होती है । देश को बेहतर प्रशासन देने अथवा बदतर शासन करने में इन लोगों
 का सबसे अधिक उत्तरदायित्व होता है । नेता और मंत्री केवल अस्थायी सरकार
 के नियामक होते हैं । नीति निर्धारण और कार्यान्वयन में कर्मचारियों का ही
 बड़ा योगदान होता है ।

सरकारी अफसर सरकारी प्रतीष्ठानों से जुड़े जाते हैं। वे जनता को स्वच्छ प्रशासन देने के लिए सरकार से धन प्राप्त करते हैं। दरोगा एसपी० सिपाही आदि पुलिस विभाग के लोग होते हैं तो क्लर्क, एडी० ओ० आदि प्रशासन के लोग। परन्तु इनका कार्य व्यापार बड़ा ही दिलचस्प होता है। वे सदैव अपराधी को सजा देने के बजाय उसकी खूब मदद करते हैं। पुलिस विरासत से डकैतों का भाग जाना जेल के अन्दर से कैदियों की फरारी उनके अकर्मण्यता का ही परिणाम है। ऐसे वालों की पीठ इन्हीं लोगों से भारी रहती है। गरीब और सताया हुआ व्यक्ति न्याय की तलाश में जब इनके पास पहुँचता है तो उसे लात जूते गाली गलौज के सिवाय और कुछ नहीं मिलता। उसके अपराध को लिखता तो दूर रहा उसकी सूरत तक उन्हें देखने में बुरी लगती है। इस रहस्य के पीछे उनकी बिगड़ी हुई नीयत है। उन्हें मुफ्त का धन चाँदिय, काम पिपासा शान्त करने के लिए बट्टा और बीटियाँ चाँदिय। साथी सव्यसायी ने पुलिस के बारे में कहा है ---

“सरकारी अफसरों और पुलिस के झूठ होने में आम जनता के लिए न्याय को भी अक्षत बना दिया है। स्वयं के अलावा पुलिस द्वारा बलात्कार की घटनाएँ भी बढ़ती जा रही हैं।”

यह वास्तविकता है। दैनिक पत्रों का मुख पृष्ठ लगभग इन्हीं रंगे तस्वीरों के कूनी थकों से भरा रहता है। रेप, मर्डर, डकैती, आदि आज की पत्रकारिता में प्रमुख है।

"बलपनमा" में नागार्जुन ने अपनी टिप्पणियों से सरकारी कर्मचारियों की सार्वजनिक भूमिका पर प्रकाश डाला है। बालपद की बहिन रेवनी के साथ मातृक द्वारा किया गया बलात्कार का असफल प्रयास बालपद के विरोध करने पर उसे मातृक झूठी रिपोर्ट लिखाकर पुलिस के युगल में फंसा देता है। बलपनमा गरीब है परन्तु पुलिस की दृष्टि में वह अपराधी है। उसकी सही बात अब धाने में नहीं सुनी जायेगी। अतः दरोगा के बारे में न्याय की आशा पर उसका यह दृष्टिकोण भारत की पुलिस व्यवस्था का सही चित्रण प्रस्तुत कर रहा है —

दरोगा तो नहीं मानेगा। या तो घूस लेगा या फिर बात को आगे बढ़ा देगा। इससे मेरा निस्तार कैसे होगा ?¹

यह अकेले बलपनमा की छपटाहट नहीं है बल्कि उन लाखों लाख देहाती गरीब और ईमानदार लोगों की छपटाहट है जो आये दिन रोखाना के-कसूर, जेलों में घूस दिए जाते हैं और असली अपराधी इस सरकारी स्वामियों के साथ बैठकर होटलों में हडिडियाँ खाते हैं। यह दैनिक क्रम है।

अब यह सर्वमान्य सत्य है कि पुलिस धाना बड़े लोगों का ही होता है। बड़े लोगों द्वारा किया गया जुल्म उनकी सख्त स्वीकृति है। वे हर तरह से उन्हीं लोगों की सुरक्षा करते हैं। नागार्जुन ने मछपूरा के डान बहादुर सादुल्ला खाँ के जुल्म में इसी पुलिस की पूरी तात्पर्य का संकेत दिया है —

"उस बाल्म कर्मचार का हुकाबता अकेले तो कोई नहीं कर सकता था ? उसकी पीठ पर धाने के दरोगा साहब थे, दरभंगा के क्लर्क साहब थे।"²

1- बलपनमा: पृ० सं०- 91

2- वही: पृ० सं०- 153

अतः इस नौकर शाही के परिवर्तों के बारे में बाबा नागार्जुन की यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है ---

"जमींदार और सरकारी अफसर कुर्बान ठहरे, उनको बुद्धिष्ठ पस्त नहीं कर सकते भइया ।"

"कृष्ण के छे" के अन्तर्गत रिश्वत और घोटाले में संलग्न सरकारी कर्मचारी हैं जोकि लाखों का मात ठकार रहे हैं । कोसी बंध पर सरकारी व्यय के दुरुपयोग पर छुरछुर कटता जा रहा है ---

"हे भगवान केसा जमाना आया है । पच्चीस करोड़ पचास करोड़ खपड़ा लगाकर त्स पन्द्रह साल में कोसी बांध तैयार होगी, हजारों का माहवारी चारा पाने वाले पचासों आफीसर जहाल हूए हैं । लाखों के ठेके मिले हैं । ठेकेदारों को । करोड़ों का सामान वी सूर में लाकर अटा दिया गया है । रात दिन हवाई जहाज कोसी इलाके में मंडराते रहते हैं । पानी की तरह रकम खटाई जा रही है ----- येसा अनर्थ तो न कभी सुना, न देखा, हे भगवान सृष्टि के इन्हीं तौर तरीकों में तुम्हें अपने विधातापन का स्वाद मितता है ? बिन्दु हितकारी समाज नहीं पैट हितकारी समाज ।
छी छी छी छी"-----

"बाबा जेसरनाथ" में पुरित कर्मचारी दुनाई पाठक और जेनरायन के यहाँ उनकी जानमात की रक्षा करने लिये छफतो चरते हैं ।³

1- कलपनमा: पृ० सं०- 62

2- कृष्ण के छे : पृ० सं०- 41

3- बाबा जेसरनाथ: पृ० सं०- 101

"नई पौध" के अन्तर्गत गाँव का मुखिया तिरंगे झण्डे के नीचे बैठकर कंट्रीस रेट की दुकान में जमकर ब्लैक करता है ।¹ जमनिया का बाबा का दारोगा तो अबोध शिष्टा के कत्त को जिसे नरबलि का स्वांग रचाकर दिया गया था । मठ की गौरी दासिन के साथ चार दिन चार रात सोकर रक्खी की टोकरी में डाल देता है ।

यह है भारतीय प्रजासत्त के अक्षमकरदारों का वीरत्र जिसके ऊपर नागार्जुन ने बड़ी गहरी घृष्टि रखकर उसे उद्ध्यादित किया है । वास्तव में बाबा नागार्जुन के निष्कर्ष एक व्यवस्था को बनाने के लिए हैं । उनका टकराव एक नवीन चेतना को जन्म देने के लिए है । उनका पूरा का पूरा जर्म संघर्ष विशिष्ट प्रकार की समाज रचना के लिए है जिसमें अन्याय शोषण और कमन किस्ती भी छोटे से छोटे व्यक्ति के ऊपर न होने पायें ।

XXXX

पंचम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन संबंधी उपन्यास साहित्य में हिन्दी जगत के महत्वपूर्ण एवं अनदेखे विषयों को राष्ट्रीय चेतना की धारा से जोड़कर देखने का प्रयत्न मिलता है। इस उपन्यासों के अन्तर्गत भारत के वे क्षेत्र जहाँ स्वतंत्रता की किरण का ठीकठा स्वरूप ही है उन्हें पूर्ण प्रकाशित करने का लक्ष्य निरूपित किया है। आज के बदलते हुए भौतिक युग में परिवर्तन की व्यापकता ने जिस प्रकार जीवन मूल्यों की काया पलट की है वह ग्रामांचलों में भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। अतः समूचे आंचालिक परिवेश को समझने समझाने के लिए वहाँ की विशिष्ट भाषा बोली रीति-रिवाज, सामाजिक परिवेष्टित परंपराओं का निरूपण, सांस्कृतिक चेतना एवं आधुनिक शिक्षा से उत्पन्न नवीन जीवन बोध, आंचालिक साहित्य की विशिष्टता है। इन सभी बातों को नागार्जुन के सभी उपन्यासों के अंतर्गत विस्तार से चित्रित किया गया है। इनके उपन्यासों में वातावरण को साकार बनाकर अनेक कथा प्रसंगों को लेकर अंधल के बहुआयामी एवं बहुविस्मृत फलक लिए गए हैं। इस समूचे उपन्यास चिंतन में उन्होंने पुराने और नए के बीच की अंतर रेखा को स्वाभाविकता के साथ खींचा है।

नागार्जुन के उपन्यासों के अंतर्गत देखाती जीवन में ऐतिहासिक परिवर्तन की अनेकों विशाली परिलक्षित हैं। जैसा कि कहा जाता है कि भारत

का ग्रामीण जीवन संबंधी उपन्यास साहित्य अमेरिका के आधुनिक उपन्यासों के प्रभाव से हिन्दी में आया, नागार्जुन के उपन्यासों को पढ़ने पर यह बात निर्वृल सिद्ध होती है। उनके उपन्यास किसी भी विदेशी विचार की उपज न होकर समूचे भारतीय परिदृष्टि और उसकी हलचल, राजनीतिक दृष्टिकोण सामाजिक विषयों और सांस्कृतिक समझ का परिणाम है। उन्होंने अपने उपन्यासों में समूचे देश को ला उड़ा दिया है जिसमें किस्म किस्म की संगतियाँ-विस्ंगतियाँ साफ-साफ दिखाई देती हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों को ऐतिहासिक दृष्टि से पढ़ने पर ज्ञात होता है कि वे मात्र हिन्दी साहित्य में किसी विशेष परंपरा के अनुसरण में नहीं हैं, नहीं उनमें किसी दृष्टि विशेष का आग्रह है। उनके तमाम उपन्यासों के स्रोत ज्ञान के अन्य विषयों से मेल खाते हैं। राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान जैसे अध्ययन के विषय उनके उपन्यासों की परीधि के अन्तर्गत आते हैं।

नागार्जुन की आधुनिकता किसी सीमा में बंधी हुई नहीं है। उन्होंने जंगल को मात्र अध्ययन और उसके संकर्म की दृष्टि से लिया है। उनका आधुनिक जीवन बहुत ही व्यापक एवं अंतर्गत परक है। यह स्पष्ट है कि भारत का कुटीर व्यवसाय विषय में सर्वोत्तम माना जाता था। उसके मास की अठमियत विषय में सर्वाधिक थी। परन्तु योरोप की औद्योगिक क्रांति

ते यह व्यवसाय पूर्ण रूप से नष्ट होता चला गया। कृषि समय में अधिक काम, स्थान की पूरी का सिमटना और हाथ का काम मशीन में बदल जाने के कारण भारत की दस्तकारी पूरी तरह नष्ट हो गई। भारत दिन पर दिन योरोप की व्यावसायिक कंपनियों के प्रभाव में आता गया। परन्तु सबसे अधिक भारत के आर्थिक जीवन को नष्ट करने में ब्रिटेन की ईस्ट इंडिया कंपनी का हाथ रहा जिसने भारत का आर्थिक ढाँचा पूरी तरह तोड़ कर रख दिया। और सबसे अधिक भारत के पतन की शुरुआत तब हुई जब यह भारत के प्रशासक के रूप में आई। इस कंपनी ने भारत का आर्थिक ढोहन बहुत बुरी तरह से किया। परिणाम स्वरूप देहात का अस्तकार बेकार होकर कर्ज की लपेट में आता गया। इस बेकारी, और कर्ज, गुलामी ने उसे अँग्रेजों के संरक्षक और देखी भेड़ियों, जमींदारों के यहाँ अनचाहे समझौते करने पड़े। उसकी बहिन बेटी को अर्थाभाव में घर से बाहर निकलना पड़ा और उन्हें भी अनेकों अनैतिक समझौतों के बीच पिसना पड़ा।

परन्तु आजादी के बाद ग्रामीण जीवन की यह जहालत भरी प्रिकंगी बेहतर जीवन के लिए फिर से करवट बदलने लगी है। अपने अधिकार और जीवन की सुरक्षा के लिए देहाती बन्धुआ मजदूरों, आर्थिक और सामाजिक शोषण के खिलाफ संघर्ष पर उतारू है। नागार्जुन ने इस समूचे ग्रामीण फलक को अपनी रचनाओं में समेटा है।

नागार्जुन के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उनके यथार्थपरक दृष्टिकोण की है। कबीर, और निराला के बाद वे हिन्दी साहित्य के अकेले रचनाकार हैं जिन्होंने क्लेश दंग से जिना लाग-स्लेट और लाभ-लोभ के साहित्य के पोरों पर खड़े होकर अनियमितताओं, अस्मानताओं और विस्मृतियों पर प्रहार किया है उन्हें कुरेद कुरेद कर दूँटा है। गाँव के गली गलियारों से लेकर शहर की गंगन घुम्बी इमारतों और उनके पीछे चलने वाली गंदी नालों पर बसी झोपड़ी और झुग्गी वाली जिन्दगी को नागार्जुन ने पैदल चलकर स्वयं देखा है। इसी "देखने" के आधार पर ही उनका "अन्दाजे क्या" इतना तीखा और धारदार हो सका है। बचपन से ही यथार्थ की तलाश में घर का परित्याग, सत्य की खोज में देश-विदेश की यात्राएँ, वास्तविकता के लिये अपने और पराए की जाँच नागार्जुन ने बड़ी गंभीरता से की है।

नागार्जुन कालगाव अपने प्रारंभिक जीवन से ही निम्न और उपेक्षित वर्ग से रहा है। यही कारण है कि उनकी रचना में निम्न वर्ग और उपेक्षित वर्ग के लोग ही नायकत्व की भूमिका निभाते हैं। स्वयं उच्चवर्गीय ब्राह्मण होते हुए भी उन्होंने कहीं भी ब्राह्मणवाद का आरोपण नहीं किया है। उल्टे इस वर्ग के अन्दर चलने और पनपने वाले दौंग, आहम्बर और इसकी पोपलीला को, व्यंग्यों, कटाक्षों और उपहासों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। नागार्जुन इस क्षेत्र में अकेले व्यक्ति हैं जिन्होंने इस परंपरा और

होटवावी समाज पर छे होकर चोट की है । परन्तु यह नागार्जुन का पुराग्रह ~~नहीं~~ नहीं है । उन्हें गरीब और शोषित ब्राह्मण और ब्राह्मणियों से बेहद सहानुभूति है— "बलयनमा" की फूफ मिसर की विधवा, "रतिनाथ की चाची" की गौरी, आदि पात्र ऐसे ही हैं । नागार्जुन ने सचियों से शोषित उपेक्षित और दीक्षित निम्न वर्ग को स्वाभिमान और बेहतर जीवन का रास्ता दिखाया है । वे उसके जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक के पड़ावों को बड़ी गंभीरता से निरूपित करते हैं । स्वतंत्र भारत में अछूतों को मिलने वाले अधिकारों को वे पूर्ण समर्थन देते हैं । जहाँ इसके विपरीत स्थिति होती है नागार्जुन वहाँ संघर्ष और जन चेतना को महत्व देते हैं और उसे अमलीजामा देकर उनकी बेहतर जिन्दगी के दरवाजे खोलते हैं । अपनी यात्राओं और मुकामों के दौरान स्वयं वे भी इन निम्न वर्गीय पात्रों से खूब हँस-हँस कर मिलते हैं और उनके साथ अपनी मीजल का सफ़र तय कर रहे हैं ।

नागार्जुन ने किसानों और मजदूरों के शोषण को मुक्त कराने के लिए जमींदारों और श्रमिकों से संघर्ष छेड़ा है । जमींदार द्वारा किए जाने वाले अत्याचार, कमजोर और शोषण की ऐतिहासिक परंपराओं को उन्होंने बड़ी बखूबी से दिखाते हुए उसकी "अंत" पर चोट की है । "जमींदारी उन्मुक्त" के बाद जमींदार की बदलती नीयत और ग्रामीण परिवेश में उसके द्वारा उत्पादित नवीन व्यवस्था को नागार्जुन व्यंग्यवाजों से देखते हैं ।

नागार्जुन ने इस वर्ग के ऐतिहासिक स्वरूप को प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता आन्दोलन में मतलबी भूमिका और छूठे लाभ वाले इस वर्ग की नत-नत की चतुराई को नागार्जुन ने "बलधनमा" "बाबा बटेसरनाथ" और वरुण के बेटे" में बड़ी गहराई के साथ प्रस्तुत किया है। इस वर्ग के लोगों का खेल-जाना, जुमाना भुगतना, सजा काटना देखा प्रेम का नाटक भर है अपितु यह वर्ग इस नकली खेल में अपना और अपने वर्ग का हित पोषक ही रहा। यह नागार्जुन ने ऐतिहासिक निर्णय अपनी औपन्यासिक रचनाओं में किया है। उन्होंने इस वर्ग की स्वतंत्रतापूर्व और स्वतंत्रता के बाद की दोनों भूमिकाओं को प्रस्तुत किया है।

आजादी के बाद गाँवों में जमींदार और किसान के बीच "नर भुस्वामी" की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। थोड़ा सा पट्टलिखकर सरकारी नौकरी से छुड़ने वाला तथा ज़रूर की आमदनी से बड़ी बड़ी जोत वाले छेत खरीदने वाला यह वर्ग आजादी के बाद पैदा हुआ है। इस वर्ग ने गाँव में नई चौधराहट और अधिकार सातसा में आज बड़ी जी तोड़ कोशिश की है। नागार्जुन ने इस वर्ग को "नई ओकात" वाला मानकर उसके संपूर्ण परि-देखा को चित्रित किया है। "बाबा बटेसरनाथ" के दुनाई पाठक और जय नारायण झा के रूप में नागार्जुन ने इस वर्ग के कुटिल चरित्र को प्रस्तुत किया है। यह विस्तृत वास्तविकता है कि आज प्रत्येक गाँव में यह चरित्र छुब पनप रहे हैं और मध्यम वर्ग की ओकात हासिल कर तमाम सुख-सुविधाओं को

अपनी ओर धीप रहे हैं । अपने बच्चों को व्याज के पैसे से पढ़ा लिखाकर उन्हें नौकरी मिल जाने पर इस कर्म ने गाँव में तिहरा लाभ किया है । एक तो छोटे किसान को कर्म देकर उसकी जमीन छीनी है । दूसरे पकड़ुवा व्याज से अपने धन को व्याज पर व्याज लगाकर खूब दुहराया तिराया है तो तीसरे गाँव में अपनी संतान को पढ़ा लिखाकर सामाजिक सम्मान तो हासिल किया ही है साथ ही गाँव की राजनीति को भी अपने स्वार्थ के लिए संघालित किया है । दूसरी ओर पारिवारिक सदस्य पढ़ लिखकर तमाम सरकारी सुविधाओं से लाभ ले रहे हैं और अपने घर को सीधे सीधे आधुनिकता से जोड़ने का भरपूर प्रयास किया है । अतः इस उभरे हुए नए भूस्वामी की नागार्जुन ने बड़ी अच्छी पहचान प्रस्तुत की है । उसकी घोपाल पर लगने वाली अनेकों सम्मानों की भीड़ को नागार्जुन में वरुण के बेटे, बाबा बटेसरनाथ, बलधनमा, और रतिनाथ की चाची, में स्थापित किया है । नागार्जुन ने इस कर्म को जमींदार से भी भयानक और कुटिल माना है क्योंकि देहात में आज बड़ी जोत वाले की बहुत इच्छा है उसने आधुनिकता का दामन पकड़ कर अपनी छेती किसमई का औद्योगिकीकरण किया है । अतः उसने तमाम अधिकार और सम्पन्नताएँ पैसे के बल पर गाँव में अपनी घोपाल की ऊँची चौकट पर हासिल की है । धाना, जलाक, कच्छरी और इलाकाई राजनीति में उसके प्रवेश से गाँव की जनता अपने आप ही उसकी हडबन्दी में आ गई है । नागार्जुन ने इस कर्म की एक ओर पारिवारिक विशेषता की ओर संकेत किया है वह है अपने स्वार्थ के लिए गाँव में पार्टी बन्दी का श्री गणेश । अपने

पिरोधीयों और खिलाफी लोगों को झूठे केसों, चोरी, कत्ल, आदि में फँसाकर उन्हें कोर्ट कचहरी के अहाते में सत्ता मारने का उसका यह कदम बड़ा ही भयानक और खतरनाक है। "बाबाबटेसर नाथ" में क्यानाथ और क्यानाथ इसी ओठे हथकण्डे के शिकार बनकर प्रस्तुत हुए हैं। बलचनमा को झूठे चोरी के केस में फँसा देना इस भूस्वामी की इसी चारित्रीक विशेषता को नागार्जुन ने आम जनता के समक्ष प्रस्तुत कर उसके पैतरो से बचने का संकेत दिया है।

नागार्जुन के सभी उपन्यासों में राजनीतिक संघर्ष की उनकी अपनी अनुभवी भूमिका है। ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन से लेकर आजादी मिलने तक के राजनीतिक वातावरण को समझने और प्रस्तुत करने में नागार्जुन ने एक कुशल, राजनीतिक का परिचय दिया है। ऐसे नागार्जुन स्वयं भी साम्यवादी विचारधारा से जुड़े हुए हैं। अतः उनकी राजनीतिक समझ और उसके निकर्ष बड़े ही प्रामाणिक हैं। राष्ट्रीय आन्दोलनों में कग्रिस और अन्य दलों द्वारा निभाई गई भूमिका के वे चरमवादी गवाह रहे हैं। अतः उनके उपन्यासों में आजादी से पहले और बाद की राजनीतिक स्थिति बड़ी साफ दिखाई देती है। "भानमती का पिटारा" वाली कग्रिसी राजनीति की उन्होंने अपने उपन्यासों में जमकर उसकी अवसरवादिता पर घोट की है। नागार्जुन राजनीति में गांधी जी से बहुत प्रभावित हैं परन्तु उनके द्वारा प्रतियोगित विद्वान्तों का उन्होंने विरोध किया है इसी तरह आजादी के के बाद वे पी० पी० का सम्पूर्ण प्रति में समर्थन तो करते हैं और खेल भी जाते

हैं लेकिन कुछ ही दिनों बाद उस स्थिति को "रंडी और भुइयों का खेल" बताकर अलग हो जाना उनके अखंड उत्पन्न अन्तर्विरोधों का सूचक भी है। क्योंकि अपनी ही बात को आगे बढ़ाकर मुकर जाना उनकी स्थिति को स्पष्ट करता है। राजनीतिकारों के बारे में नागार्जुन वर्तमान विस्मृति के लिए कांग्रेस को जिम्मेदार ठहराते हैं। जिस दंग से स्वतंत्रता संग्राम लड़ा गया— किसानों और मजदूर संगठनों ने उसमें सक्रिय भूमिका अदा की वहीं कांग्रेस और उसके रहनुमाओं ने समझौता परस्त राजनीति से उसके स्वरूप को धूमिल कर दिया। नागार्जुन ने "बलपनमा" और "बाबा बटेसर-नाथ" में इस स्थिति को साफ कर दिया है। "जिन्दगी भर स्टेट का पैसा पूँजा और अब पीढ़ी का" या "पूँलबाबू कांग्रेसी नेता का अपने पूँजा के यहाँ ठहरकर गाँव की भूपाल ग्रस्त जनता की निस्त तैयार करना कांग्रेस के अलमबरदारों की पारिवारिक और जातिवादी भूमिका को स्पष्ट करता है।

नागार्जुन ने नारी जीवन को अपने अन्यासों में एक नया और श्रद्धादीय प्रकाश दिया है। नारी जीवन में अनमेल विवाह के कारण घटने वाली घटनाओं की विस्मृतियों को आधुनिक शिक्षा के आलोक में व्याख्या कर उनका क्रान्तिकारी हल प्रस्तुत किया है। नारी जीवन में [वेधव्य] सबसे बड़ा अभिवाध होता है जिसके बड़े असंगत परिणाम सामने आते हैं। नारी पुरुष के अभाव में निराश्रित होकर अनचाहे और अनदेखे लोगों का शिकार होती है उसे पेट भरने के लिए कितने ही गलीच और कृत्रिम रास्तों से समझौतों और समर्पणों से गुजरना पड़ता है नागार्जुन ने इसे "रत्नाय की पापी", "नई पीढ़ी", "कुंजीपाक" और "जमानिया का बाबा" में मार्मिक

दंग से उजागर किया है। वे "रतिनाथ की चाची" में विधवा गोरी पर होने वाले सामाजिक अपमान और अस्थाय समर्पण से तिलमिलाकर नए समाज, नई पीढ़ी और नई चेतना को जन्म देते हैं और अन्धविश्वास को तोड़कर अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह और यहाँ तक कि गर्भवती विधवा विवाह को "दुष्प्रोचन", बाबा ब्रह्मचरनाथ, "उग्रतारा", "नई पीढ़ी" में मान्यता देकर इस समस्या का क्रान्तिकारी हल प्रस्तुत करते हैं। नागार्जुन का यह कदम अपने पूर्ववर्ती और समकालीन लेखकों यहाँ तक कि प्रेमचंद से भी अधिक क्रान्तिकारी है। प्रेमचंद के नारी पात्र समाज में उपेक्षा और धिक्कावट के शिकार रहे हैं। उन्हें कभी भी सामाजिक सम्मान नहीं मिला है परन्तु नागार्जुन का यह कदम वर्गीयहीन समाज की संरचना का सङ्घ सूचक है। उन्होंने विधवा समस्या का हल दीक्यानुसी समाज पर न छोड़कर नई पीढ़ी के चेतना संपन्न युवावर्ग पर छोड़ा है जोकि तमाम थोथी मान्यताओं पर प्रहार कर सक नए भारत के नए समाज की अभूतपूर्व रचना की बुनियाद डालते हैं। नागार्जुन ने विधवा समस्या का हल उसके पुनर्विवाह में ही माना है।

नागार्जुन के नारी पात्र भी आधुनिक चेतना से संपन्न हैं। वे सामाजिक विसंगतियों से ही नहीं अपितु राजनीतिक समस्याओं से भी संघर्ष करते हैं। "बलघनमा" में पूजन मिश्र की विधवा और मुसलमान तीरी अमात, विधवा चाची गोरी, "फरूक के बेटे" की मधुरी जमींदार और सरकार की अंतर्गत नीतियों के खिलाफ जमकर मोर्चा लेती है। बलघनमा में पूजन मिश्र

की विधवा का फलतः ढवाकर घर लाना, पापी का तारापकरण को किसान सभा के लिए स्वयं के ओढ़ने का कंबल तक यदि में देना और मधुरी का मसुओं की समस्याओं के संबंध में सीना तानकर गिरफ्तारी देना आधुनिक नारी की प्रगतिशील भूमिका को नागार्जुन ने ग्रामीण जीवन में प्रस्तुत कर नारी चेतना के विकास का दरवाजा खोलते हैं। यही नहीं "मधुरी" तो उनका ऐसा पात्र है जो समाज की ऊपर मान्यता पर कि पति परमेश्वर होता है" धुक्ती है और अपने सुसराल वालों के अमानवीय व्यवहार को ठुकराती हुई अपने पिता सुरकुन के यहाँ लड़के की तरह स्वाभिमान का जीवन बिताती है। एक और बात जो नागार्जुन के उपन्यासों में देखने को मिलती है वह है उनके नारी-संगठन की। नागार्जुन के नारी पात्र ईश्या, डाह, जलन आदि के मनोवैज्ञानिक शिकार नहीं है। वे विप्लव रूप से आधुनिक चेतना से सम्पन्न हैं जोकि अपने कर्ण की अन्य शोषित और पीड़ित महिलाओं की अपने परिवार का तबस्य बना-बनाकर सहायता करती हैं उन्हें स्वाभिमान और सामाजिक सम्मान देकर उसके परिवार की रक्षा करती हैं "उग्रतारा" में कामेश्वर की भाभी, और "कुंभीपाक" में कम्पाउन्डर की बीबी निर्मला एवं प्रोफेसर सदाशिव की पत्नी रंजना की भूमिका इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है। नागार्जुन चाहते हैं कि यही सम्मान हर शोषित और पीड़ित नारी को नारी के द्वारा दिया जाय जिससे उसके सामाजिक अस्तित्व की रक्षा हो सके।

नागार्जुन ने निम्नश्रेणीय पात्रों में नवीन चेतना का संचार किया है। आजादी के बाद बढ़ती हुई सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति में नागार्जुन ने उनके स्वाभिमान और सामाजिक सम्मान के लिए संघर्ष का नेतृत्व किया है। किसान-सभा और मजदूर-संघ जैसे संगठनों के माध्यम से उनकी मार्गें पूरे फैलित और शोषित वर्ग की मार्गों के साथ समवेत स्वर में मुखरित हुई हैं। स्वयं नागार्जुन किसी लाभ-लोभ अथवा आश्रय के कायल नहीं रहे इसी लिए उन्होंने अपने इन पारिवारिक पात्रों को हक की लड़ाई लड़ने की बारम्बार शिक्षा दी है उसे एक मंजिल तक पहुँचाया भी है। ग्रामीण जीवन में बलचनमा, कुरकुरन, मोहन मांझी, आदि के माध्यम से उन्होंने शोषित वर्ग को ऊपर उठाने का पूरा-प्रयास किया है।

सरकारी कर्मचारियों की भी ग्रामीण जीवन में शोषक की भूमिका रही है। ये कर्मचारी प्रायः दो प्रकार के कर्मचारी हैं। एक वे जो सरकार से वेतन पाते हैं और दूसरे वे जो धनी वर्ग के लोगों के यहाँ निजी तौर पर कारिन्दा आवि रहकर काम करते हैं। सरकारी कर्मचारियों की माया का कोई ठिकाना नहीं। आज भी कार्यपालिका राजनीति से इतनी दूरी हुई है, इतनी प्रभावहीन है कि उसके अस्तित्व पर ही प्रश्न विद्म गहराने लगा है। ब्रिटिश शासन की पुलिस के ज़ुल्म और आधुनिक स्वतंत्र भारत की पुलिस के चरित्र में कोई अन्तर नहीं आया है। अन्ध जनता को उल्टे सीधे जालों में फँसा कर, गाँवों के धनिकों से मिलकर उनके यहाँ आगू लगवाना,

बहिन बेटीयों की अस्मत् लूटना, बेइज्जत करना, अंग भंग करके उन्हें जीवित लाश बना देना उनका आज का कर्तव्य सा बन गया है । नागार्जुन ने इस तरह के पुत्रों की भी पट्टारिखत अपने उपन्यासों 'बलपनमा', 'रतिनाथ की पापी', 'बाबा बटेसरनाथ, और "कृष्ण के बेटे" "दुखमोहन" "जमनिया का बाबा" में दी है । उनका "अभिर्लोक" उपन्यास तो राजनेताओं, कर्म-चारियों और सत्ता से घिरे लोगों के भ्रष्ट आचरणों, काला बाजारियों और तस्करों का प्रामाणिक दस्तावेज है । सत्ता के इर्द गिर्द मँडराने वाले चापलूस नागार्जुन के व्यंग्यवाचों का निशाना बने हुए हैं ।

परन्तु नागार्जुन के उपन्यासों में कई चीजें देखने को नहीं मिली हैं वे हैं- साम्प्रदायिकता की भावना, कृषि विकास का औद्योगिक स्वल्प और औद्योगिक मजदूर की समस्या । यद्यपि नागार्जुन ने अपनी कविताओं में इन तीनों पर विस्तार से लिखा है उनके जीवन और उनके शोषण के सुत्रों को पकड़ा है परन्तु उपन्यास के क्षेत्र में यह राष्ट्रीय संकर्म अछूता है । उन्होंने इसके बारे में अपने उपन्यासों में कहीं भी टिप्पणी नहीं की है ।

साम्प्रदायिक समस्या जो कि आज के भारत के कोने-कोने में विष की तरह फैलती जा रही है इसकी लोप में देश और उसकी अखण्डता फँस चुकी है ऐसी स्थिति में नागार्जुन के उपन्यासों में कहीं भी इस बिस्बेल का संकर्म न होना अछरता है । जिस तरह से उन्होंने अन्य राष्ट्रीय और स्थानीय समस्याओं उनकी विवृणताओं को जन जीवन के सामने उजागर कर उनकी बाखिया उधेड़ी है उनके निराकरण का विश्वास निर्या किया है ठीक

उसी तरह से इस समस्या का भी वे निदान प्रस्तुत करते तो और ही उत्तम होता । यद्यपि उनके यहाँ हिन्दू और मुसलमान स्वर्ण और अर्ण सभी पात्र हैं परन्तु वे साम्प्रदायिक द्वेष से ग्रसित नहीं हैं । परन्तु आज के इस पुनावी, जिसके मुख्य द्वार हैं नागार्जुन इन पर भी अपने व्यंग्यवाचों की बोझार कर ध्वस्त करते तो अच्छा होता ।

दूसरे, नागार्जुन किसान समस्या को केवल भूमि से ही जोड़कर देखते हैं, उनके किसानों का पूरा-पूरा स्वर्ण केवल जमीन प्राप्त करने तक जुड़ा हुआ है । आधुनिक कृषि विकास और कृषि के औद्योगीकरण पर बाबा प्रायः मौन हैं । कृषि का यंत्रीकरण जिस ढंग से हमें उनके समान धर्मा कृषीश्वर नाथ रेणु में मिलता है उस ढंग से नागार्जुन में नहीं । वैज्ञानिक उपकरणों, सिंचाई के साधनों उन्नतशील बीजों आदि का प्रयोग हमें "मैला आंचल" में तो मिलता है लेकिन नागार्जुन में उसके स्थान नहीं होते ।

एक और बात जोकि नागार्जुन के उपन्यासों में अछूती रह गई है वह है औद्योगिक मजदूरों की समस्या । यद्यपि नागार्जुन कविता में इन विषयों पर बराबर लिखते रहे हैं लिख रहे हैं लेकिन उनके उपन्यास साहित्य में यह पर्व एक अभाव के रूप में दृष्टिगोचर होती है । पृथीपति, कारखाने-दार मिल मालिक आदि शोचकों के दुर्ग जगहों में फँस हुए निरीह मजदूरों के घुटे हुए कर्म की आवाज उपन्यास साहित्य में नहीं है । मात्र "जमिन्या का बाबा" उपन्यास में जेल के कैदियों की पर्व भर में ये मजदूर शामिल हुए हैं अन्यत्र नहीं । नागार्जुन का उपन्यासों के लेखन में पूरा ध्यान समाज

और उसकी किस्मियों तथा राजनीति और उसकी भूमिका पर रहा है ।
हाँ, उनकी कविता ने इन तमाम संदर्भों की व्याख्या प्रस्तुत की है ।

अतः हम देखते हैं कि नागार्जुन के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के तमाम सन्दर्भ राष्ट्रीय चिन्तन धारा से जुड़े रहे हैं । उनकी सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने राष्ट्र और समाज की किस्मियों का नवीन छल प्रस्तुत किया है । उनके उपन्यास मनोरंजन और समय काटने के लिए नहीं अपितु सोचने समझने और कुछ कर गुजरने के लिए हैं । वे अपने पुष्ट विचारों के अकेले लेखक हैं जिन्होंने काँ विहीन समाज की बुनियाद रखी है जोकि समाज और राष्ट्र की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान है । उन्होंने साहित्यकार के दायित्व का पूर्णतः निर्वहण किया है ।

संस्कृत ग्रन्थ-सूची

आधार-ग्रन्थ

<u>क्रमांक</u>	<u>लेखक का नाम</u>	<u>पुस्तक का नाम</u>	<u>प्रकाशक</u>	<u>संस्करण</u>	<u>वर्ष</u>
1-	नागार्जुन	रत्नाथ की याची, यात्री प्रकाशन, नवीन संस्करण			1977, पटना-6
2-	वही	बलघनमा, किताब मठल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण			1976
3-	वही	कुम्भोपन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1978			
4-	वही	नई पीथ, किताब मठल, इलाहाबाद, 1957			
5-	वही	वत्स के बेटे, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1975			
6-	वही	बाबा बटेसरनाथ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली			चतुर्थ संस्करण, 1978
7-	वही	जमनिया का बाबा, किताब मठल, इलाहाबाद			प्रथम संस्करण, 1970
8-	वही	उग्रतारा, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, तीसरा			संस्करण, 1970
9-	वही	कुम्भीपाक, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, दूसरा			संस्करण, 1973
10-	वही	पारो, लीमाफा प्रकाशन, ठाण्ड, प्रथम संस्करण			1975

<u>क्रमांक</u>	<u>लेखक का नाम</u>	<u>पुस्तक का नाम</u>	<u>प्रकाशक</u>	<u>संस्करण</u>	<u>वर्ष</u>
11-	नागार्जुन	अभिर्भव, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण			1979
<u>सहायक एवं संकर्म ग्रन्थ</u>					
1-	के० जॉन विलियम	द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ ईस्ट इंडिया कंपनी, किताब महल इलाहाबाद, 1966			
2-	गुप्त, ज्ञान चन्द्र	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, अभिनव प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974			
3-	गुप्ता, कमला	हिन्दी उपन्यासों में सामंतवाद, अभिनव प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1979			
4-	चंद्र, विपिन	स्वतंत्रता संग्राम, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1977			
5-	पट्टेदी, महेन्द्र	हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1965			
6-	पुन, सत्यपाल	प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1968			
7-	ठावर, जी०एस्०	एडवांस्ड स्टडी इन द हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, स्टीमिंग पब्लिशर्स, दिल्ली भा०-1 भा०-2 1978			
8-	धेन, नगीना	अपौरुषता और हिन्दी उपन्यास, अक्षर प्रकाशन प्रा० लि० दिल्ली, प्रथम संस्करण 1978			

<u>क्रमिक</u>	<u>लेखक का नाम</u>	<u>पुस्तक का नाम</u>	<u>प्रकाशक</u>	<u>संस्करण</u>	<u>वर्ष</u>
9-	जोशी, पूरनचंद्र	भारतीय ग्राम और सांस्थानिक परिवर्तन और आर्थिक विकास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1976			
10-	ठाकुर, यंत्रिका प्रसाद,	बिहार की कृषि एवं सामाजिक व्यवस्था, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, प्रथम संस्करण-1977			
11-	त्यागी, सुमित्रा	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1978			
12-	त्रिगुणायत, गोविंद	शास्त्रीय स्मीक्षा के सिद्धान्त, दूसरा भाग			
13-	तोमर, रामबिहारी सिंह,	ग्रामीण समाजशास्त्र, श्रीराम मेहरा स्ण्ड कंपनी, आगरा, प्रथम संस्करण			
14-	देसाई, रमेशचंद्र	भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पुष्ठभूमि, दि मेकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, दिल्ली, द्वितीय सं०-1977			
15-	धवन, सुष्मा	हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1981			
16-	धर्माय, कीर	विश्व भूषण बाबा साहेब अम्बेडकर, नेशनल बुक सेन्टर, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1980			
17-	नन्बुदरीपाद, ई०एम०एस०	समकालीन भारत, सर्वग्रासी संस्कट, नेशनल बुक सेन्टर नई दिल्ली, प्रथम हिंदी संस्करण 1981			

<u>क्रमांक</u>	<u>लेखक का नाम</u>	<u>पुस्तक का नाम</u>	<u>प्रकाशक</u>	<u>संस्करण</u>	<u>वर्ष</u>
18-	निमर्म, हेमराज	हिन्दी उपन्यासों में मध्य कर्ण, विष्णु प्रकाशन			
		साहित्यबाबाद, प्रथम संस्करण 1978			
19-	एन० रवीन्द्रनाथ	मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली			
		प्रथम संस्करण 1979			
20-	नेहरू, जवाहरलाल	विषय इतिहास की झलक, सस्ता साहित्य मण्डल,			
		दिल्ली 1962			
21-	पामवत्त रणनी	आज का भारत, दि मैक मिलन कंपनी ऑफ इंडिया			
		नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1977			
22-	बर्न्स शर्मल	मार्क्सवाद क्या है ? पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस,			
		दिल्ली 1972			
23-	बेचन	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और परितः चित्रण			
24-	भदट, प्रकाशचंद्र	नागार्जुन जीवन और साहित्य, सेवासदन प्रकाशन,			
		रामपुरा [मन्वसौर] प्रथम संस्करण 1974			
25-	मकुमवार, आर० सी०	हिन्दी ऑफ दि फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया			
		बोल्डूम-3 के० एस० मुखोपाध्याय, कलकत्ता 1963			
26-	महान इन्द्रनाथ	आज का हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन,			
		नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1966			

<u>क्रमिक</u>	<u>लेखक का नाम</u>	<u>पुस्तक का नाम</u>	<u>प्रकाशक</u>	<u>संस्करण</u>	<u>वर्ष</u>
27-	माधवे, प्रभाकर	नागार्जुनः राजपाल स्ण्ड संत, दिल्ली	1977		
28-	मातवीय स्व०डी०	लेण्ड रिफार्मर्स इन इंडिया,	1955		
29-	मुक्तिबोध, गजानन माधव	नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण	1971		
30-	वही	एक साहित्यिक की डायरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण	1976		
31-	मिश्र शिवकुमार	यथार्थवाद, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, दिल्ली, द्वितीय संस्करण	1978		
32-	वही	साहित्य और सामाजिक संदर्भ, कला प्रकाशन, शाहदरा [दिल्ली] प्रथम संस्करण	1977		
33-	मिश्र रामदरश	हिन्दी उपन्यास-एक अंतर्दृष्टि, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण	1968		
34-	वही	सामाजिक हिन्दी साहित्य उपसंहार			
35-	मेघ रमेश कुन्तल	वर्णनिक कव्य एक शब्द है, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण	1973		
36-	मौर्य, आर०आर०	उत्तर प्रदेश भूमि विधियाँ छठा संस्करण	1976		

<u>क्रमांक</u>	<u>लेखक का नाम</u>	<u>पुस्तक का नाम</u>	<u>प्रकाशक</u>	<u>संस्करण</u>	<u>वर्ष</u>
37-	राय विवेकी	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद			
		प्रथम संस्करण 1974			
38-	लेनिन, नारीशक्ति	प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1972			
39-	वाङ्मय, लक्ष्मीसागर	हिन्दी उपन्यास-उपलब्धियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1970			
40-	विद्यावाचस्पति, इन्द्र	भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली 1960			
41-	शर्मा, राम विनायक	प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली चतुर्थ संस्करण 1981			
42-	श्याम सीताराम "शा"	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और हिन्दी उपन्यास हिन्दी प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी, 1969			
43-	शान मुहम्मद	राइटिंग्स सन्ड स्पीच ऑफ़ सरसुद अहमद खान, नयिक्ता प्रकाशन, बम्बई 1972			
44-	स्टालिन जे.वी.डी.	माक्सिम ग्लॉब्स दि नेशनल क्वायन ॥ स्टालिन वर्क्स ब्रुड-2॥ फौरन लेग्ज पब्लिशिंग हाउस, मास्को 1953			

<u>क्र.सं.</u>	<u>लेखक का नाम</u>	<u>पुस्तक का नाम</u>	<u>प्रकाशक</u>	<u>संस्करण</u>	<u>वर्ष</u>
45-	सक्सेना, आदर्श	हिन्दी के अधिलेखित उपन्यास और उनकी शिक्षण विधि, सूर्य प्रकाशन मंदिर बीकानेर प्रथम संस्करण 1971			
46-	सत्यसायी	यह सब क्यों, पुनान्तर प्रकाशन, मथुरा, 1977			
47-	सिंह, लुंवराज	हिन्दी उपन्यास-सामाजिक चेतना, पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1976			
48-	सिंह, अयोध्यासिंह	साम्राज्यवाद का उदय और अस्त, रेखा प्रकाशन कलकत्ता, 1968			
49-	वही	भारत का मुक्ति संग्राम, दि मैकमिलन कंपनी अफि इंडिया, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1977			
50-	वही	राष्ट्रीय आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास, रेखा प्रकाशन, कलकत्ता, 1973			
51-	सिंह, नामवर	इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1978			
52-	सिंह, जयभूषण	हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1970			

<u>क्रमांक</u>	<u>लेखक का नाम</u>	<u>पुस्तक का नाम</u>	<u>प्रकाशक</u>	<u>संस्करण</u>	<u>वर्ष</u>
53-	सिंह विष्णयबहादुर	नागार्जुन और उनका रचना संसार, संभावना प्रकाशन, ढापुरा 1982			
54-	सिंह, बलजीत	नेक्स्ट स्टेप इन विलेज इंडिया			
55-	सिन्हा, सुरेश	हिन्दी उपन्यास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1972			

पत्र-पत्रिकाई सई रिपोट

- | | | |
|-----|-------------------------|---|
| 1- | आजकल | अगस्त 1972 |
| 2- | आलोचना | जनवरी, 56, अप्रैल, 66, जनवरी, 69, 1977
संयुक्तांक [56-57] 1981 |
| 3- | कल्याण | मार्च 1965 |
| 4- | कादम्बनी | मई 1975 |
| 5- | दिनमान | अप्रैल 1978 |
| 6- | नया जीवन | मई 1955 |
| 7- | नया प्रतीक | जून 1974 |
| 8- | परिच्छद पत्रिका | जनवरी 1975 |
| 9- | पश्यती | 1977 |
| 10- | प्रकर | मई-जून 1973 |
| 11- | महामती | मई-जून 1969, अप्रैल 1978 |
| 12- | युग परिबोध | सितम्बर, 77 जनवरी, 78 [संयुक्तांक] |
| 13- | रविवार | 28 अगस्त- 3 सितम्बर, 1977 |
| 14- | साहित्य | नवम्बर, 1961, अप्रैल 79 |
| 15- | हिन्दी रिप्यू मैक्जीन | मई, 1958 |
| 16- | हिन्दुस्तान [साप्ताहिक] | मार्च 1964 मई 1977 |
| 17- | हिन्दुस्तान टाइम्स, | 31 अगस्त 1982, 8 सितम्बर, 1982 |

- 18- अमर उषासा 17 अप्रैल, 1982, 8 मई 1982
19- साइमन कमीशन रिपोर्ट, पिल्ल-1
20- उत्तरगाथा अंक-9, अक्टूबर 1981
